ओ३म्

दयानन्ददिग्विजयम्

महाकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

प्रणम्य भक्त्या परमेश्वरं परं
दयालुमाकारविशेषनिर्गतम् ।
मया दयानन्दयशोविभूषितं
विरच्यते काव्यमिदं विलोक्यताम् ॥१॥

मैं सर्वोत्कृष्ट, निराकार, दयालु, परमेश्वर को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके, ऋषि दयानन्द के यश से अलङ्कृत इस काव्य को रचता हूँ। सज्जन देखें ॥ १ ॥

अभूदभूमिः कलिकालकर्मणा-
मशेषसौन्दर्यनिवासवासवः ।
जगत्त्रये दर्शितवेदभास्कर-
प्रभो दयानन्द इति प्रतापवान् ॥२॥

जिनमें कलिकाल-जन्य पापों का नाम तक नहीं, जो समस्त सुन्दरताओं के निवास से अति रुचिर थे, जो तीनों लोकों में वेदरूपी सूर्य का प्रकाश फैलाते थे ऐसे परम प्रतापी एक ऋषि दयानन्द हुए ॥ २ ॥

---

१ पूज्येष्वनुरागो भक्तिः । २ वासवो रुचिरः ।

यदीयधाम्नः[1] स्मरणं जगत्यहो
मनोविनोदं तनुते महात्मनाम् ।
कथं नु तद्वर्णनसाहसाङ्किते
सहायदानं न करिष्यतीश्वरः ॥३॥

इस जगत् में जिनके तेज का स्मरण मात्र महात्माओं के मन को मोहित कर लेता है उनके चरित्र-वर्णन के लिए प्रवृत्त हुए मुझको क्या ईश्वर सहायता न देंगे ? अवश्य देंगे ॥ ३ ॥

यशो यदीयं जगतीतले ततं
तमो नितान्तं तनिमानमानयत् ।
शरन्मृगाङ्कादधिकं विशोभते
विशोभितान्तःकरणैरभिष्टुतम् ॥४॥

जिनके यश की प्रशंसा विशुद्ध हृदयवाले महात्मा करते हैं, जिनका उज्ज्वल यश जगत् में फैले हुए अन्धकार को नष्ट करता हुआ आज शरत्काल के निर्मल चन्द्रमा से भी अधिक शोभित हो रहा है ॥ ४ ॥

गुणानुरागेण समस्तमानवै-
रमन्दसंदर्शितभव्यभावनैः ।
सदा सदाराधितमेव[2] यत्कृतं
प्रकामभक्त्या ध्रियतेनुशासनम् ॥५॥

जिनका किया हुआ उपदेश आज समस्त जगत् में अत्यन्त भक्ति के साथ बर्ता जा रहा है और जिनके उपदेश को शुभ भावना रखनेवाले समस्त उत्तम जन बड़े ही गुणानुराग से ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥

तुषारपातोत्तरकाललालिता
नवीनवल्लीव लसद्दलोदया ।
जगत्त्रये येन विकाशमापिता
विवर्धते वेदमयी सुवल्लरी ॥६॥

---

१ धाम्नस्तेजसः । २ सद्भिराराधितम् ।

वसन्तकाल के द्वारा फैलाई हुई नवीन पत्तों वाली लता के समान जिन्होंने तीनों लोकों में वेदरूपिणी लता फैलाई है और जिनकी वेदलता दिन दिन बढ़ती चली जा रही है ॥ ६ ॥

दयामयानन्दविशेषवर्धनाद्
भुवस्तले यो नितरामुदारधीः ।
ततान नामानुगुणां निजाभिधां
गुरुर्दयानन्द इति प्रकल्पिताम् ॥७॥

जिस उदारमति गुरु दयानन्द ने, अपने नामानुकूल, जगत् में दयामय आनन्द की वृद्धि करके, अपने नाम को चरितार्थ कर दिखाया ॥ ७ ॥

दिधक्षुरन्तर्गतपापसञ्चयं
प्रतापवह्निर्बहुदग्धिवर्धनः ।
अहर्दिवं यस्य मतैः समेधितो-
ज्वलत्यनन्ताज्ञजनेषु सर्वथा ॥८॥

जिनके मन्तव्यों से बढ़ा हुआ अत्यन्तदाह-वर्धक प्रतापाग्नि मनोगत पापपुंजों के जलाने की इच्छा करता हुआ बहुत से मूर्ख मनुष्यों के चित्त आज भी बराबर जल रहा है ॥ ८ ॥

समस्तलोकान्तरहर्षवर्धनो-
जवेन शुक्लीकृतविश्वमण्डलः ।
संसार यस्माज्जगतीतलेनवो-
गणो गुणानां गणनाशतैर्वृतः ॥९॥

जिनसे प्रकट हुआ समस्त मनुष्यों के हर्ष का बढ़ानेवाला, अपने वेग से सारे विश्वमण्डल को शुक्ल (निर्मल या श्वेत) करनेवाला अगणित गुण-समूह आज जगत् में निरन्तर बढ़ रहा है ॥ ९ ॥

विजित्य यो मन्मथमप्रयत्नतो-
जितेन्द्रियत्वादिह योगमागतः ।

---

१ दग्धुमिच्छुः २ अन्तरं मध्यम् ३ प्रकटीबभूवेत्यर्थः

तृतीयनेत्रज्वलनप्रयासितां
जहास वेगान्नितरां कपर्दिनः ॥१०॥

योग को प्राप्त हो कर जिन्होंने इन्द्रियनिग्रह के द्वारा सहज ही में कामदेव को जीत कर महादेव के तीसरे नेत्र से निकली हुई अग्निज्वाला से उस का भस्म होना हँस दिया ॥१० ॥

महीतलेनन्तगुणप्रबोधिकां
त्रिवेदवीथीमधिगम्य योनघः ।
गुणत्रयातीतपथोपगामिनीं
दधौ धरायां स्वयशस्त्रिमार्गगाम् ॥११॥

जिस ऋषि ने पृथ्वी-तल में अनन्त गुणों के बतलाने वाली त्रिवेदवीथी को प्राप्त कर अदृश्य मार्ग में चलनेवाली निज कीर्तिरूपिणी त्रिपथगा (गंगा) को पृथ्वी तल पर ही धारण कर दिखाया ॥ ११ ॥

भुवं समासाद्य सुखेन पार्वतीं[1]
गणेशतामाप्तुमतीव यत्नतः[2] ।
गुहागृहान्तःकृतयोगसाधनः
शिवत्वमापाखिलविश्वभूतये[3] ॥१२॥

पार्वती (पर्वतसम्बन्धिनी) भूमि को प्राप्त होकर जो ऋषि गुफाओं में योगसाधन करके गणेशत्व की कामना से, जगत् के कल्याण के लिए उद्योग करके शिवत्व को प्राप्त हो गये ॥ १२ ॥

श्रिया[4] समाराधितपादपङ्कजो-
जयेन यद्वा विजयेन सङ्गतः ।
निरर्थकां वैष्णवलोककल्पनां
ततान विद्याविभवेन यो यतिः ॥१३॥

जिस ऋषि के चरण-कमलों की सेवा स्वयं लक्ष्मी किया करती थीं और जिसके साथ सदा जय और विजय रहा करते थे और इन्हीं कारणों से जो वैष्णव जनों की कल्पना को निरर्थक बना कर दिखा गया ॥ १३ ॥

१ पर्वत-सम्बन्धिनीम् २ चतुर्दशभुवनाधिपत्यम् ३ कल्याणकरत्वम् ४ धनरूपसमृध्या

मुधैव यः कौस्तुभरत्नकल्पनां
विधाय धीमानखिलेपि भूतले ।
धृतिक्षमाद्यैर्मणिभिः प्रगुम्फितां
स्रजं दधाद्विष्णुतयावतिष्ठते ॥१४॥

पुराणों में विष्णु भगवान् को कौस्तुभ मणि धारण करनेवाला बतलाया गया है, परन्तु जो ऋषि उस जड़ कौस्तुभ मणि की महिमा को व्यर्थ बता कर धृति, क्षमा आदि सच्चे दश नियमरत्नों की बनी हुई माला को धारण करके सर्वत्र व्यापक सा होकर विष्णुवत् विद्यमान है ॥ १४ ॥

न विद्यते क्वापि नु पन्नगासनं
रमा तदीशावपि कुत्रचिन्न तौ ।
मुधैव सर्वं परिकल्पितं जडै-
रिति स्फुटं यः समदर्शयज्जनान् ॥१५॥

जिस ऋषि ने सब को यह सिद्ध कर दिखाया कि न कहीं शेष है, न लक्ष्मी है, न विष्णु है—यह सब अज्ञानियों की निज की कल्पना मात्र है ॥ १५ ॥

सरस्वती यस्य सदावतिष्ठते
सुनामधेयाग्रपदेतिशोभना ।
समस्तवेदार्थपटीयसी कथं
न तिष्ठताद्ब्रह्मपदे स देवराट् ॥ १६ ॥

जिनके सुन्दर नाम के साथ समस्त वेदार्थ के जानने वाली सरस्वती सर्वदा विद्यमान रहती है वे देवराज विद्वानों में श्रेष्ठ होने के कारण ब्रह्मा की पदवी को क्यों न प्राप्त हों ॥ १६ ॥

विरक्तवेशोप्यविरक्तवासनः
प्रकाममाकल्पितभव्यभावनः ।
अनेकविद्यारमणीयकामनो-
यदीयवेशो मुनितामभण्डयत् ॥१७॥

विरक्तों का सा वेश धारण करने पर भी धर्म-कार्यों की ओर से जिनके जी में कभी विरक्ति नहीं पैदा हुई, जो सदा उत्तरोत्तर उत्तम भावनाओं की कल्पना किया करते थे, जिनकी इच्छायें अनेक विद्याओं में रमण किया करती थीं और जिनका वेश मुनिपन को भूषित करता था ॥ १७ ॥

न विश्वमध्ये निखिला गुणाः क्वचि-
द्भवन्ति नित्यं मनुजे विधेर्वशात् ।
इमं परीवादलवं निनीषवो-
गुणा यदीयं वपुरापुरादरात् ॥१८॥

संसार में समस्त गुण किसी एक मनुष्य में नहीं होते—यह कलंक आज तक गुणों में लगा हुआ था, परन्तु इसी कलंक के धोने के लिए समस्त गुणों ने ऋषि के शरीर में निवास करना आरम्भ कर दिया। ऋषि दयानन्द समस्त गुणों की खान थे—यह भाव ॥ १८ ॥

न कोप्यलं भूवलयेऽस्मदन्तरे
मुखं गताङ्कं समधादिमां शुचम् ।
विनाश्य यो दर्शनदर्पणेऽमले
समस्तमात्मानमधादधर्षितः ॥१९॥

दर्शन-रूपी दर्पणों को यही शोक था कि अभी तक हमारे सामने किसी की निर्मल मुखाकृति नहीं आई—अभी तक किसी ने हमारे द्वारा आत्मज्ञान नहीं प्राप्त किया—परन्तु ऋषि ने अपना पूर्ण आत्मा उन में लगा दिया। ऋषि समस्त दर्शन-शास्त्रों के ज्ञाता थे—यह भाव ॥ १९ ॥

न वेदसूर्योदयमन्तरा कलौ
जना गमिष्यन्ति समुत्थितिं पराम् ।
इति स्वचित्तेऽनुविचार्य दैवतो-
जगाम योऽत्रोदयशैलभावताम् ॥२०॥

जिन्होंने इस बात को जान कर कि कलियुग में वेदरूपी सूर्य के उदय हुए बिना मनुष्य नहीं जागेंगे, अपने आपको उदयगिरि बना लिया ॥ २० ॥

अधर्मपाखण्डविवादवर्धना-
समुत्थनानामतवादवारिदान् ।
विधूनयन्यो जगतीतलेनवं
ततान वेदोदितधर्ममुत्तमम् ॥२१॥

अधर्म, पाखण्ड और विवाद आदि से पैदा हुए मतमतान्तररूप बादलों को कम्पायमान करके जिसने वैदिक धर्म को पूर्ण रूप से फैला दिया ॥ २१ ॥

यदीयवीर्यस्मृतिशङ्कितक्रमाः
पदे पदेधर्मपरा नृकौशिकाः[1] ।
त्यजन्ति नाद्यापि भयं स्वहृद्गतं
महद्भयं कस्य भयाय नो भवेत् ॥२२॥

जिनके वीर्य को याद करके कितने ही अधर्मी लोग पद पद पर शंका करते हैं—भयभीत होते हैं—और महापापी मनुष्यरूप दिवान्ध अपने हृदय के डर को अभी तक नहीं दूर करते । मतलब यह कि जिनके भय से अधर्मी लोग सदा भयभीत रहते हैं ॥ २२ ॥

निवार्य यो वेदविरुद्धमण्डलं
महीतले तर्कबलेन वेदवित् ।
विधाय तामार्यमनुष्यपद्धतिं
बभूव धर्मोचितकार्यतत्परः ॥२३॥

जो वेदज्ञ ऋषि संसार में अपने तर्क-बल से अवैदिक मनुजमण्डल को हटा कर आर्यपुरुषों के जाने योग्य सुमार्ग बनाते हुए धर्मकार्यों में सदा तत्पर रहे ॥ २३ ॥

अनाथदीनार्तदशानिवारणं
विधाय कन्यासुतपाठनालयान् ।
पुरे पुरे यः स्वपरिश्रमैरलं-
चकार सामाजिकमन्दिराण्यपि ॥२४॥

---

१ नराः कौशिका इव नृकौशिकाः ।

जिन्होंने अनाथों की दीन दशा को दूर करके कन्या और पुत्रों के लिए पाठशालायें खुलवाईं और अपने ही परिश्रम से नगर नगर और गाँव गाँव में समाजमन्दिर निर्माण कराये—आर्यसमाज स्थापित किये, यह भाव ॥ २४ ॥

षडङ्गवेदाध्ययनं मतान्तरा-
न्निवृत्तिमप्यार्यजनेषु विन्यसन् ।
समस्तलोके युगपत्समुत्थिता
क्रमाद्दिदीपे बहु यत्कृतिद्युतिः ॥२५॥

जिनके कर्मों का प्रभाव एक ओर आर्यजनों को षडङ्ग वेदों के पढ़ाने में और दूसरी ओर मतमतान्तरों से हटाने में लगा हुआ संसार भर में एक साथ उठकर क्रमशः बढ़ने लगा ॥ २५ ॥

विवाहितामक्षतयोनिमुत्तमां
नियोगमार्गेण नियोज्य सत्पतौ ।
भुवस्तले मन्दजनोद्गतां कृतिं
निनाय नाशं व्यभिचारितां च यः ॥२६॥

जिन्होंने अक्षतयोनि विवाहित, किन्तु विधवा, कन्याओं को नियोग द्वारा दुबारा सनाथ बना कर, जगत् में अधम शीघ्रबोध और व्यभिचार नष्ट कर दिये ॥ २६ ॥

उपासनां पार्थिवमूर्तिसङ्गतां
निवार्य वेदोदितमातृपूजनम् ।
गुरोः सपर्यां जनकस्य सत्क्रिया-
मबोधयद्यः परमार्थसन्मतिः ॥२७॥

जिन परमार्थ बुद्धिवाले ऋषि ने पाषाण-मूर्ति की पूजा को दूर करके सबके लिए वेद-विहित माता, पिता और गुरु की पवित्र पूजा बताई ॥ २७ ॥

शुभानि विद्याविनयार्जवादिभि-
र्गुणैरुपेतानि निबोध्य भूतले ।

सुखेन तीर्थानि जनान्परिश्रमा-
दवारयद्यो बहु धावनोद्गतात् ॥२८॥

जो ऋषि जगत् में विद्यादि गुणों से युक्त गुरु को तीर्थ-रूप बता कर नाना देशों में जाने के श्रम से मनुष्यों को बचा गये ॥ २८ ॥

बभूव यो वेदविरुद्धकारिणां
पुराणपद्योदरमर्मवेदिनाम् ।
अदृश्यकेतुर्विलयैकसूचकः
स्वतेजसा दर्शितसत्पथः कृती ॥२९॥

अपने तेज से दूसरों को सन्मार्ग दिखानेवाले जो ऋषि पुराणों के पद्यों का मर्म जानने वाले, और वेद-विरुद्ध आचरण करनेवाले लोगों के लिए नाशसूचक गुप्त केतु के समान प्रकट हुए ॥ २९ ॥

यदीयशिष्यैरधुनापि तादृशै-
र्न केवलं भारतमेव सत्वरम् ।
समस्तलोकोदरमानयिष्यते
क्रमेण वेदस्थितये सुवेश्मताम् ॥३०॥

जिनके प्रसिद्ध प्रसिद्ध शिष्यों द्वारा इस समय न केवल भारतवर्ष ही किन्तु समस्त संसार वेदों के प्रचार का स्थान बनाया जायगा। जिन के मुख्य मुख्य शिष्य अब भारत में ही नहीं सब देशों में वेदों का प्रचार करने का उद्योग करेंगे—यह भाव ॥ ३० ॥

गता कथा यत्करुणावशादद्रुतं
कथावशेषं किल विश्वमण्डले ।
न लभ्यतेद्यापि मुहुर्विलोडिता
तदेकविज्ञैरुदरंभरिद्विजैः ॥३१॥

---

१ गवेषितेति पाठान्तरम् ।

जिन की कृपा से आज पुराणों की कथा केवल कथा मात्र हो रह गई, पुराणों के जाननेवाले उदरम्भरि लोगों के प्रयत्न करने पर भी कहीं दिखाई नहीं देतो ॥ ३१ ॥

असत्यनारायणनामनाशनं
विधाय लोके बहु येन कल्पिता ।
यथार्थनारायणपूर्णवर्णना
मनोविनोदाय समानधर्मिणाम् ॥३२ ॥

जिन्होंने असत्यनारायण की कथा को दूर कर के वेदप्रतिपाद्य सत्य परमेश्वर का पूरा वर्णन करना ही आर्यों के लिए सदा सर्वथा योग्य कर्तव्य बता दिया ॥ ३२ ॥

समस्तवेदाध्ययनादनन्तरं
समेत्य योगेश्वरभावमुत्तमम् ।
यशोवशिष्टो भुवने विधेर्वशा-
ज्जगाम यो मुक्तिमनन्तसौख्यदाम् ॥३३॥

सांगोपांग वेदों को पढ़ कर योगिराज की पदवी को प्राप्त हो कर जो ऋषि अपने बदले में अपना यश यहाँ छोड़ कर आप परमात्मा की प्रेरणा से अनन्त सुखदायिनी मुक्ति को पा गये ॥ ३३ ॥

परोपकारव्रतमेकमुत्तमं
निधाय लोके लघु ये मृतिं गताः ।
तएव धन्या महनीयतां गतं
यशोवपुस्त्वं चिरकालमालभन् ॥३४॥

जिन्होंने जगत् में परोपकार व्रत को धारण कर स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त किया और जो चिरकाल तक रहनेवाले यशोरूप शरीर को [illegible] करके धन्य हुए ॥ ३४ ॥

यदीयसद्धर्मपथावलम्बिनी
महत्त्वदीक्षा भुवने विराजते ।

विराजते विश्वतले स एव ना
यथा दयानन्दसरस्वती यतिः ॥३५॥

जिस के महत्त्वपूर्ण उपदेश जगत् में सन्मार्ग दिखानेवाले विद्यमान हैं वही महात्मा सर्वदा जीवित रहता है। दृष्टान्त—जैसे ऋषि दयानन्द विद्यमान हैं ॥ ३५ ॥

तद्वर्णनाय जगतीतलरत्नमेत-
त्काव्यं निरस्तपरकाव्यमुदारपद्यम् ।
लोकोत्तरस्मृतिमताऽऽर्यकवीश्वरेण
सर्गैः कृतं कुमुदिनीदयितेक्षणां कैः ॥३६॥

उन्हीं के वर्णन के लिए लोकोत्तर प्रतिभाशाली आर्य कविरत्न पण्डित अखिलानन्द शर्म्मा ने इक्कीस सर्गों में बना कर यह काव्य पूर्ण किया। यह सरस काव्य संसार में रत्नरूप होगा। इस के सामने अन्य कवियों के काव्य फीके पड़ जायँगे ॥ ३६ ॥

जन्मनः प्रभृति यद्यदद्भुतं
कार्यमाचरितमामृतेरलम् ।
तत्तदत्र सकलं विलोक्यतां
वैदिकाध्वगमने कृतव्रतैः ॥३७॥

वैदिक धर्मरूपी मार्ग में चलने का व्रत धारण करनेवाले आर्य पुरुष, ऋषि दयानन्द के जन्म से मरण पर्यन्त के सारे अद्भुत कर्म, इस काव्य में देखें ॥ ३७ ॥

जयतु जयतु लोके वेदसूर्यप्रकाशो-
भवतु भवतु पश्चादार्यधर्मप्रभावः ।
नयतु नयतु दूरं न्यायकारी दयालु-
र्नवमतबहुरोगं नूनमार्य्याधिवासात् ॥३८॥

अब सर्ग के अन्त में ग्रन्थकार आशीर्वाद देता है । इस जगत् में वेदरूपी सूर्य का प्रकाश जय को प्राप्त हो, आर्यधर्म का प्रभाव सर्वत्र फैले, न्यायकारी दयालु परमात्मा नवीन मतमतान्तर रूप रोगों को इस संसार से दूर करें॥ ३८ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सातिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये महर्षिप्रभाववर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ।
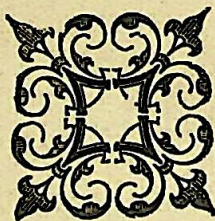
द्वितीयः सर्गः

तस्यैवंविधवृत्तस्य धीरोदात्तस्य धीमतः ।
देशभूमिरभूद्भव्या भव्यानन्तफलप्रदा ॥१॥

जिन ऋषि दयानन्द का वर्णन पहले सर्ग में हो चुका है उन्हीं धीरोदात्त श्रीमान् का जन्म भारतवर्ष के सुन्दर काठियावाड़ प्रान्त में हुआ ॥ १ ॥

यत्र नानावनोद्देशविराजद् वृक्षमण्डले ।
मण्डलीकृतसद्बर्हाः प्रनृत्यन्ति कलापिनः ॥२॥

जहाँ नाना प्रकार की सुशोभित वृक्षावली युक्त वन-भूमियों में मोर अपने पंखों को मण्डलाकार फैला फैला कर नाचा करते हैं ॥ २ ॥

अद्यापि यत्र विषये[1] वसन्तो मनुजाः सुखम् ।
गणयन्ति न वैशेष्यात्स्वर्गस्थाममरावतीम् ॥३॥

जहाँ अच्छी तरह सुखपूर्वक रहते हुए मनुष्य स्वर्ग की अमरावती पुरी को भी कुछ नहीं गिनते ॥ ३ ॥

नानासस्यसमृद्धाभिरारामतरुपङ्क्तिभिः ।
लसते परमा यत्र भूमिरप्यतिशोभना ॥४॥

जहाँ की अनेक तृणवती और उपवन युक्त मनोहर भूमि अत्यन्त शोभित होरही है ॥ ४ ॥

पीनापीन[2]भराक्रान्तलसन्मन्थरगामिनी ।
राजते नितरां यत्र गवामपि परा ततिः ॥५॥

जहाँ दूध से भरे हुए, अतएव भारी, ऊध के भार से मंद मंद चलने वाली गायों की पंक्ति बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती है ॥ ५ ॥

---

१ देशे । २ आपीनमूधः ।

वापीकूपतडागेभ्यस्तोयाहरणहेतवे ।
गताः प्रतिपथं यत्र रमन्ते तोयहारिकाः ॥६॥

जहाँ बावड़ी, कुए और सरोवरों से जल लाने के लिए गई हुई पनिहारियाँ प्रत्येक मार्ग में क्रीड़ा किया करती हैं ॥ ६ ॥

पयोधरपतत्तोयसम्पन्नान्न विशोभिताः ।
देवमातृकतां यत्र गायन्ति बहु गोपिकाः ॥७॥

जहाँ मेघों से गिरे हुए जल के द्वारा पके हुए खेतों की गोपिकायें (रक्षा करनेवाली स्त्रियाँ) अपने देश को देवमातृक कह कह कर गाया करती हैं ॥ ७ ॥

समस्तवस्तुविस्तारस्तुतिप्रस्तारभूषिता ।
पृथिवीतलरत्नाभा या कृता परमेष्ठिना ॥८॥

जिस देश की भूमि, मानो ईश्वर ने समस्त पदार्थों की उत्पादयित्री और धरित्री बना कर, समस्त भूमिखण्डों में रत्न-रूप बनाई है ॥ ८ ॥

तस्यामत्यन्तभव्यायां मौरवीराज्यमण्डले ।
सर्वशक्तिमतोनन्तशक्त्येव परिकल्पिता ॥९॥
श्रीमती मतिमन्मान्या माननीयजनान्विता ।
समस्तवस्तुबहुला विद्यतेनुपमा पुरी ॥१०॥

[युग्मम्]

ऐसी सुन्दर भूमि में मौरवी प्रान्त के अन्तर्गत एक अनुपम पुरी है। वह पुरी सर्वशक्तिमान् की अनन्त शक्तियों से बसी हुई है, माननीय सज्जनों से युक्त है और धनादि अनेक वस्तुओं से परिपूर्ण है ॥ ९—१० ॥

यत्र नैसर्गिकी काम्यकल्पनानल्पसुन्दरी ।
जनता जनतापानामपायाय विजृम्भते ॥११॥

जिस पुरी में अतिसुन्दर काम्य कल्पना करने वाला स्वाभाविक जन-समूह मनुष्यों के दुःख दूर करने के लिए समर्थ है ॥ ११ ॥

कामदेवतिरस्कारकारिणी यत्र सर्वदा ।
सर्वदा रूपसम्पत्तिर्जनानाक्रम्य वर्तते ॥१२॥

जिस पुरी के रहनेवाले मनुष्यों में ऐसी सुन्दरता रहती है कि जो कामदेव की सुन्दरता को भी मात करती है ॥ १२ ॥

नानावस्तुलसत्कोषपोषमात्रपरायणाः ।
कुवेरमपि मन्यन्ते न यत्र धनिनो विशः ॥१३॥

जहाँ के धनी व्यापारी वैश्य, नाना प्रकार के पदार्थों से कोश भरने मात्र का काम करने के कारण, कुबेर को भी कुछ नहीं गिनते ॥ १३ ॥

वारस्त्रीबहुभोगापि रक्तवर्णापि या पुरी ।
अखण्डितचरित्राढ्या चन्द्रिकोज्ज्वलतामिता॥१४॥
बहुप्रकृतियुक्तापि स्थिरा चित्रितभित्तिभिः ।
प्रव्यक्तविश्वरूपेव सशैलेवोच्चवेश्मभिः ॥१५॥

[युग्मम्]

जो पुरी वारस्त्रियों से परिपूर्ण होने पर भी सच्चरित्रजनों से युक्त है, लाल रंग की होने पर भी चन्द्रमा की चाँदनी से सफ़ेद है, अनेक प्राकृतिक पदार्थों से युक्त होने पर भी स्थिर है, चित्राङ्कित दीवारों से ऐसी मालूम होती है कि मानो सारे संसार की वस्तुओं को धारण करती है, ऊँचे ऊँचे मकानों से ऐसी मालूम होती थी कि मानो एक पर्वत बना खड़ा है ॥१४-१५॥

सन्ध्यारागारुणा यत्र सिन्दूरमणिकुट्टिमे ।
सहस्रांशोरविश्रान्ता विराजन्ते गभस्तयः ॥१६॥

जिस पुरी में सन्ध्याकाल की लालिमायुक्त सूर्य की किरणें मकानों के आँगनों में जड़ी हुई लाल मणियों पर निरन्तर (रात भर) चमकती रहती हैं ॥ १६ ॥

भूषणप्रभया यत्र रजनीष्वपि योषिताम् ।
व्यर्थतां नीयते रम्या दीपकाली विलासिभिः ॥१७॥

जिस पुरी की स्त्रियों के आभूषणों की ऐसी चमक और प्रभा होती है कि उनके सामने विलासी जन रात्रि में दीपावली को व्यर्थ समझते हैं ॥ १७ ॥

गुर्जरीवदनालोकलज्जामन्थरसंक्रमः ।
कलङ्कापनयं वाञ्छन्प्रासादानुपगच्छति ॥१८॥

जिस पुरी की स्त्रियों के मुख को देख कर लज्जित चंद्रमा कलंक मिटाने के लिए धीरे धीरे प्रासादों (महलों) को छू कर जाया करता है ॥ १८ ॥

सौधाग्रशायिवनितामुखालोकान्मदोद्धतः ।
पतितो यत्र लुठति प्रतिमामिषतो विधुः ॥१९॥

जिस पुरी में प्रासादों के ऊपर सोती हुई स्त्रियों के मुख-दर्शन से मदोद्धत चन्द्र प्रतिमामिष से उनके चरणों में लोटता रहता है ॥ १९ ॥

प्रभातोत्थितहारीतपठ्यमानशुभाक्षरैः ।
प्राभातिक्यो विधीयन्ते व्यर्था मङ्गलगीतयः ॥२०॥

जिस पुरी में प्रातः समय पिंजरों से निकाले हुए तोते अपने पढ़ने की ध्वनि से प्रातःकालीन मङ्गलपाठ को भी मात करते हैं ॥ २० ॥

अस्थिरत्वं पताकानां मित्रद्वेषो निशाव्रजाम् ।
कोषगुप्तिरसीनान्नु लक्ष्यते यत्र नान्यथा ॥२१॥

जिस पुरी में चंचलता पताकाओं में, मित्र से द्वेष उल्लुओं में, कोष में रहना तलवारों में पाया जाता है, औरों में नहीं ॥ २१ ॥

तस्यामुत्साहसम्पन्नो मतिमानप्रमेयभः ।
बभूव जगतीरत्नं द्विजोम्बाशङ्कराभिधः ॥२२॥
सहस्रोदीच्यविख्यातगुर्जरान्वयभूषणः ।
वंशेनल्पगुणग्रामः सामगे शास्त्रदर्शकः ॥२३॥

[युग्मम्]

उसी पुरी में अम्बाशंकर नामक एक सहस्रोदीच्य ब्राह्मण रहता था। वह सामवेदी ब्राह्मण था। उसका विख्यात वंश गुर्जर नाम से प्रसिद्ध था। वह बड़ा उत्साही, बुद्धिमान्, अनुपम कान्तियुक्त, गुणागार, शास्त्रज्ञ और पृथिवी का रत्नरूप था ॥ २२—२३ ॥

आदर्शः सर्वशास्त्राणामाधारः करुणाम्भसाम् ।
आरामो गुणवृक्षाणामाकारो ज्ञानसन्ततेः ॥२४॥
तीर्थं विद्यावताराणां बोधको न्यायवर्त्मनाम् ।
नेमिरुत्साहचक्रस्य सखा सत्यस्य तत्परः ॥२५॥
गुरुर्गुणानां धैर्यस्य धाम स्थानं स्थितेः परम् ।
सेतुः सत्यस्य धर्मस्य धाता पाता दरिद्रिणाम् ॥२६॥

(विशेषकम्)

वह समस्त शास्त्रों का आदर्श, करुणाजल का आधार, गुणरूपी वृक्षों का उपवन, ज्ञान की मूर्ति, विद्यावतारों का तीर्थ, न्यायमार्ग का बोधक, उत्साहरूपी पहिये की धुरी, सत्य का सखा, गुणों का गुरु, धीरता का स्थान, स्थिति का परम स्थान—आश्रय,—सत्य का सेतु, धर्म का धारण करनेवाला और दरिद्र पुरुषों का पालन करनेवाला था ॥ २४, २५, २६ ॥

तस्यासीदिन्दुवदना वेलेव पयसांनिधेः ।
मदलेखेव करिणो लतेव भुवनस्पतेः ॥२७॥
तारापङ्क्तिरिवाभ्रस्य नलिनीव सरस्वतः ।
चन्द्रिकेव निशांपत्युर्ललनानल्पविभ्रमा ॥२८॥

(युग्मम्)

उसके एक स्त्री थी । उस का मुख चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था। जैसी समुद्र की वेला, हाथी की मदलेखा, वृक्ष की लता, आकाश की तारा, सरोवर की पद्मिनी और चन्द्रमा की रात्रि होती है वैसी ही वह थी ॥ २७—२८ ॥

पत्युरिच्छानुकूलत्वाद्यया सर्वसतीव्रजः ।
नीचैः कृतो महाधर्मशर्मतत्परया रसात् ॥२९॥

जिस उत्तम धर्म में तत्पर स्त्री ने समस्त कार्यों को पति के इच्छानुकूल करने से समस्त सती-समूह नीचा कर दिया ॥ २९ ॥

सा महेशस्य कृपया दधौ गर्भमतिप्रभम् ।
शुभाय सर्वलोकानां पृथ्वी निधिमिवोत्तमम् ॥३०॥

जैसे पृथ्वी निधि को प्राप्त होती है वैसे ही वह भी, ईश्वर की कृपा से, समस्त लोकों के कल्याण के लिए उज्ज्वल गर्भ को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥

यदारभ्य गतो गर्भं दयानन्दो दयामयः ।
तदारभ्यैव भूतानामानन्दोभूदसंशयम् ॥३१॥

जिस समय ऋषि दयानन्द गर्भ में आकर प्राप्त हुए तभी से मनुष्यों को आनन्द प्राप्त होने लगा ॥ ३१ ॥

निवारयिष्यति ध्वान्तमयमेव भुवस्तलात् ।
इति मत्वा दिशोप्याशु गतशोका इवाभवन् ॥३२॥

यही गर्भ में आया हुआ ऋषि जन्म लेकर जगत् से अंधकार को हटा-वेगा—ऐसा जानकर दिशायें भी शीघ्र निर्मल हो गईं ॥ ३२ ॥

कारणात्कार्यसम्पत्तिर्दृश्यते भूतले परम् ।
ऋषेरस्योदयारम्भे पूर्वतः फलमाभवत् ॥३३॥

लोक में कारण के अनन्तर कार्य होता है परन्तु इनके जन्म से पहले ही हर्षरूप कार्य होने लगा ॥ ३३ ॥

श्रीमानपि गतो गर्भं प्रसस्मार पुरातनीः ।
लोकाभ्युदयहेत्वर्था वैदिकीः प्रक्रियाः शुभाः ॥३४॥

ऋषि दयानन्द भी गर्भ में आकर विश्व के कल्याण करनेवाली वैदिक प्रक्रियाओं को गर्भ में ही सोचने लगे ॥ ३४ ॥

निर्गत्यैव करिष्यामि धर्ममार्यं भुवस्तले ।
इतिचिन्तयतोस्याशु स कालः समुपागमत् ॥३५॥
यत्रार्यजनचित्तानि प्रसन्नान्यभवन्द्रुतम् ।
म्लानतामाययौ मन्ये तद्विरोधिजनव्रजः ॥३६॥

(युग्मम्)

गर्भ से निकल कर ही आर्य-धर्म का प्रचार जगत् में करूँगा, ऐसा सोचते ही वह समय आ गया जिसमें कि आर्यजन प्रसन्न और उनके विरोधी मलिन हुए ॥ ३५—३६ ॥

मासि भाद्रपदे पक्षे सिते वारे बृहस्पतेः ।
नवम्यां मध्यमायाते भास्करेपि विहायसः ॥३७॥
नक्षत्रेतिशुभे मूले योगेतिप्रीतिवर्धने ।
चन्द्राष्टवसुराकेशयोजनाल्लब्धभावने ॥३८॥
विक्रमादित्यनृपतेर्वत्सरे जगतां गुरुः ।
निर्गत्य जननीकुक्षेरागतो जगतीतले ॥३९॥
(विशेषकम्)

अंकों की वाम से गति हुआ करती है इस नियम से चन्द्र १ अष्ट ८ वसु ८ राकेश १ इनके योजन से निकले हुए १८८१ विक्रम संवत् भाद्रपद मास, शुक्ल पक्ष, नवमी, बृहस्पतिवार, मध्याह्न के समय मूल नक्षत्र और प्रीति-योग में जगद्गुरु ऋषि दयानन्द माता की कुक्षि से निकल कर भूतल में पधारे ॥ ३७—३९ ॥

सहस्रांशुरिवोदग्रो ध्वान्तनाशनतत्परः ।
विरराज जनन्येव धरित्र्याङ्के निवेशितः ॥४०॥

अन्धकार को दूर करने में तत्पर प्रचंड सूर्य के समान ऋषि दयानन्द को, माता की तरह, पृथ्वी ने अपनी गोद में ले लिया ॥ ४० ॥

प्रसन्नाशमसन्नाशकाशि पुण्यविवर्धनम् ।
प्रमोदाय बभूवार्यजनानां तज्जनोर्दिनम् ॥४१॥

उनके जन्म का शुभ दिन आर्यजनों के लिए बड़ा हर्षदायक हुआ, क्योंकि उस दिन समस्त दिशायें प्रसन्न—निर्मल—थीं और वह दिन असत्य का नाश कर के पुण्य का बढ़ानेवाला था ॥ ४१ ॥

धन्या सा जननी धन्यो जनकोपि स तादृशः ।
याभ्यामधर्मनाशाय दयानन्दोदयः कृतः॥४२॥

उस माता तथा उस पिता को धन्यवाद है कि जिन्होंने अधर्म के नाश के लिये ऋषि दयानन्द को उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥

लब्धोदयो दयानन्दो दयानन्दविवर्धनात् ।
सिते पक्षे शशीवाप परमां वृद्धिमृद्धिमान् ॥४३॥

पृथ्वीतल पर उदय हो कर दया और आनन्द के बढ़ाने से दयानन्द शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगे ॥ ४३ ॥

लसल्लावण्यललनालास्यलीलायिते गृहे।
बाललीलालवोल्लासैर्लालयामास तं जनः ॥४४॥

सुन्दर लावण्यवाली स्त्रियों के नृत्य से लीलायमान गृह में बाललीलाओं के उत्साह से उनको स्त्रीजनों ने खिलाया ॥ ४४ ॥

कापि दोलासमारूढं चालयामास तं वधूः।
कापि भव्याङ्कगं कृत्वा तमाचुम्बदतिप्रभम् ॥४५॥
कापि तं भ्रामयामास कराङ्गुल्या मनस्विनी।
शाययामास तं कापि पयः फेननिभे तले ॥४६॥

(युग्मम्)

कोई हिंडोले में लिटा कर उनको झुलाने लगी, कोई गोद में लेकर चूमने लगी, कोई उँगली से घुमाने लगी और कोई दूध के फेन के समान कोमल शय्या पर सुला कर खिलाने लगी ॥ ४५—४६ ॥

क्वचिच्चरणविन्यासैः क्वचित्करतलस्थितैः।
धरित्र्यपि तदानन्दं मेने निखिलविश्वसूः ॥४७॥

उनके हाथ और पैरों के छूने से, सारे संसार को उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी ने, बहुत आनन्द माना ॥ ४७ ॥

क्रमेणैवङ्गते तत्र समयेतिलघुक्षणे।
मोदमानजने शान्तनानोपद्रवविद्रवे ॥४८॥
देशाचारकुलाचारविचारवशतो जनैः।
श्रीमतोकारि गोत्राङ्कं मूलशङ्करइत्यरम् ॥४९॥

(युग्मम्)

इस प्रकार बालक्रीडा के समाप्त होजाने पर, शांत और निरुपद्रव शुभ समय में देशाचार तथा कुलाचार के अनुकूल श्रीमान् का नाम "मूलशंकर" रक्खा गया ॥ ४८—४९ ॥

मूलस्य धर्मरूपस्य वृद्धिमुद्दिश्य कल्पिता ।
अन्वर्थतामुपययौ मूलशङ्करकल्पना ॥५०॥

धर्मरूप संसार के मूल की वृद्धि की सम्भावना से रक्खा हुआ उनका नाम वास्तव में सार्थक हो गया ॥ ५० ॥

पञ्चवर्षमितावस्थे कालेनल्पशुभोदये ।
कृताक्षरलिपिर्योगादक्षरं प्रारभद्यशः ॥५१॥

अनन्त कल्याणकारक पाँचवें वर्ष में किया हुआ अक्षरारम्भ जगत् में अक्षर-यश के बढ़ानेवाला हो गया ॥ ५१ ॥

वर्णिनो वर्णनीयस्य वर्णास्तस्य मुखोद्गताः ।
वर्णनीयमवर्णाद्या गुणं ययुरवर्णवत् ॥५२॥

अवर्णनीय चरितवाले उस वर्णी के मुख से निकले हुए अवर्णादि वर्ण वर्णनीय अवर्ण गुण को प्राप्त हुए ॥ ५२ ॥

पूर्वजन्मकृताभ्यासवशतस्तस्य धीमतः ।
स्वल्पेनैव प्रयासेन विद्यावृद्धिमुपालभन् ॥५३॥

बुद्धिशाली ऋषि के पूर्व जन्म में किये हुए अभ्यास के कारण समस्त विद्यायें थोड़ेही प्रयत्न से आकर वृद्धि को प्राप्त होगई ॥ ५३ ॥

गर्भाष्टमे ततो वर्षे निगमोक्तविधानतः ।
औपनायनिकी शिक्षा समभूत्तस्य शोभना ॥५४॥

अक्षरारंभ के अनन्तर गर्भ से आठवें वर्ष में उनका वैदिक विधानपूर्वक सुन्दर यज्ञोपवीत संस्कार किया गया ॥ ५४ ॥

वेदारम्भविधिव्याससमासक्तमनःक्रियैः ।
अकारि तस्य सर्वापि पण्डितैरुचितक्रिया ॥५५॥

वेदारंभ संस्कार के विस्तार को जाननेवाले पंडितों ने उनकी समस्त उचित वैदिक क्रिया को पूर्ण किया ॥ ५५ ॥

---

१ नीरूपम् ।

वेदीद्वयसमिद्धोग्निर्मुहुश्चटचटायितैः ॥
आशीर्वादमिवादातुमुपागादस्य सन्निधिम् ॥५६॥

उपनयन और वेदारंभ की दो वेदियों में प्रज्वलित अग्नि वार वार चट चट शब्द के व्याज से आशीर्वाद देने को इनके पास आता था ॥ ५६ ॥

एतत्प्रेरणया लोके जना होमपरायणाः ।
भविष्यन्तीति निश्चित्य तुष्टिमापदुषर्बुधः ॥५७॥

इनकी प्रेरणा से संसार में समस्त जन हवन में प्रवृत्त होंगे ऐसा जान कर अग्नि अपने चित्त में बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ५७ ॥

प्राज्याज्याहुतिसंलब्धहव्यभागविकल्पनाः ।
योजयामासुराशीर्भिरेनं निखिलनिर्जराः ॥५८॥

बहुत सी घृत की आहुतियों के द्वारा यज्ञ-भाग पानेवाले देवतागणों ने इनको आशीर्वाद दिये ॥ ५८ ॥

दातुं दण्डमधर्माय मञ्जुलस्तस्य मञ्जुले ।
रराज हस्तकमले दण्डोप्याषाढसञ्ज्ञकः ॥५९॥

अधर्म को दंड देने के लिए उनके सुन्दर हस्त-कमल में आषाढ़ नामक पलाश का दंड बड़ी शोभा को प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥

व्रतबन्धनसन्धानसाधनोचितकल्पना ।
कुरङ्गशृङ्गसङ्गास्य शुशुभे नवकृत्तिका ॥६०॥

ब्रह्मचर्य के समस्त साधनों में एक साधनभूत शृंग-सहित कुरंग की कृत्तिका इस ऋषि के पास शोभायमान थी ॥ ६० ॥

शरकाण्डसमुत्पन्नमुञ्जमञ्जुलसद्गुणा ।
विललास त्रिरावृत्ता मेखलास्य कटीतटे ॥६१॥

शरकंडे से उत्पन्न हुए सुन्दर मुंज के द्वारा निर्मित त्रिगुण मेखला उनकी कमर में शोभा देरही थी ॥ ६१ ॥

सुवर्णतन्तुसम्पन्नयज्ञसूत्रविडम्बिनी ।
विरराजोपवीतश्रीरस्य वक्षसि विस्तृता ॥६२॥

सुवर्ण के तागों से निर्मित यज्ञ-सूत्र की तरह इस ऋषि के विशाल वक्षस्थल में उपवीत की शोभा चमकती थी ॥ ६२ ॥

हैमशङ्कुलसद्दीप्तमत्स्यशोभानुकारिणी ।
धातुजालावृता तस्य पदयोः पादुका बभौ ॥६३॥

सुवर्ण की खूँटी की चमक से सुन्दर मत्स्य के समान चाँदी की जाली से बुनी हुई खड़ाऊँ उनके पैरों में शोभा देने लगी ॥ ६३ ॥

गुरुगोपरिचर्यैकनिदानबहुसूचिका ।
दक्षिणांसे ऋषेरस्य तदासीदुपपादिका ॥६४॥

आचार्य की गौ की परिचर्या को बतलानेवाली पावड़ी (लकड़ी की बनी हुई एक चीज़ कि जिस से गोबर हटाया जाता है) उस समय उनके दक्षिण स्कन्ध में विद्यमान थी ॥ ६४ ॥

अशेषशेमुषीशिल्पकल्पनान्तमुपेयुषी ।
पीताम्बरधरी तस्य मूर्तिरासीन्मनोरमा ॥६५॥

पीतांबर धारण करनेवाली उनकी मूर्ति सबको बहुत ही मनोरम मालूम होती थी । उनकी मूर्ति सब प्रकार की बुद्धियों और शिल्पकला के ज्ञान की पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी ॥ ६५ ॥

एवं धृतोपनयनश्रीविशेषविशोभितः ।
स महात्मा बभौ लोके पूर्णचन्द्रइवाम्बरे ॥६६॥

इस तरह धारण की हुई उपनयन की शोभा से वह ऋषि लोक में ऐसा शोभित होता था कि जैसे आकाश में चन्द्रमा ॥ ६६ ॥

जितेन्द्रियत्वमायातमवन्नयनयोरयम् ।
पुरस्तान्नोररीचक्रे विधिं वैवाहिकं ऋषिः ॥६७॥

जब उनके सामने नम्रता दिखलाता हुआ जितेन्द्रियत्व आया तब उन्होंने उसकी रक्षा की और वैवाहिक विधि को आश्रय नहीं दिया ॥ ६७ ॥

यमानां नियमानाञ्च विशेषेण विचारणे ।
सम्मतिं विरतां लोकाददादुपशमेप्यसौ ॥६८॥

वैराग्य धर्मवाली अपनी वृत्ति को वे यम-नियमों और योग के विचार में ही सदा लगाते रहे ॥ ६८ ॥

एवं निरस्तकलिदोषमनङ्गवेग-
विध्वंसि वेदविहिताचरणप्रधानम् ।
वृद्धिं परामुपययौ विधिना समेतं
तद्ब्रह्मचर्यचरितं किल तस्य भद्रम् ॥६६॥

इस प्रकार कलिकाल के दोषों से अलग, कामदेव के मद को भंग करनेवाला, वेदविहित आचरण रखनेवाला उनका ब्रह्मचर्य प्रति दिन बढ़ने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये ब्रह्मचर्यवर्णनो नाम द्वितीय. सर्गः ।
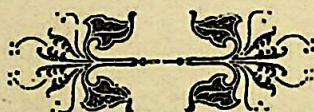
तृतीयः सर्गः

ततः स विद्याध्ययनाय विस्तृतं
विहाय सर्वं सपरिच्छदं गृहम् ।
जगाम देशान्तरमिष्टसिद्धये
न गेहभाजां प्रभवन्ति भूतयः ॥१॥

ब्रह्मचर्य्य प्राप्ति के अनंतर अभीष्ट विद्याध्ययन के लिए धनादि विभवों से पूर्ण अपने घर को छोड़ कर वे देशांतर जाने के लिए उद्यत हुए, क्योंकि घर में रहने वाले पुरुषों के लिए विभूतियाँ कदापि प्राप्त नहीं होतीं ॥ १ ॥

गृहे पिता यद्यपि सामवेदगो-
ध्यजीगपद्याजुषमन्त्रविस्तरम् ।
तथापि धीमान्स जगाम पूर्तये
समस्तवेदाध्ययनस्य सद्व्रतः ॥२॥

यद्यपि उनके पिता सामवेद जानते थे और उन्होंने उनको यजुर्वेद पढ़ाया भी, पर तोभी सांगोपांग चारों वेद पढ़ने के लिए व्रत धारण करके ये बाहर चले ही गये ॥ २ ॥

न मातरं नो पितरं न बान्धवान्
स बोधयामास निजाङ्गतिं कृती ।
भुवस्तले कीर्तिमुपेयुषो नवां
यतोन्तरायाः प्रभवन्ति बान्धवाः ॥३॥

जाने के समय उन्होंने अपना अभिप्राय माता-पिता आदि बांधवों से कहना अच्छा न समझा, क्योंकि जगत् में कीर्ति चाहनेवालों के लिए बान्धव विघ्नरूप होते हैं ॥ ३ ॥

क्व गेहमोहः क्व च बान्धवस्मृतिः
क्व शोकदारिद्र्यभयानि भूतले ।
भवन्ति भव्यार्थविचारशालिनां
मनोविकारप्रभवा हि ते यतः ॥४॥

विचारशीलों के लिए घर का मोह, बन्धुओं का याद आना, शोक, दारिद्र्य, भय आदि कुछ नहीं हुआ करते, क्योंकि यह सब मन के विकार से उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

स वंशबुद्धिर्भवनाद्विनिर्गतो-
विचारयामास पुरः पुरान्तरे ।
किमत्र कर्तव्यमनन्तसौख्यदं
मयामरत्वाय महीतलेचिरात् ॥५॥

बाँस के समान तीक्ष्ण बुद्धिवाले ऋषि घर से निकल कर किसी दूसरे गाँव में जाबैठे। वे वहाँ बैठ कर यह सोचने लगे कि मनुष्य अमर-पदवी को कैसे प्राप्त कर सकता है ॥ ५ ॥

तदेव कर्तव्यमिहास्ति भूतले
जनेन लब्ध्वा जनिमुत्तमे कुले ।
निसर्गरम्या नवकीर्तिसन्तति-
र्भवेद्यथा सभ्यजनेषु निश्चला ॥६॥

इस भूतल में उत्तम कुल में जन्म लेकर मनुष्य को वही कर्म करना उचित है जिससे सभ्यजनों में अपनी कीर्ति निश्चल बनी रहे ॥ ६ ॥

तथा न काचित्किल कल्पना यया
समस्तमिष्टं प्रभवेन्नृणां यथा ।

अशेषकाम्यार्थफलोपधायिनी

सुधेव विद्या सकलेष्टकामधुक् ॥७॥

जैसी समस्त वांछित फलों की देनेवाला अमृत के तुल्य विद्यारूपिणी कामधेनु है वैसा अन्य कोई पदार्थ नहीं दीखता ॥ ७ ॥

इति स्वचेतस्यवधार्य सर्वथा

स मुक्तबन्धो जगदेकशासकः ।

तथामरत्वाय चकार शेमुषीं

यथा न चक्रे किल कोपि मानवः ॥८॥

समस्त बन्धनों से मुक्त और जगत् के एक मात्र शासक ऋषि इसी तरह मन में विचार कर अमर होने के लिए ऐसा उपाय सोचने लगे कि जैसा आज तक किसी मनुष्य ने नहीं सोचा ॥ ८ ॥

बहूनि वेदाङ्गमयानि पुस्तका-

न्यधीत्य कालाल्पतयैव बुद्धिमान् ।

मुदैव मेने वसितिं स्वहृद्गतां

समस्तवेदस्य विचित्रविक्रमः ॥९॥

थोड़ेही समय में बहुत से निरुक्तादि वेदांगों को पढ़कर विशिष्ट शक्ति होने से समस्त वेदों की पूर्ति को अपने मन में मानने लगे अर्थात् शीघ्रही समस्त वेदों को मैं पढ़लूँगा ऐसा साहस करने लगे ॥ ९ ॥

यमीश्वरो वाञ्छति वेदपारगं

विधातुमुत्कृष्टधियातिसत्वरम् ।

नियोजयत्यान्तरतम्यभावना-

वशादिवोदारपरिश्रमे स तम् ॥१०॥

जिस पुरुष को परमात्मा वेद का पारंगत बनाना चाहता है उसको विशेष दया से निर्मल बुद्धि देकर शीघ्रही परिश्रम करने में लगा देता है ॥ १० ॥

यदा निजं नव्यवपुर्मदालसं
परिश्रमे शास्त्रगते समालभत् ।
तदा स्ववेषस्य विपर्यये मनो-
ददौ स धीमानभिधापदस्य च ॥११॥

जब वे अपने नवीन शरीर को शास्त्र के परिश्रम में आलस्ययुक्त देखने लगे तब धैर्य द्वारा मन को रोक निज वेश तथा नाम के बदलने में प्रवृत्त हुए ॥ ११ ॥

कुतोपि दैवादधिगत्य नैष्ठिकं
स वर्णिनं वर्णितमुत्तमैर्जनैः ।
अवाप दीक्षां यतिवस्त्रधारिणीं
विशुद्धचैतन्यपदं च निर्भयम् ॥१२॥

उसी समय कहीं से एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी दैवयोग से वहाँ आगये। उन्हीं से ऋषि ने दीक्षा ली, काषाय वस्त्र धारण किये और शुद्ध चेतन ब्रह्म-चारी नाम रखाया ॥ १२ ॥

कषायधारी कमनीयकामनः
करेप्युपात्तैककमण्डलुर्यतिः ।
प्रचक्रमे सिद्धपुरं स सिद्धये
सरस्वतीतीरगतं महामनाः ॥१३॥

इसके बाद काषायवस्त्रधारी, मङ्गल कामनावाले ऋषि कमण्डलु हाथ में लेकर अपनी इष्टसिद्धि के लिए सरस्वती के तट पर बसे हुए सिद्धपुर नामी नगर में पहुँचे ॥ १३ ॥

भ्रमन्सरस्वत्युपकण्ठपत्तने-
ष्वयं सदण्डेषु यतिष्वनन्तरम् ।
चचार दण्डग्रहणैककामनो-
निगूहयन्स्वं मनुजेभ्य आदृतः ॥१४॥

वे दण्डी संन्यासियों के साथ गाँव गाँव फिरते थे और दण्ड ग्रहण करना चाहते थे। जब उनके कुटुम्बी जन उन को ढूँढ़ने के लिए आते थे तब वे छिप जाते थे ॥ १४ ॥

विचारयत्येव यतौ स्वबान्धवान्
समागतास्ते परितोन्ववेष्टयन् ।
मुनिं मनुष्यादिसुरक्षणोद्यमैः
परं ततोपि प्रजगाम यत्नतः ॥१५॥

परन्तु एक दिन वे बहुत छिपे, तो भी उनके बाँन्धवों ने उनको गुप्त रीति से आ घेरा। किन्तु अपनी चतुरता और यत्न से वे वहाँ से भी वन को चले गये ॥ १५ ॥

शुचान्वितो बान्धवसज्जनोपि तं
यदा विचिन्वन्न समालभत्पदम् ।
तदा परावृत्य निराशतामगा-
त्तदीयसम्मेलनभाषणादिषु ॥१६॥

वन जाने के अनंतर अन्वेषण के लिए इधर उधर निकले हुए बाँधवों ने जब उनको न पाया तब उनसे निराश हो कर वे अपने घर को लौट गये ॥ १६ ॥

स वर्णिवेशोपि सवर्णितां गतः
समानवर्णैर्बहुवर्णिभिर्यतिः ।
सवर्णभावं न जहौ सवर्णिनां-
विवर्णभावेपि सवर्णशासनात् ॥१७॥

ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की अवस्था में स्वामी दयानन्द जैसा वेश रखते थे वैसा ही वेश उनके और साथी ब्रह्मचारी भी रखते थे किन्तु उनके कितने ही साथी ब्रह्मचारियों ने अपना वेश बदल लिया परन्तु स्वामी दयानन्द ने अपना वेश पूर्ववत् ही स्थिर रक्खा, बदला नहीं ॥ १७ ॥

न योगमार्गेण विना स्थिरम्मनो-
भविष्यतीति प्रविचार्य मानसे ।
विशुद्धभावादरमाश्रमान्तरे
ययौ स सत्सङ्गतये च धार्मिकः ॥१८॥

बिना योगाभ्यास के मन कदापि स्थिर न होगा ऐसा निश्चय कर के वे संन्यास धारण तथा सत्संग-द्वारा योग सीखने के लिए दक्षिण देश को गये ॥ १८ ॥

स वर्द्धमानादिपुरेषु विश्रम-
न्न वाप पूर्वं किल चेतनं मठम् ।
नवीनवेदान्तिषु वादकल्पनां
प्रवर्तयन्नैजबलेन वेगवान् ॥१९॥

मार्ग में वर्धमान आदि नगरों में विश्राम लेते हुए ब्रह्मानंदादि नवीन वेदांतियों के साथ विवाद करते करते वे सब से पहले चेतनमठ में पहुँचे ॥ १९ ॥

समेत्य यत्नेन यतिं महामतिं
विजित्य शास्त्रैकविचारकल्पनैः ।
चिदाश्रमाद्यैर्विवदन्समाश्रिता
सुनर्मदातीरवनस्थपद्धतिः ॥२०॥

वहाँ जाकर आपने वहीं रहते हुए सच्चिदानंद परमहंस को शास्त्रार्थ में जीत कर चिदाश्रम आदि संन्यासियों के साथ विवाद करते करते नर्मदातट के वन का मार्ग लिया ॥ २० ॥

तटे तदीये बहुभिः प्रकल्पयन्
स शास्त्रचर्चां सह नम्रसाधुभिः ।
प्रकल्पयामास निवासमुत्तमं
महात्मनां संगतिमेत्य दुर्लभाम् ॥२१॥

उस नर्मदा के तट पर बहुत से महानंदादि नग्न परमहंसों के साथ शास्त्रचर्चा करते हुए उनके संगम को उत्तम जान वे कुछ दिन वहीं निवास करने लगे ॥ २१ ॥

नवीनवेदान्तमयानि पुस्तका-
न्यधीत्य तत्रैव कुतोपि कानिचित् ।
प्रसङ्गतः प्राप्तमुदारदर्शनं
यतिं प्रपेदे परतः सदण्डकम् ॥२२॥

वहीं पर परमानंद नामक एक परमहंस से वेदांत परिभाषा आदि कुछ पुस्तकों को पढ़कर वे अकस्मात् आये हुए उदारदर्शन दंडी पूर्णानंद सरस्वती से मिले ॥ २२ ॥

निजान्नु तस्मै विनिवेद्य सम्मतिं
निरोधितोपि श्रुतिचोदनादिभिः ।
स तेन संन्यासपदं यथाक्रमं
विधेर्विधानादलभत्ततो यमी ॥२३॥

उनके सामने अपनी इच्छा प्रकट करके उनके मना करने पर भी आपने उन्हींसे विधिपूर्वक संन्यास धारण कर "स्वामी दयानन्द सरस्वती" नाम पाया ॥ २३ ॥

निजस्य वेशस्य विपर्ययन्तथा
शुभस्य नाम्नोपि विधाय निर्भयः ।
समस्तलोकव्यवहारविस्तरे
निजं मनो योगपथे न्यवेशयत् ॥२४॥

अपने वेश तथा नाम को पलट कर समस्त लोक-व्यवहारों में निर्भय हो कर वे अपने मन को योग-मार्ग में लगाने लगे ॥ २४ ॥

स चापि दत्वा विधिवन्महात्मने
यतित्वदीक्षां महितः सदण्डकाम् ।

परां च सर्वोपनिषद्गतिं मुदा
जगाम तीर्थाटनबद्धनिश्चयः ॥२५॥

वे पूर्णानंद भी उनके लिए विधिपूर्वक सदंड संन्यास-दीक्षा और उपनिषद् रूप परा विद्या को भी देकर आनंदपूर्वक तीर्थाटन के लिए चले गये ॥ २५ ॥

परोपकारैकपरः क्व सद्गुरुः
क्व चापि दीक्षावसरः क्व सङ्गमः ।
समस्तमेतत्परमात्मना कृतं
निजेच्छया भाति विचारणे कृते ॥२६॥

कहाँ ऐसे परोपकारी गुरु का मिलना ! कहाँ दीक्षा का होना ! और कहाँ दोनों का परस्पर मिलना ! ये सब बातें ईश्वर ने अपनी इच्छा से ही इकट्ठी करदीं ॥ २६ ॥

समुद्रमध्यादवसानतोदिशा-
मथान्तरीपादुत वा नभस्तलात् ।
झटित्यभीष्टं घटयत्ययन्त्रितः
समक्षमेकान्तमुपागतो विधिः ॥२७॥

जब विधाता अनुकूल होता है तब मनुष्य का काम, चाहे वह समुद्र की नीची तह में हो या आकाश के ऊँचे से ऊँचे परदे पर, शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है ॥ २७ ॥

स चापि योगाश्रममाप्य यत्नत-
स्तदेकनिष्ठं विधिनानुमोदितः ।
अशिक्षतानुत्तमसौख्यसत्फलं
सुयोगमार्गं मदनप्रणाशनम् ॥२८॥

स्वामी दयानन्द भी, ईश्वर के अनन्य भक्त और योगी योगाश्रमजी को पाकर उनसे उत्तम सुखदायक और मदनविनाशक योग-विद्या को सीखने लगे ॥ २८ ॥

कृतासनं धारणयानुयन्त्रितं
समाधिमद्ध्यानपरं यमोज्ज्वलम् ।
निरोधयन्तं मरुतोन्तरस्थिता-
निमं न के योगिजनास्तदाभ्ययुः ॥२६॥

जिस समय स्वामी दयानन्द आसन लगा कर समाधि लगाते और धारणा के बल से ध्यान में मग्न हो कर प्राणायाम करते थे तब उनके दर्शन करने के लिए अनेक योगी जन आते थे ॥ २९ ॥

विहाय तत्रैव स दण्डविक्रिया-
मितस्ततो विश्रुतपण्डितव्रजः ।
समस्तवेदाङ्गविलोकनोत्सवे
कृतोद्यमोभूदतिपुण्यदर्शनः ॥३०॥

उसी योगाश्रम में दण्ड त्याग कर, आस पास पण्डितों को सुनते हुए वे समस्त वेदांगों के पढ़ने के लिए उद्यत हुए ॥ ३० ॥

अधीत्य योगागममागमोत्तमं
समध्यगीष्टायमथैकपण्डितात् ।
नवामलं व्याकृतिविस्तृतिं तथा-
वशिष्टवेदागमपद्धतिं च ताम् ॥३१॥

शास्त्रों में उत्तम योगदर्शन को पढ़, आप फिर कृष्ण शास्त्री से नवीन व्याकरण और अवशिष्ट वेदों को भी पढ़ते रहे ॥ ३१ ॥

यथा यथा यत्र च या नवा कला
समीक्षिता तेन कुशाग्रबुद्धिना ।
तथा तथा तत्र च सा कलाचिरा-
दशिक्षि शिक्षाविनयेन सुन्दरी ॥३२॥

जो जो जैसी जैसी नवीन कला जहाँ जहाँ पर आपने देखी वह वह कला वहाँ वहाँ से यथोचित विनयपूर्वक ग्रहण की ॥ ३२ ॥

न सर्वलोकः किल सर्वविद्भव-
त्ययं नयो यो जगतीतलेचलः ।
तमेव मत्वा स चचार चारवत्
स्वकार्यसिद्धिप्रवणैकसाधनः ॥३३॥

"सर्वः सर्वं न जानाति" यह दृष्टांत जो आज कल जगत् में स्थिर है उसी को विचार कर निज कार्य-सिद्धि के लिए आप दूत की तरह भ्रमण करते रहे ॥ ३३ ॥

अथ प्रसङ्गादधिगत्य योगिनौ
पुनः स योगं सकलं सदर्शनम् ।
समीक्ष्य विद्योपगमाय यत्नत-
स्ततोर्बुदं नाम जगाम पर्वतम् ॥३४॥

फिर स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रसंग से ज्वालानन्द शिवानन्द इन दोनों योगियों से योगदर्शन को दुबारा पढ़ कर विद्योपार्जन के लिए आबू पहाड़ को चले गये ॥ ३४ ॥

अगोत्तमे तत्र स राजयोगिभिः-
समं समास्थाय सुखेन साधनैः ।
सुदुस्तरान्योगसमाधिविस्तरा-
नवाप्य तस्मादपरं ययौ गिरिम् ॥३५॥

उस आबू पर भवानीगिरि आदि बड़े बड़े योगियों के साथ रह कर उनसे अतिदुर्लभ समाधि क्रिया को सीख कर फिर वहाँ से भी भवानीशिखर को चले गये ॥ ३५ ॥

समेत्य तत्पण्डितमण्डलीगतः
समस्तशास्त्राणि सहाङ्गकैरयम् ।
विविच्य तेभ्योधिकविद्बभूव किं
न वा दयानन्दसरस्वती यतिः ॥३६॥

वहाँ पहुँच कर अनेक विद्वानों में रहते हुए अंग सहित छः शास्त्रों को पढ़ कर क्या वे उनसे अधिक न हुए? ॥ ३६ ॥

इति क्रमेणाप्य स वाङ्मयोदधेः
परं तटं योगबलेन सत्वरम् ।
निजोन्नतौ दत्तमनास्तथाभव-
द्यथा न कोप्यस्य पुरोभवत्परः ॥३७॥

इस प्रकार वे अपने योगबल से वाङ्मय समुद्र (विद्यासमुद्र) के दूसरे तट पर पहुँच कर अपनी उन्नति में इस प्रकार लगे रहे कि आज तक उनकी समता किसी ने नहीं की ॥ ३७ ॥

अलम्भि या यत्र नवा कला सता
खवह्निवर्षावधि तेन तत्र ताम् ।
विनीतभावेन समेत्य दर्शिता
निजश्रमस्याधिकता भुवस्तले ॥३८॥

तीस वर्ष की अवस्था तक उनकी यह दशा रही कि जब और जहाँ कोई अच्छी बात उन्हें मिली उसे उन्होंने बड़ी नम्रता से ग्रहण किया। उन्होंने जगत् में अपने परिश्रम की पराकाष्ठा दिखादी ॥ ३८ ॥

दिगम्बरीभूय दिगम्बरैरयं
वृतः समन्तादनुगामिभिस्ततः ।
जगाम कुम्भस्य दिदृक्षया द्रुतं
पुरं हरेर्जह्नुसुतातटस्थितम् ॥३९॥

फिर वे कौपीनमात्रधारी (दिगम्बर) हो कर अन्य दिगम्बर अनुयायियों के साथ कुम्भ देखने की इच्छा से हरिद्वार पधारे ॥ ३९ ॥

निनाय तत्रैव दिनानि कानिचित्
सचण्डिकापर्वतगह्वरोदरे ।

नवीनयोगाभ्यसनक्रियाकला-
निविष्टचेता बहुसाधुभिः समम् ॥४०॥

नवीन योग-क्रिया में दत्तचित्त हो कर वे हरिद्वार में चंडी पर्वत पर बहुत साधुओं के साथ कुछ दिन व्यतीत करते रहे ॥ ४० ॥

गते समस्ते जनताजने पुन-
र्दिदृक्षया दिग्वसनो यतीश्वरः ।
शुभं हृषीकेशमगात्स्वसिद्धये
विहाय सर्वानपि सङ्गमाश्रितान् ॥४१॥

कुम्भ का मेला समाप्त होने पर जब सब लोग अपने अपने घर जाने लगे तब वे भी योग की पुष्टि के लिए साथियों को वहीं छोड़ कर हृषीकेश चले गये ॥ ४१ ॥

दिनानि तत्रापि बहूनि संवस-
न्यदृच्छया संगतिमागतौ नवौ ।
स पार्वतीयौ समुपेत्य वर्णिनौ
जगाम टीरीनगरं नगाश्रितम् ॥४२॥

वहाँ वे बहुत दिन तक रहे। वहाँ भी उनके पास बहुत से ब्रह्मचारी आकर इकट्ठे हो गये। फिर वे उन्हीं ब्रह्मचारियों के साथ पर्वत पर बसे हुए टिहरी नगर को चले गये ॥ ४२ ॥

निमन्त्रितस्तत्र जनैर्यथायथं
गतागतैर्भोजनवस्तुसंगताम् ।
अशुद्धतामीक्ष्य घृणामुपेयिवा-
न्न शुद्धिभाजो विरमन्त्यशुद्धिषु ॥४३॥

वहाँ पर लोग उन्हें अपने घर लेजा लेजा कर भोजन कराने लगे। पर उन लोगों के घरों की अशुद्धता को देख कर उनको बड़ी घृणा हुई। क्योंकि शुद्धि से रहनेवालों को अशुद्धि में प्रसन्नता नहीं होती ॥ ४३ ॥

रसादनिच्छन्नपि वासमात्मवित्
स तत्र देशव्यवहारपद्धतेः ।
समक्षभावेन परीक्षणेच्छया
निनाय कालं कमपि क्रमागतम् ॥४४॥

यद्यपि वहाँ पर अधिक रहने की उनकी इच्छा न थी तथापि वहाँ के रीति-व्यवहारों के देखने और जानने की इच्छा से वे कुछ दिन तक वहाँ ठहरे रहे ॥ ४४ ॥

विलोक्य सर्वाण्यपि तन्त्रपुस्तका-
न्ययं सुखेनात्र यतीश्वरो घृणाम् ।
गतः परामामिषमद्यवर्णनै-
रतोहि लक्ष्मीनगरं समागमत् ॥४५॥

वहाँ पर उन्होंने सब तन्त्र-ग्रन्थों को देख डाला । उनमें लिखी हुई मांस-मद्य की बातों को पढ़ कर उनके जी में बड़ी घृणा हुई । फिर वे वहाँ से श्री-नगर चले गये ॥ ४५ ॥

क्रमेण केदारतटे कृतालयो-
बुधेन गङ्गागिरिणा समं कृती ।
चकार शास्त्रादिषु वादकल्पनां
मुदैव मासद्वितयं स सन्मतिः ॥४६॥

वहाँ उन्होंने केदारघाट को अपना निवास-स्थान बनाया और वहीं के रहने वाले गंगागिरि के साथ शास्त्र-विचार करते हुए वे कोई दो मास तक वहीं रहे ॥ ४६ ॥

ततः परं तेन समं महात्मभि-
र्गतेन रुद्रादिपुरीषु संस्थितिम् ।
दिनैककंकल्पयता मुनिस्थली
नगोदरीभूतदरीव सेविता ॥४७॥

वहाँ से चल कर उन्होंने महात्माओं के साथ रुद्र प्रयागादि नगरों में एक एक दिन व्यतीत कर पर्वतों में गुहा के समान गुप्त अगस्त्य मुनि के सिद्धाश्रम का सेवन किया ॥ ४७ ॥

शरदृतुं तत्र समाप्य साधनै-
स्ततः परावृत्य यथाक्रमं कृती ।
स गुप्तकाश्यादिषु संवसन्ययौ
हिमालयं सज्जनमार्गणोद्यतः ॥४८॥

वहाँ पर योग साधन द्वारा शरद् ऋतु को बिता कर लौटते समय गुप्त काशी आदि स्थलों में विश्राम ले कर वे सज्जनों की खोज में हिमालय पर चढ़ने लगे ॥ ४८ ॥

यथाकथञ्चित्कतिचिद्दिनान्यहो-
नयन्स तत्रापि विचारवर्द्धनैः ।
महात्मनामेव विलोकनेच्छया
समारुरोहाचलमभ्रसुन्दरम् ॥४९॥

वहाँ पर भी विचार करते हुए वे कुछ दिन बिता कर, सिद्धों के दर्शनों की इच्छा से, मेघों से सुन्दर तुंगनाथ पर्वत पर चढ़े ॥ ४९ ॥

निरीक्ष्य तत्रातिवनानि तत्परं
मठांश्च नानाविधसिद्धसेवितान् ।
जगाम सोरं बदरीवनाश्रमं
बृहन्नदीर्बाहुबलेन दारयन् ॥५०॥

वहाँ पर अनेक वन और नानाविध मठों को देखते हुए विशेष लाभ के लिए नदियों को पैर कर बदरिकाश्रम गये ॥ ५० ॥

निवासमाकल्पयता महात्मना
सुखेन तस्मिन्बदरीवने शिवे ।
व्यधायि चर्चाखिलवेदविस्तरे
निजोचिता रावलयोगिना समम् ॥५१॥

उन्होंने वहाँ पर भी एक रात्रिभर निवास कर वहाँ के रहनेवाले रावल योगी के साथ समस्त वेद विषय में विचार किया ॥ ५१ ॥

पुनर्दिदृक्षावशतो दिनोदये
समेत्य कूटं हिमवत्परिभ्रमन् ।
ददर्श साभ्रानचलान्न कुत्रचित्
स योगिनां वासमतोवतीर्णवान् ॥५२॥

सूर्योदय के समय फिर वहाँ से सिद्धों की दिदृक्षा से पर्वत के शिखर पर चढ़ कर जब उन्होंने हिमालय के सिवा और कुछ न देखा तब वे धीरे धीरे नीचे को उतरने लगे ।। ५२ ।।

नदीं समुत्तीर्य गतः परंतटं
यदा न तत्राप्यवलोकयत्सुधीः ।
समाधिनिर्धूतमलान्स योगिनो-
निजाश्रमं गन्तुमनास्तदाभवत् ॥५३॥

मार्ग में एक नदी आगई । उसको पैर कर वे परली पार चले गये । जब वहाँ भी कोई योगी न मिला तब वे बदर्याश्रम को लौट आये ॥ ५३ ॥

दिनात्यये सद्बदरीवनेमुना
हिमादनं यत्परिकाल्पितं क्षुधा ।
तदेव मूर्च्छोदयकारणं मुने-
र्बभूव देहान्तकरं सुदुःसहम् ॥५४॥

बदर्याश्रम में पहुँच कर जब उनको भूक लगी तब सन्ध्या-समय उन्होंने बर्फ खालिया । उसके खाने से उनको प्राणान्तक वेदना हुई और मूर्च्छा भी हो आई ॥ ५४ ॥

जनद्वयं दैववशादुपागतं
समीक्ष्य ताभ्यां सममेव तद्गृहम् ।

तदाययावर्थनया ततः परं
जगाम तीर्थान्तरमुद्यमोद्यतः ॥५५॥

उनकी मूर्च्छा दूर हुई ही थी कि इतने में कहीं से दो आदमी उनके पास आये। उन्होंने स्वामीजी को अपने घर लेजाने के लिए उनसे बहुत प्रार्थना की। स्वामीजी उनके घर चले गये। रात भर रह कर फिर वे वहाँ से भी चल दिये॥ ५५॥

स सङ्गमे सङ्गतिमाप्य योगिनां
प्रसिद्धमेकं वसुधाभिधं पुरम्।
प्रचक्रमे स्वल्पनदीसमुद्भवे
न धर्मभाजो विरमन्ति दुःखतः ॥५६॥

नदियों के संगम के साथ ही साथ उनको योगियों का भी समागम होता गया। वहाँ से फिर वे सिद्धपथ जाने की तैयारी करने लगे। वे दुःखों से नहीं घबराते थे, क्योंकि धर्मात्मा जन दुःखों से नहीं हटा करते॥ ५६॥

अवाप्य तत्रापि गतिप्रयोजनं
ततोऽग्रगं मार्गमलभ्य धैर्यतः।
अवातरत्तं क्रमशो हिमालयं
निजेष्टसंसिद्धिमुदानुमोदितः ॥५७॥

जब सिद्धपथ में पहुँच कर भी उनके जाने का प्रयोजन सिद्ध न हुआ—वहाँ भी कोई सिद्ध योगी न मिला—तब वे धीरे धीरे हिमालय से नीचे उतरने लगे, क्योंकि वहाँ से आगे जाने का मार्ग ही दिखाई न देता था॥ ५७॥

अवाप्य मध्येवसितिस्थलं शिवं
निशां च तत्रैव निवार्य तद्गतम्।
महर्षिमभ्येत्य स नैजनिश्चयं
स्थिरीचकार स्थविरोपमं मुनिः ॥५८॥

मार्ग में एक नये स्थान में आकर आपने रात्रि व्यतीत की और वहाँ के निवासी एक अतिवृद्ध महर्षि के सामने अपने विचारों को दृढ़ किया॥ ५८॥

पुनस्ततो दुर्गमकाननान्यटन्
दिनात्यये रामपुरान्तरस्थिते ।
नवाश्रमे रामगिरेरवस्थितिं
चकार तस्मादगमत्स सागरम् ॥५६॥

वहाँ से चल कर जंगलों में घूमते घामते वे सायंकाल रामपुर के नवीन रामगिर्याश्रम में पहुँचे। वहाँ रात्रि भर निवास करके फिर वे द्रोणसागर चले गये ॥ ५९ ॥

क्रमेण काशीपुरसंश्रिते वने
शरदृतोः कानिचिदप्ययं यमी ।
निनाय योगेन दिनानि तत्परं
मतिं प्रचक्रे मरणाय निश्चिताम् ॥६०॥

द्रोणसागर से चल कर फिर वे काशीपुर में पहुँचे। शरत्काल के कुछ दिन उन्होंने वहाँ बिताये। फिर उन्होंने योगद्वारा शरीरत्याग करने का निश्चय कर लिया ॥ ६० ॥

परं विचारादवरुध्य तां मतिं
परोपकारैकमना यतीश्वरः ।
यथाकथञ्चिन्नगरेषु संवस-
न्नवाप गङ्गातटमुच्चसैकतम् ॥६१॥

परन्तु विचार करके उन्होंने उस इच्छा को रोक दिया और वे परोपकार के लिए उद्यत हो गये। मुरादाबाद आदि नगरों में कुछ दिन विश्राम लेकर फिर वे भागीरथी गंगा के तट पर विचरने लगे ॥ ६१ ॥

निवासबुद्धिं परिकल्प्य तत्तटे
नवीनयोगश्रमपारवश्यतः ।
शवं चलन्तं कमले दिदृक्षया
व्यदारयच्चक्रविशेषमण्डले ॥६२॥

गंगा के तट पर रहते हुए उन्होंने बहते हुए एक मुर्दे के मस्तक और छाती को चीरा और यह देखना चाहा कि आज कल के योग-ग्रन्थों से शारीरिक का मिलान होता है या नहीं ॥ ६२ ॥

अलभ्य तच्चक्रगतीवयत्नतो-
मनुष्यसंवर्धितसर्वपुस्तके ।
नितान्तमिथ्यामतिमेव सर्वशः
स्थिरीचकार क्रमशो यथोचिताम् ॥६३॥

उन्होंने बहुत यत्न किये परन्तु मनुष्य-कल्पित सब ग्रन्थों को उन्होंने मिथ्या पाया। तब से उनका यही निश्चय हो गया ॥ ६३ ॥

वसन्पुनस्तत्र दिनानि कानिचि-
न्नदीतटे निर्मलबालुकोच्चिते ।
यथायथं प्रारभताप्रमेयभो-
गतिं पवित्रीकृतभूतलो मुनिः ॥६४॥

मुर्दों की परीक्षा करके आप कुछ दिन वहीं रहे और फिर पवित्र बालुकामय गंगा-तट पर आपने भ्रमण करना आरम्भ किया ॥ ६४ ॥

दिनद्वयं कुत्रचिदेकवासरं
दिनाष्टकं वा तटिनीतटे वसन् ।
स योगिवर्यो मुनिदर्शनेच्छया
जगाम वेगादिव नार्मदं तटम् ॥६५॥

इसी तरह भ्रमण करते करते कहीं एक दिन, कहीं दो दिन गंगा तट पर ठहरते ठहरते महात्माओं के दर्शनों की लालसा से नर्मदा चले गये ॥६५॥

परिश्रमादाप्य मुनिव्रजोचितं
स नर्मदातीरवनं तदन्तरे ।
ददर्श भल्लूकमतीवभीषणं
समक्ष एवागतमुत्तरोत्तरम् ॥६६॥

बड़े परिश्रम से वे मुनियों के निवास करने योग्य नर्मदा-तट पर पहुँचे। वहाँ जंगल में जाते समय सामने उनको एक रीछ आता दिखाई दिया ॥ ६६ ॥

विमोचयंस्तद्वदनात्स्वजीवनं
सहाययोगेन ततोतिगह्वरम् ।
विवेश भीमं वनमेकसत्पथा
वपुर्लघूकृत्य सरीसृपो यथा ॥६७॥

अपने साहस और भीलों की सहायता से रीछ से बच कर फिर वे एक अति गहन वन में पहुँचे। वहाँ संकीर्ण स्थान होने के कारण साँप के समान छाती के बल लोट लोट कर भीतर चले गये ॥ ६७ ॥

यथाकथञ्चित्क्वचिदुन्नतोभवन्
क्वचिद्विनम्रः स वनान्तभूमिषु ।
महात्मभिः साकमुवास विभ्रमद्-
गवीषु वर्षत्रयमेकमानसः ॥६८॥

वह स्थान बड़ा विषम था। कहीं ऊँचा था और कहीं नीचा। उस वन के अन्त भाग में पहुँच कर वे कोई तीन वर्ष तक महात्मा जनों के साथ उसी नर्मदा-तट पर रहे ॥ ६८ ॥

तपो महोग्रं फलमूलभोजनः
समापयित्वा स वनान्तभूमिषु ।
महस्तदोङ्कारसमाख्यमीक्षयन्
प्रचक्रमे भूषितभूतलः क्रमात् ॥६९॥

वहाँ पर तीन वर्ष तक घोर तप करके उन्होंने ओंकार रूप ईश्वर को जाना। फिर वे क्रमशः वहाँ से चल दिये ॥ ६९ ॥

परिभ्रमन्वैदिकधर्मसेविनां
गृहेषु दैवात्कृतभोजनो द्रुतम् ।

करीलकङ्कोलकदम्बसंवृतां
समाजगामाथ स माथुरीं भुवम् ॥७०॥

वहाँ से चल कर वे वैदिक धर्मरत मनुष्यों के यहाँ विश्राम लेते हुए करील, कंकोल और कदम्ब आदि वृक्षों से सुशोभित मथुरापुरी में पहुँचे ॥ ७० ॥

अवाप्य तस्यामपि दण्डिनं गुरुं
विनीतवेषेण पुरस्तदाज्ञया ।
नवीनभट्टोजिकृतिं यथाबलं
पदत्रपातैर्नितरामपूपुजत् ॥७१॥

वहाँ दंडी विरजानन्द सरस्वती के शिष्य बन कर उनकी आज्ञा से पहले भट्टोजिकृत नवीन कौमुदी का आपने पदत्राणों से सत्कार किया ॥ ७१ ॥

पुनः प्रसादादतिभक्तिसञ्चिता-
त्ततोधिगत्याष्टकभाष्यविस्तरम् ।
स योगिवर्यो गुरुदर्शितक्रमं
समाललम्बे गुरुणानुमोदितः ॥७२॥

फिर प्रसन्नतापूर्वक विरजानन्दजी से अष्टाध्यायी महाभाष्य रूप प्रसाद लेकर उनकी आज्ञा से उन्हीं के बतलाये हुए मार्ग का उन्होंने अनुसरण किया ॥ ७२ ॥

उपात्तविद्यो ऋषिरेष सादरं
लवङ्गरूपां विनिवेद्य दक्षिणाम् ।
जयोचितामाशिषमाप भूतले
किमस्त्यलभ्यं गुरुपादवन्दनात् ॥७३॥

जब ऋषि दयानन्द विद्या पढ़ चुके तब उन्होंने गुरुदक्षिणा में गुरुजी को थोड़ी सी लोंग भेंट कीं । गुरुजी ने प्रसन्न हो कर आशीर्वाद दिया कि तुम दिग्विजय करो ॥ ७३ ॥

जगत्यमुष्मिन्गुरुभक्तिरुत्तमा
ऋषिप्रदिष्टेषु पथःसु निश्चितिः ।
विशेषतः संगतिरात्मवेदिनां
समस्तवाञ्छा फलदास्ति देहिनाम् ॥७४॥

संसार में गुरु में भक्ति रखना, ऋषि-प्रदिष्ट मार्ग में निश्चय रखना, योगियों का संग करना, मनुष्यों के लिए समस्त वांछितप्रद माना गया है ॥ ७४ ॥

इत्थं समस्तविषयानधिगत्य योगी
पूर्वापरार्थगतिमात्मगतां विलोक्य ।
नानामतानुगतदिग्विजयाय चक्रे
नैजं मनः शमदमादिगुणैरुपेतः ॥७५॥

इस प्रकार समस्त वेद-वेदाङ्गों को पढ़ कर और अपनी पूर्वापर गति को अच्छी तरह जाँच कर अनेक मतपूर्ण दिशाओं के जय करने में अपना मन लगाने लगे ॥ ७५ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
विद्याध्ययनवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ।

चतुर्थः सर्गः

अथ जयाय दिशां स महामति-
र्निजबलेन मनःसु विपश्चिताम् ।
भयमनल्पममन्दमुपादधे-
रविमहा विमहाः कलयन्दिशः ॥१॥

पूर्वोक्त सर्ग में विद्याध्ययन का वर्णन कर दिग्विजय से पहले उनके विचारों का वर्णन करने के लिए यह सर्ग आरंभ किया जाता हैः—

वे सूर्य के समान महर्षि दिशाओं को उत्सव-शून्य देख कर दिग्विजय से पूर्व अपने आत्मिक बल से विपक्षियों के मन में भय उत्पन्न करने लगे ॥ १ ॥

प्रथममेव समुन्नतिभावनां
समधिगम्य शुभार्यपथस्य सः ।
निगममन्त्रशतैः परमेश्वरं
प्रमुदितो मुदितोत्कलमस्तुवत् ॥२॥

वे प्रसन्न-चित्त ऋषि पूर्व से ही शुभ आर्य-पथ की उन्नति का अनुमान कर अनेक वेद मंत्रों से ईश्वर की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

अधमबौद्धमतादुदयङ्गतां
प्रकृतिपूजनविस्तृतिमुद्धुराम् ।
निगमवाग्विशिखैः परितर्जयन्
स सकलां सकलामतनोद् भुवम् ॥३॥

बौद्ध मत से प्रकट हुई इस पाषाण-पूजा को वैदिक प्रमाणों से हटा कर ऋषि समस्त भूतल को दुबारा चेतन बना गये ॥ ३ ॥

न जननी जनकोपि न सोदरो-
न तनयो न सुहृन्न बलं स्वकम् ।
अभवदस्य सुदिग्विजयोद्यमे
तदपि स प्रससार सहायकृत् ॥४॥

यद्यपि इस दिग्विजय के कार्य में माता, पिता, भाई, पुत्र, मित्र और बल कोई भी उनका सहायक न था तो भी केवल आत्मिक बल पर विश्वास कर वे अपने उत्साह को प्रति दिन बढ़ाते ही गये ॥ ४ ॥

भवति यस्य सहायकरः प्रभु-
र्न स बलान्तरमिच्छति मानवः ।
इति निदर्शयता किमयं महान्
प्रकटितः किल दिग्विजयोद्यमः ॥५॥

जिस पुरुष का सहायक ईश्वर होता है वह औरों की सहायता नहीं चाहता । क्या इस लोकोक्ति को दिखाते हुए ऋषि ने इस बड़े भारी कार्य का आरंभ किया । यह उत्प्रेक्षा है ॥ ५ ॥

साम्प्रतं महर्षेर्विचारानेवाह—

मनुजनिर्मितभागवतादिका
बहुपुराणकथा जगतीतले ।
प्रथममस्ति निदानमदः कथं
कलयतान्निगमागमविस्तृतिम् ॥६॥

अब उन के विचारों का वर्णन करते हैं—इस जगत् में मनुष्य-रचित नाना पुराणों की जो कथायें प्रचलित हैं यही नाश का पहला कारण है । यह वैदिक धर्म की उन्नति न होने देगा इसलिए पहले इस का ही निराकरण करना उचित है । यह प्रथम निश्चय किया ॥ ६ ॥

न लिखिता किल वेदचतुष्टये
मृतकदेहनिमित्तपरा क्रिया ।

इयमतोपि कथं परिदर्शये-
ज्जगति सन्निगमोदितकल्पनाम् ॥७॥

चारों वेदों में कहीं भी मृतक श्राद्ध का उल्लेख नहीं इसलिए इस का भी जब तक खंडन न होगा तब तक वैदिक धर्म का प्रचार न होगा। यह उन्होंने दूसरा निश्चय किया ॥ ७ ॥

निगदिता सलिलेषु वृथा कृता
क्व ननु तीर्थमतिर्मनुजैरलम् ।
तदियमार्यनिवासविनाशिनी
विलयमेष्यति चेद्भविता शिवम् ॥८॥

संसार में मनुष्यों ने जो जल में तीर्थ-बुद्धि मानी है यह भी वेद में कहीं नहीं इसलिए इस भाव के दूर होने पर जगत् का कल्याण होगा। यह तीसरा निश्चय किया ॥ ८ ॥

दृषदुपासनया जडताङ्गतं
जगदिदं कथमेष्यति चेतनाम् ।
यदि न यास्यति नाशमियं प्रथा
सदुपदेशगुणैर्जगतीतलात् ॥९॥

जड़ मूर्तियों की उपासना करते करते यह जगत् जड़ता को प्राप्त हो गया। जब तक सदुपदेशों से यह जड़पूजा की प्रथा न उठाई जायगी तब तक यह जगत् चेतन न होगा ॥ ९ ॥

इति विचारयतोस्य हृदन्तरे
जनदशां जगतीतलसंश्रिताम् ।
अभवदुन्नतिचिन्तनमार्गगा-
मतिरतीत्य समस्तमनोरथान् ॥१०॥

संसार में मनुष्यों की ऐसी दशा देख कर उनके मन में जो विचार हुआ, उससे उनकी मति सब कामों को छोड़ कर पहले उन्नति के साधनों का विचार करने लगी ॥ १० ॥

जगति यैरहहाप्य शुभां जनिं
न विहिता परमेश्वरवर्त्मनि ।
निजगतिर्बहुधा सकलं वयः
प्रगमितं ननु तैः खरखर्ववत् ॥११॥

जिन्होंने संसार में शुभ जन्म पा कर ईश्वरोक्त वेदमार्ग का अनुसरण नहीं किया उन्होंने सब अपनी अवस्था मानो गधे और बौने पुरुष के समान नष्ट की ॥ ११ ॥

सकलमेव जगत्परिवञ्चितं
बहुमतानुगतैर्बहुदुर्जनैः ।
परहितानुरतो न हि दृश्यते
जगति कोपि महान्पुरुषोत्तमः ॥१२॥

नाना मतों में फँसे हुए दुर्जनों ने साराही जगत् ठग रक्खा है, कोई भी पुरुषोत्तम परोपकार में दत्तचित्त नहीं दीखता ॥ १२ ॥

यदपि पूर्वमुनिप्रतिपादिता
विधिमयी नितरां भुवि राजते ।
बहुगुणा सरणिस्तरणीसमा
तदपि दुर्दशया भरितं जगत् ॥१३॥

यद्यपि भूतल में मुनियों के द्वारा बतलाई हुई, अनन्त गुण वाली, वैदिक सरणि तरणि (नौका) के समान विद्यमान है, तो भी यह जगत् दुर्दशा में डूबा हुआ है ॥ १३ ॥

बहव एव भवन्ति गतानुगाः
सकलकृत्यविधौ जगतीतले ।
नयनयोर्न विभाति पुरोगतो-
वतरणे कृतनिश्चयकोग्रणीः ॥१४॥

हर एक कार्य में पीछे पीछे जानेवाले लोग जगत् में बहुत से पाये जाते हैं परन्तु स्वतन्त्रता से नवीन कार्य करनेवाला कोई भी दृष्टिगत नहीं होता ॥ १४ ॥

समवलम्बितमेव जनैर्मतं
निजमनोविषयङ्गतमादरात् ।
न विहितं किल वेदविधौ पदं
मलिनता न दधाति गुणे पदम् ॥१५॥

जगत् में अपने अपने मन के अनुकूल मतों को तो मनुष्यों ने माना परन्तु वेद-मार्ग में किसी ने पैर न रक्खा। ठीक है, मलिनता गुणों में पद नहीं रखती ॥ १५ ॥

विधिविरुद्धविधानपरायणा
न विधिनोदितमर्थमुपासते ।
जगति सम्यगियं वचनीयता
न मधुरेस्ति कषायवतां रुचिः ॥१६॥

वेद के विरुद्ध कार्य करनेवाले पुरुष वेद-प्रतिपादित अर्थ को नहीं माना करते। यह संसार में प्रसिद्ध है कि कसीले पदार्थ के खानेवाले मीठे पदार्थ को पसंद नहीं करते ॥ १६ ॥

कथमियं जगतीतलवर्तिनी
विलयमेष्यति भिन्नरुचिर्नृणाम् ।
विमलवेदपथात्समलं गता-
धमपुराणपथं परिपन्थिनम् ॥१७॥

निर्मल वैदिक मार्ग को छोड़ कर मलिन पौराणिक मार्ग में लगी हुई जनों की भिन्न रुचि संसार से किस प्रकार नष्ट होगी ॥ १७ ॥

अहह मन्मतिमार्गमुपागता
कविजनश्रुतिरत्र सहायिनी ।

दिवसभीतनिशाटनसन्तति-
र्न रविदर्शनमिच्छति कर्हिचित् ॥१८॥

इस समय मेरे लिए उन कवियों की वाणी सहायक बन गई कि दिन से डरे हुए उलूकों की संतति कदापि सूर्य का दर्शन करना नहीं चाहती ॥ १८ ॥

सहजवैरमिदं प्रतिभाति मे
मनसि सज्जनदुर्जनमध्यगम् ।
जलहुताशनयोरिव वैदिके
तदितरे पथि यद्गमनं स्वतः ॥१९॥

जल और अग्नि के समान यह सज्जन-दुर्जनों का विरोध हमें स्वाभाविक प्रतीत होता है जो कि वैदिक तथा अवैदिक मार्ग से स्पष्ट ही है ॥ १९ ॥

विमलवैदिकधर्ममणिप्रभा
न विषयैर्मलिने हृदि राजते ।
विमलदर्पण एव विराजते
मुखशशिद्युतिरुत्तमवर्ष्मणाम् ॥२०॥

जिनके अन्तःकरण विषयरूपी मलों से मैले हैं उनके अन्तःकरण में वैदिक धर्ममणि की प्रभा नहीं झलका करती । शुद्ध दर्पण में ही सुन्दर शरीर वालों की मुख-शोभा प्रतिबिम्बित होती है ॥ २० ॥

कतकवृक्षफलं मलिनं पयो-
विमलतां नयतीति जनश्रुतिः ।
फलवती न हि केवलकर्दमे
भवति किन्तु तदाविलवारिणि ॥२१॥

कतक वृक्ष का फल मलिन जल को निर्मल बना देता है, यह दृष्टांत केवल कीचड़ में कदापि फलित नहीं होता, किन्तु वह गदले जल को ही शुद्ध कर सकता है ॥ २१ ॥

सकलवाञ्छितदो जगतीतले
यदपि वेदकुटः प्रतिराजते ।
तदपि नाम जनैरनुसंश्रिताः
कटुफलास्तरवः किमतःपरम् ॥२२॥

यद्यपि इस जगत् में समस्त फलों का देनेवाला वेद-वृक्ष विराजमान है तो भी मनुष्यों ने कटु फलोंवाले अनेक वृक्षों का आश्रय ले रक्खा है ॥ २२ ॥

साम्प्रतं कटुफलांस्तरूनेवाह—

रुधिरपानपरायणचेतसा
जगति शाक्तमतं प्रतिपादितम् ।
प्रकटमेव यदस्ति महीतले
श्रितमनेकजनैर्नरकोन्मुखैः ॥२३॥

अब कटु फलवाले वृक्षों को ही बतलाते हैं—किसी रुधिर के प्यासे पुरुष ने इस जगत् में शाक्त मत प्रकट किया है जोकि अनेक नरकोन्मुख पुरुषों से जमा हुआ है ॥ २३ ॥

व्यरचि केनचिदुत्पथगामिना
तदपि वैष्णवमार्गविडम्बनम् ।
भवति यत्र पशोरिव दुर्दशा
जनि[illegible]तस्य जनस्य नु तापनैः ॥२४॥

उत्पथगामी किसी अन्य पुरुष ने जगत् में वैष्णव मत का ढोंग फैलाया है जिस में कि जन्म ले कर मनुष्य को पशु के समान जल कर दुर्दशा भोगनी पड़ती है ॥ २४ ॥

तदितरेण जनेतरवृत्तिना
गतमतद्वयभिन्नमदः कृतम् ।

जगति शैवमतं शिशुबुद्धिना
भवति यत्र सुखेन वनस्थितिः ॥२५॥

दोनों मतों से भिन्न मत चलानेवाले किसी बालबुद्धि पुरुष ने जगत् में शैव मत बना दिया है जिस में फँस कर वनों में ही रहना पड़ता है ॥ २५ ॥

गणपतिं परिकल्प्य तदाश्रितं
व्यधृत किं न मतं पुरुषाधमैः ।
प्रकृतिभिन्नतया किल वास्तवे
भवति यत्र मुखस्य विपर्ययः ॥२६॥

कल्पित गणेश को मान कर उसके नाम से चलाया हुआ गाणपत मत क्या मनुष्यों ने धारण नहीं किया कि जिस में प्रकृति से विरुद्ध मुख का भी वास्तव में विपर्यय होजाता है ? ॥ २६ ॥

मनुजतामपहाय कुबुद्धिभि-
र्जनवरेषु गुणान्वितनामसु ।
त्रिमुखता चतुराननता तथा
भुजचतुष्टयताध्यवरोपिता ॥२७॥

मन्द-बुद्धियों ने गुणयुक्त नामवाले अच्छे पुरुषों से मनुष्यत्व को हटा कर उनमें त्रिमुखता, चतुर्मुखता और चतुर्भुजता का आरोप कर दिया ॥ २७ ॥

क्व जडमूर्तिरनार्यफलप्रदा
गुणमयी क्व परेशगुणस्मृतिः ।
परमहो गतबुद्धिभिराद्दता
जगति सैव विचित्रमिदं कृतम् ॥२८॥

अनिष्ट फल देनेवाली कहाँ जड़ की उपासना, कहाँ परमेश्वर की गुणमयी स्तुती। पर तो भी नष्ट-बुद्धियों ने उसको छोड़ जड़ का ही आश्रय ले लिया। क्या ही आश्चर्य है ! ॥ २८ ॥

सकलशक्तिमतः करुणाकरा-
दजरभावगतात्परमेश्वरात् ।
जगति ये विमुखाः प्रकृतिं जडा-
मनुनमन्ति कथं न हि ते जडाः ॥२९॥

सर्वशक्तियुक्त करुणाकर अजर परमेश्वर से विमुख हो कर जो पुरुष जड़ प्रकृति का अवलंब लेते हैं वह क्योंकर जड़ नहीं हैं ? ॥ २९ ॥

मतिलघुत्वमुपेत्य पुराणतां
समधिरोप्य जडैर्निजपुस्तके ।
तदनुकूलकथापरिकल्पनात्
सुमनुजेष्वपि दोषगतिः कृता ॥३०॥

बुद्धि की हीनता से जड़ मनुष्यों ने स्वयं बनाये हुए ग्रन्थों का पुराण नाम धर कर उनके अनुकूल कथा कर करके अच्छे पुरुषों को भी कलंकित कर दिया ॥ ३० ॥

गुणचतुष्टयवत्यतिसुन्दरे
धवलिते यशसा धनवद्गृहे ।
निजसुताविषयैककलङ्किता
निजमतानुगमादधिरोपिता ॥३१॥

अब दोषारोपण ही बतलाते हैं—चार वेदों के जाननेवाले, अति सुन्दर, यशोविभूषित, धनवान् ब्रह्मा के ऊपर अपने मत के अनुरोध से पुत्री-गमन का पाप लगा दिया ॥ ३१ ॥

रजतपर्वतवासिनि सत्कले
त्रिनिगमोदितकर्मपरे कृता ।
अधमभिल्लवधूजनसंगति-
र्नगसुतादयितेधमपण्डितैः ॥३२॥

कैलास पर्वत के ऊपर रहनेवाले शुभ गुणयुक्त तीन वेदों के वेत्ता शिव में अधम जनों ने भीलिनी के साथ पाप करने का पाप लगा दिया ॥ ३२ ॥

यदुकुलैकमणौ गुणसागरे
निखिलयोगिवरेतिबले हरौ ।
सकलगोपवधूजनसंगमं
समधिरोप्य कृतास्ति निरादृतिः ॥३३

यदुवंश के मणिरूप, गुणसागर, योगिराज, बलवान् श्रीकृष्ण के ऊपर गोपियों के साथ व्यभिचार करने का पाप लगा कर उनका निरादर कर दिया ॥ ३३ ॥

अतिमतौ गुणवत्तरभावने-
प्यकृत सत्यवतीतनये खलैः ।
बहुपुराणविनिर्मितिकल्पना
परमदोषमयी किमतःपरम् ॥३४॥

इससे अधिक और क्या होगा कि महाबुद्धिमान्, महागुणी श्रीव्यासदेवजी में अज्ञ जन यहाँ तक कल्पना करने लगे, कल्पना ही नहीं किन्तु हठात् स्पष्ट कहते हैं, कि अठारहों पुराण व्यासजी ने ही बनाये हैं । क्या यह व्यासदेव के लिए भारी दोष नहीं है ? ॥ ३४ ॥

दिनमणौ वडवागमनं वृषे-
प्यथ सहस्रभगोदयकल्पनम् ।
द्विजपतौ गुरुतल्पगता न किं
जगति भागवतैरवरोपिता ॥३५॥

हा हन्त ! सूर्य में घोड़ी के साथ ※ ※ करने का, इन्द्र में सहस्र※ ※ धारण करने का और चन्द्रमा में गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करने का दोष भागवत वालों ने लगा दिया ॥ ३५ ॥

तदपरं किमिहास्ति महीतले
यदुदरम्भरिभिर्न कलङ्कितम् ।
मनुजरूपधरैर्निगमारिभिः
स्वकृतिसिद्धिपरैः पशुबुद्धिभिः ॥३६॥

पृथ्वी-तल पर कौन बचा हुआ है जिसको इन स्वार्थी, वेद के शत्रु, स्वार्थी, बुद्धिहीन, मनुष्य नामधारी जीवों ने कलङ्कित नहीं किया ॥ ३६ ॥

अभिमताप्तिकरी गुरुगौरवा-
दभिमुखत्वमुपैत्यपि या चिरात् ।
विमुखतामुपगम्य ततो जनै-
रुदरपूरणहेतव आदृताः ॥३७॥

हा ! अभीष्ट फलों के देने वाली और गुरु-सेवा से प्राप्त होनेवाली विद्या से विमुख हो कर मूर्ख जनों ने उदर-पूरणार्थ नाना प्रकार के ढकोसले निकाल लिये ॥ ३७ ॥

प्रकृतिपूजनमेव समाश्रितं
बहुविधं परिहाय निजं पथम् ।
तदितरेण कथाकथनाश्रिता
निगममार्गगतिर्न च केनचित् ॥३८॥

कोई स्वार्थ-साधन के लिए प्रकृति की पूजा करने लगा और कोई कथा-कहानियों के द्वारा ही अपना आजीवन करने लगा, परन्तु वैदिक मार्ग पर चलने के लिए कोई भी आरूढ़ नहीं हुआ ॥ ३८ ॥

अहह किं कथयाम्यधिकं परे
सकलजीवनदातरि निर्जरे ।
कमठमीनवराहनृसिंहता
व्यरचि वेदपथेष्वपि रूपता ॥३९॥

अहो ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो परमेश्वर अजर है और जो सब को जीवन देनेवाला है उसको भी इन्होंने मच्छ, कछुआ, वराह, नृसिंह और वामन आदि अवतार धारण करनेवाला बतला दिया और वेदों में भी मूर्ति की कल्पना कर डाली ! ॥ ३९ ॥

अजमुखो यजुरुद्धतगर्दभा-
ननधरो मृगथाश्वमुखोद्भुतः ।

स किल सामविधिः कपिवक्त्रवा-
नकृतसोंगिरसाविहितः खलैः ॥४०॥

इन मूर्खों ने यजुर्वेद को बकरे के से मुँहवाला, ऋग्वेद को गधे के से मुँहवाला, सामवेद को घोड़े के से मुँहवाला और अथर्ववेद को बंदर के से मुँहवाला बता दिया[1] ॥ ४० ॥

उपकृतिं जगतामवलोक्य यो-
रविशशिद्युतिमत्रचकारताम् ।
निखिलविश्वगतस्य सुवर्तिका-
द्वितयविद्युतिरादरणे कृता ॥४१॥

जिस ईश्वर ने जगत् के उपकार के लिए सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश दिया, मूढ़ जनों ने उसके लिए दो बत्तियों की रोशनी की ॥ ४१ ॥

जगति येन नदीनदसागरा
विरचिताः सकलोपकृतेः कृते ।
बहुलघौ वसने जलकल्पना
व्यतनि तस्य कृते शठमानवैः ॥४२॥

जिस ईश्वर ने सबके उपकार के लिए नदी, नद और सागर बना दिये, मूर्खों ने उसके लिए छोटी सी घंटी में पानी देना शुरू किया ॥ ४२ ॥

बहुविधान्नफलार्जुनशर्करा
दधिघृताद्यकरोदिह यः परः ।
स जनदत्तपदार्थविडम्बना-
सहनमाचरतीति महाद्भुतम् ॥४३॥

---

१ हेमाद्रिकृत चतुर्वर्ग चिंतामणि के व्रत खण्ड में विश्वकर्म शास्त्र के नियम से वेदों के रूप ऐसे ही बताये गये हैं ।

जिस ईश्वर ने नाना प्रकार के अन्न, फल, तृण, मिष्ट, दधि, घृत आदि पदार्थ बनाये हैं वह मनुष्य-दत्त पदार्थों के द्वारा अपनी विडंबना देख रहा है। बड़ा आश्चर्य है ॥ ४३ ॥

मनुजदण्डवशे पशवोप्यलं
प्रथमतः किल येन नियन्त्रिताः ।
स कथमानडुहं रथमास्थितो-
व्रजति गच्छति चेत्कथमीश्वरः ॥४४॥

जिस ईश्वर ने पूर्व से ही समस्त पशु मनुष्य के वश कर दिये वह निराकार बैल के रथ पर क्योंकर जायगा? यदि जायगा तो वह परमेश्वर कैसा? ॥ ४४ ॥

क्व विहितास्ति विधौ पशुमारणा
परमहो बहु सापि महाधर्मैः ।
निजविनिर्मितवाक्यवशादलं
प्रतिदिनं क्रियते किमतोधिकम् ॥४५॥

वेद में हिंसा कहीं नहीं लिखी, परन्तु तो भी इन मूढ़ों ने स्वयं बनाये हुए वाक्यों से संसार में हिंसा प्रचलित की। इस से अधिक और क्या होगा! ॥ ४५ ॥

गुरुषु मातृषु पितृषु यार्चना
विलिखिता निगमानुगबुद्धिभिः ।
मरणतः परमत्र भवत्सु सा
जगति किन्न मदेन विधीयते ॥४६॥

जो सत्कार जीते माता, पिता, गुरुओं के लिए वेद में करना लिखा है, मन्द-मतियों ने उसको उनके मरने के बाद करना आरंभ कर दिया ॥४६॥

निखिलशास्त्रनिधौ गुणमञ्जुले
परहितानुविधायिनि सज्जने ।

विमलतीर्थमतिं परिहाय सा
कलुषतोयसमाश्रितिराहृता ॥४७॥

मनुष्यों को शास्त्रवेत्ता गुणयुक्त परोपकारी सज्जन में जो तीर्थ-बुद्धि करनी उचित थी उसको छोड़ गदले पानीवाले गढ़ों में करनी प्रारंभ की ॥ ४७ ॥

विलयमेव गतास्ति गृहे गृहे
निजसुतोन्नतिकारणकल्पना ।
गुरुकुलानुमतिर्यमधारणा
सकलसौख्यविवर्धनकारणा ॥४८॥

अपने पुत्रों की उन्नति की कल्पना, गुरुकुलों की अनुमति, यमों का धारण, सारे सुखों के बढ़ने का कारण घर घर से उठ गया ॥ ४८ ॥

अधमपुस्तकविश्वसनाद्धता
कथनभावमलं जगतीतले ।
विरचना तनयापठनोचिता
फलमतो विधवापरिवर्धनम् ॥४९॥

शीघ्रबोधादि पुस्तकों में विश्वास होने से जगत् में कन्याओं के पढ़ने की प्रथा ही उठ कर चली गई, नष्ट हो गई, जिस का परिणाम विधवाओं की वृद्धि विद्यमान है ॥ ४९ ॥

असमये मरणं बलहीनता
गुणपराङ्मुखता धनशून्यता ।
विषयिता विधवाजनविस्तृतिः
सकलमस्ति पुराणविचेष्टितम् ॥५०॥

अकाल में मृत्यु, बल का न होना, गुण-शून्य रहना, धन-हीन होना, विषयी बनना, वैधव्य फैलना, यह सब पुराणों का ही फल है ॥ ५० ॥

इति विचिन्त्य समस्तजगद्दशां
प्रथमतो यतिरात्मनि धीरधीः ।

कुपथखण्डन एव गुणोत्तरां
निजमतिं प्रददौ विधिदर्शनात् ॥५१॥

समस्त जगत् की पहले से ऐसी दशा देख कर वे धीरमति, गुणी अपनी मति को कुपंथों के खंडन में ही लगाने लगे ॥ ५१ ॥

कर्तव्यमेव जगतामुपकारकृत्यं
विद्वद्वरैरिति विचारयतोस्य चित्ते ।
याभूत्तया सकलमेव विचारबुध्या
दिङ्मण्डलं समभिवेष्टितमादरेण ॥५२॥

विद्वानों को जगत् का उपकार करना चाहिए ऐसा विचारते हुए जो उनके मन में विचार उठा उसने समस्त संसार को ढक दिया ॥ ५२ ॥

अथ जगदुपकारदत्तचित्तो-
यतिरतिपुण्यवशेन लोकपूर्णाम् ।
बहुमतविततिं निराकरिष्णुः
समचलदात्मबलेन विश्वमध्यम् ॥५३॥

विचार के अनन्तर पुण्यवश से लोकोपकार में दत्त-चित्त हो कर वे ऋषि, लोक में फैली हुई मत-कल्पनाओं को हटाने के लिए, अपने आत्मिक बल से संसार में विचरने लगे ॥ ५३ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
लोकदशासमीक्षणं नाम चतुर्थः सर्गः ।

पञ्चमः सर्गः

ततः समारब्धजयोत्सवं मुदा
दिदृक्षवो विश्वजनाः समन्ततः ।
ऋषिं दयानन्दमुपागमन्नवं-
पतिं धराया इव हर्षनिर्भराः ॥१॥

जिस तरह नवीन राजा के दर्शन करने के लिए प्रजा हर्षित हो कर उसके दर्शनार्थ उसके समीप जाया करती है उसी तरह लोकदशा के अवलोकन करने के पश्चात् दिग्विजय के लिए उठे हुए ऋषि दयानन्द के दर्शन करने की इच्छा से चारों ओर से मनुष्य आने लगे ॥ १ ॥

समस्तदुःखानि जगत्ययञ्जनो-
विनाशयिष्यत्यतिसाहसोदयात् ।
अदः स्वचेतस्यवधार्य मानवै-
स्तदातिमाङ्गल्यमकारि सर्वशः ॥२॥

सब लोग यही सोच कर कि—यही ऋषि जगत् के सारे दुःखों को, अपने असीम साहस से, नष्ट करेगा—उनके प्रस्थान के समय मंगलाचार करने लगे ॥ २ ॥

पपाठ वेदं बहु कोपि मानवः
परोपि पद्यैः प्रशशंस तद्गुणान् ।
ययौ तमुद्दिश्य करे जनेतरः
फलं रसालस्य निधाय सुन्दरम् ॥३॥

कोई वेद का पाठ करने लगा, कोई श्लोक पढ़ कर उनके गुणों का कीर्तन करने लगा और कोई मंगल-कामना से हाथ में आम ले कर सामने आकर खड़ा हो गया ॥ ३ ॥

निवारयिष्यत्ययमेव सज्जन-
स्तमिस्रमस्मासु चिरादुपागतम् ।
मनागिति स्वान्तपथे विचार्य ता-
दिशोपि हर्षादिव निर्मला बभुः ॥४॥

हमारे भीतर भरे हुए अन्धकार को यही ऋषि दूर करेगा ऐसा जान कर समस्त दिशायें भी उस समय आनन्द से निर्मल हो गईं ॥ ४ ॥

समस्तवेदार्थपटीयसी तदा
सरस्वती तं परितोन्ववेष्टयत् ।
प्रमाणदानैकपरायणा कुतो-
भवेन्न माता सुतपक्षपातिनी ॥५॥

जिस समय ऋषि दयानन्द दिग्विजय के लिए निकले उस समय समस्त वेदार्थों के जाननेवाली, प्रमाण देने में चतुर सरस्वती भी उन को सर्वतः देखने लगी। चलते समय पुत्र का मोह और पक्षपात माता को होता ही है ॥ ५ ॥

अथ प्रसादोदितरश्मिमण्डलः
स पद्मिनीनाथ इवातिदुःसहः ।
क्रमेण रत्नाकरमेखलागता-
न्यभिप्रतस्थे नगराणि कानिचित् ॥६॥

ऋषि दयानन्द भी अति दुःसह सूर्य के समान उदय हो कर पृथिवीस्थ मुख्य मुख्य नगरों को चल पड़े ॥ ६ ॥

पूर्वमर्गलपुरे स महात्मा
धर्ममार्गमुपदेष्टुमुवास ।

सार्धमद्वयुगलं वरलोकै-
राावृतो व्रतपरिग्रहरम्यः ॥७॥

वे महात्मा सबसे पहले धर्मोपदेश करने के लिए आगरे पहुँचे। वहाँ यमुना के किनारे भैरव मन्दिर के समीप लाला गल्लामल की वाटिका में ठहरे और कोई ढाई वर्ष वहीं रहे ॥ ७ ॥

तत्रोपदिश्य बहुवैदिकधर्मदीक्षां
कैलासपर्वतइति प्रथितं यतीशम् ।
सम्प्राप्य तत्कृतबहुस्तवहृष्टचेता-
स्तस्थौ कथाः प्रकथयन्कतिचिद्दिनानि ॥८॥

वहाँ पर वैदिकधर्म का उपदेश करते हुए वे कैलास पर्वत नामक संन्यासी से मिले। उन्होंने उनकी बहुत प्रशंसा की। कुछ दिन तक वे वहाँ वेदान्त की कथा कहते रहे ॥ ८ ॥

सन्ध्यानिबोधनपराण्यथ पुस्तकानि
तत्रैव वैदिकविधेरनुगानि तूर्णम् ।
मुद्राप्य लोकहितकामनया नयार्थी
मूल्यं विनैव विततार स योगिराजः ॥९॥

वहीं पर वैदिक विधि के अनुकूल संध्या की पुस्तक बना और रूपलाल के द्वारा छपवा कर वे लोकोपकार के लिए बिनामूल्य ही बाँटने लगे ॥ ९ ॥

ततः परं निःसृतशीतलाकृते
विधाय योगोचितकार्यमद्भुतम् ।
चकार शास्त्रार्थविधिप्रचारणैः
स मूर्तिपूजाकरणस्य खण्डनम् ॥१०॥

तदनन्तर गरमी के कारण निकली हुई फुंसियों को दूर करने के लिए योग [न्यौलीक्रिया] कर, शास्त्रार्थों के द्वारा फिर वे मूर्ति-पूजा का खंडन करने लगे ॥ १० ॥

अस्योपदेशविधिना बहुभिर्मनुष्यै-
राराधनाविधिमपास्य महाशिलानाम् ।
पूज्येषु मातृगुरुतातपदेषु भक्ति-
राविष्कृता न महतां क्व फलन्ति वाचः ॥११॥

आप के उपदेशों से सैकड़ों मनुष्यों ने जड़-पूजा को छोड सच्चे माता, पिता, गुरु आदि का पूजा प्रारंभ कर दी। सच है, महात्माओं के वाक्य सर्वत्र फलते हैं ॥ ११ ॥

विहारालापसंवासजन्यप्रीतिपरैर्जनैः ।
कृताप्याशा निराशाभूत्तन्निरोधे ततःपरम् ॥१२॥

फिर आप के प्रेमी पुरुषों ने आप से वहाँ अधिक रहने की, जो प्रार्थना की वह सब निष्फल हुई ॥ १२ ॥

मार्गणाय सततोथ महात्मा
प्राप्तवान्धवलपत्तनमादौ ।
लश्करं प्रति ततः सह शिष्यै-
राजगाम चपलं निगमानाम् ॥१३॥

फिर आगरे से आप वेदों की तलाश में धौलपुर पधारे। वहाँ से भी अपने शिष्यों के साथ शीघ्र लश्कर चले गये ॥ १३ ॥

राज्ञा पृष्टः पुराणानां माहात्म्यविषये यतिः ।
पुरे तत्र जगादासावुत्तरे दुःखमित्यलम् ॥१४॥

लश्कर में पहुँचने पर जो आप से राजा ने पुराण सुनने का फल पूँछा तो आपने उसका फल केवल अति दुःख ही बतलाया ॥ १४ ॥

वेदमार्गणपरः स यतीश-
स्तत्र किं न धरणीशविरुद्धम् ।
विस्तराद्विविधमार्गगतानां
खण्डनं क्रमश एव चकार ॥१५॥

वेदों की खोज करते हुए वे लश्कर में बहुत पंडितों के बीच में राजा से विरुद्ध होने पर भी वैष्णवादि मतों का खंडन करते रहे ॥ १५ ॥

शास्त्रार्थविज्ञापनतः प्रसिद्धान्
पलायमानानवलोक्य लोकान् ।
जयेतिवाग्भिर्मनुजैः प्रशस्तो-
ययौ करौलीनगरं ततोयम् ॥१६॥

बाबा साहब के बाग़ में उतरे हुए वे (७ मई सन् १८६५ ई० को) शास्त्रार्थ के विज्ञापन से प्रसिद्ध रामाचार्यादि पण्डितों को भागते हुए देख, जय शब्दों के द्वारा प्रशंसा को सुनते सुनते करौली पधारे ॥ १६ ॥

विधाय राज्ञा सह तत्र वार्ता-
मसौ तदीयान्परिभाव्य सूरीन् ।
निनाय कालं कमपिप्रसङ्गा-
द्ययौ ततोरं जयपत्तनं सत् ॥१७॥

करौली में राजा से बात कर उनके पंडितों को तिरस्कृत करके वे कुछ काल वहाँ रहे और फिर वहाँ से जयपुर पधारे ॥ १७ ॥

आरामे वसता सता जयपुरे सिद्धेन सार्कं शुभां
कृत्वा सम्मतिमन्यपण्डितजनैः सत्रा च वादं द्रुतम् ।
नीताः सर्वश एव मौनविषयं सर्वेपि रम्योत्तरै-
र्वक्तव्यं किमतःपरं सहृदयो भूयोप्यमात्यैः समम् ॥१८॥

जयपुर में स्वामीजी रामकुमार के बाग़ में ठहरे । वहाँ वे गोपालानन्द सिद्ध से मिले । उन्होंने श्रवणनाथ आदि पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराया । यहाँ तक कि मन्त्री सहित राजा को भी निरुत्तर कर दिया ॥ १८ ॥

तत्रैव जैनगुरुमेकमुदारलेखै-
र्मूकं विधाय मतवादपरे विचारे ।

नानाविधैरथ विराजमनन्तशिक्षा
रक्षाबलेन विधिवत्प्रचकार विज्ञम् ॥१६॥

वहाँ आपने एक जैन गुरु को अपने उदार लेखों द्वारा निरुत्तर किया और अचरौल के रणजीतसिंह को अपने उपदेशों से ज्ञानी बनाया ॥ १९ ॥

तेनार्थितो निजगृहोपगमाय योगी
न स्वीचकार गमनं भवनेषु तस्य ।
वन्यानि नव्यकमलानि विहाय कुत्र
हंसाः प्रयान्ति नगरीगतनिम्बवृक्षान् ॥२०॥

एक दिन उसने अपने महलों में पधारने के लिए आप से अत्यन्त प्रार्थना की परन्तु आपने जाना स्वीकार न किया, क्योंकि हंस कमलों के पुष्पों को छोड़ कर नगर के नीवों पर कभी नहीं जाते ॥ २० ॥

तस्योपदेशवशतोऽरुचिरन्तराले
मद्याद्बभूव कतिचिद्धनिनां प्रसादात् ।
किं किं न सम्भवति सज्जनसङ्गमेन
पुंसां यदीश्वरकृपावशतः स भूयात् ॥२१॥

आप के उपदेश से जयपुर के कितने ही धनिकों के चित्त में मद्य से घृणा उत्पन्न हो गई । यदि ईश्वर की कृपा से सत्संग मिल जाय तो उस से मनुष्यों को कौन से लाभ नहीं होते ॥ २१ ॥

श्रीमद्भागवतादिखण्डनपरस्तत्रैव चक्रे स्थितिं
पूर्णं मासचतुष्टयं जयपुरे भव्यार्थचिन्तापरः ।
मिथ्यावैष्णवशैवयोरनुगतां लीलां जगद्विस्तृता-
मातेने स यथेच्छखण्डनमतिर्योगी दयावानलम् ॥२२॥

भागवत का खण्डन करते हुए वे जयपुर में पूरे चार मास रहे और जगत् में फैले हुए बनावटी वैष्णव तथा शैव मत की लीलाओं की पोल अच्छे प्रकार खोलते रहे ॥ २२ ॥

एतावतैव समयेन समस्तराज्य-
राजन्यकर्णकुहरेषु गता तदीया ।
नामाक्षरालिरतनोदतिदीप्यमाना
सर्वं विहाय निजकृत्यमहो दिदृक्षाम् ॥२३॥

जब स्वामीजी की गुणावली उस राज्य के समस्त क्षत्रियों के कानों तक पहुँची तब वे अपने सब कामों को छोड़ कर उनके दर्शनों की इच्छा करने लगे ॥ २३ ॥

अभ्यागमन्बहव एव तदीक्षणाय
मूर्धाभिषिक्ततनयाः सनया विनीताः ।
यैरन्तरात्मनि तदीयमतप्रणाली-
माराध्य शिष्यपदवी सफलीकताभूत् ॥२४॥

आप के देखने के लिए बहुत से नीतिज्ञ विनीत क्षत्रियकुमार आपके पास आये जिन्होंने आप के उपदेशों को ग्रहण कर शिष्यता प्राप्त की ॥२४॥

अनन्तरं ततो धीमानयं कृष्णगढ़ाभिधम् ।
नगरं प्राप वेगेन यत्र नीता दिनद्वयी ॥२५॥

जयपुर से फिर आप कृष्णगढ़ को पधारे । वहाँ पर आपने दो दिन निवास किया ॥ २५ ॥

प्रापास्मादपि तद्दिव्यमजतुन्दपुरं महत् ।
यत्र नीतं दिनस्यैकमारामे वसता सता ॥२६॥

तीसरे दिन अजमेर पहुँच कर उन्होंने दौलत बाग़ में एक दिन निवास किया ॥ २६ ॥

पुष्करं नाम संवासं ययावस्माद्यतीश्वरः ।
भवत्यनन्ता जनता यत्र तीर्थधियाधियाम् ॥२७॥

अजमेर से आप पुष्कर गये जहाँ भोले भाले हिन्दू तीर्थ-बुद्धि करके इकट्ठे होते हैं और एक बड़ा मेला लग जाता है ॥ २७ ॥

तत्र तेन बहुमानवमध्ये
ब्रह्ममन्दिरगतेन समन्तात् ।
मूर्तिपूजननिराकरणेच्छा
सर्वथैव सफला व्यतनिष्ट ॥२८॥

वहाँ आपने ब्रह्मा के मन्दिर में उतर कर इस प्रकार मूर्ति-पूजा का खण्डन किया जिससे सब लोगों की श्रद्धा मूर्ति-पूजा से हट गई ॥ २८ ॥

अभ्यागमद्द्विजजनत्रिशती बलेन
शास्त्रार्थविज्ञपनपत्रमवेक्ष्य तस्य ।
वीरं मृगेन्द्रमिव बालशशालिरेनं
शेके न वीक्षितुमपि क्षणमप्यतोगात् ॥२९॥

वहाँ पर आपके दिये हुए शास्त्रार्थ के विज्ञापन को देख कर तीन सौ पण्डित आये, परन्तु वे आपको देख भी न सके, तुरंत लैाट गये। सिंह के सामने कहीं गीदड़ ठहर सकते हैं ? ॥ २९ ॥

पूर्वं दीक्षितकौमुदीविरचना तेनाहता खण्डने
पश्चाद्भागवतादिपद्यरचना दुर्गादिपद्यस्तुतिः ।
मिथ्यातीर्थपरम्परापरिणतिः प्रेतक्रिया चापरा
सर्वापीह यथायथं प्रतिदिनं व्यामर्दिताभूत्कृतिः ॥३०॥

वहाँ पर पहले आपने दीक्षितकृत कैामुदी का खण्डन किया फिर भागवतादि पुराण एवं दुर्गादि कल्पित स्तोत्रों का खण्डन कर के तीर्थ और मृतक-श्राद्ध का भी अच्छी तरह खण्डन किया ॥ ३० ॥

व्यङ्कटेन पुनरत्र विचारं
कुर्वता मतमतान्तरकोटौ ।
व्यक्तमेव विहिता निजपक्षे
तत्परे च विजयाजयकीर्तिः ॥३१॥

फिर व्यंकट शास्त्री के साथ मतमतान्तर विषय में शास्त्रार्थ कर आपने शीघ्रही अपने पक्ष का जय तथा दूसरे पक्ष का पराजय दिखा दिया ॥ ३१ ॥

तदुपदेशबलेन जनैर्गले
परिधृतास्तुलसीनवमालिकाः ।
त्वरितमेव जले विनिपातिताः
क्व महतां न फलन्ति शिवा गिरः ॥३२॥

आपके उपदेश के प्रभाव से हज़ारों मनुष्यों ने कंठ में पहनी हुई कंठियाँ तोड़ कर जल में फेंकदीं; क्योंकि महात्माओं के शुभ वचन कहाँ पर सफल नहीं होते ? ॥ ३२ ॥

ब्रह्ममन्दिरगतं द्विजमेकं
चर्मभाण्डबहुवादनकृत्यात् ।
ईश्वरोपकरणे विनियोज्य
स्वागतानि स चकार बुधानाम् ॥३३॥

वहाँ पर ब्रह्म-मन्दिर के एक पुजारी को ढोल के बजाने से हटा कर, ईश्वर की सच्ची भक्ति में लगाकर, आप पण्डितों के स्वागत में दत्त-चित्त रहे ॥ ३३ ॥

रामानुजादिमार्गाणां खण्डनार्थमुपस्थिते ।
महामतौ दयानन्दे नागमत्कोपि पण्डितः ॥३४॥

जब आप वहाँ रामानुजादि मतों के खण्डन के लिए उपस्थित हुए तब आपके सामने कोई पण्डित न आया ॥ ३४ ॥

द्राविड़ं यतिमप्येकं धावन्तमुपवीक्ष्य सः ।
भयतो मतवादस्य जयमत्र समालभत् ॥३५॥

मतवाद के भय से भागते हुए एक द्रविड़ संन्यासी को देख कर आप अत्यन्त जय को प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

अनुदात्तेत्वलक्षणस्य तङोऽनित्यत्वान्न दोषः । अनुक्तमप्यूहतीतिवत्, इति तत्त्वबोधिनी । भ्वादौ वाह्यप्रयत्न इति धातोर्व्याख्यायाम् ।

इतो यद्यपि तस्येच्छा मरुदेशोपवीक्षणे ।
बभूव परमेकस्य प्रार्थनात्तत्पुरं ययौ ॥३६॥

यद्यपि आपकी इच्छा यहाँ से मारवाड़ जाने की थी तथापि जोधपुर के एक क्षत्रिय की प्रार्थना से आप वहीं को पधारे ॥ ३६ ॥

इतः स गत्वा पुनरुक्तपत्तनं
नवीनविज्ञापनदानतो द्रुतम् ।
नवीननानामतवादविप्लवे
निरुत्तरानेव चकार कोविदान् ॥३७॥

वहाँ से (३० मई सन् १८६६ ई० को) फिर अजमेर पधार कर आपने नवान विज्ञापन द्वारा मतमतान्तरों के विषय में समस्त पण्डितों को परास्त किया ॥ ३७ ॥

विधाय सत्यस्य बलेन सत्वरं
पुनः स तत्रैव विवादविस्तरे ।
गतोत्तरानीशमतावलम्बिनो-
मिमेल सत्रा नवराजशासकैः ॥३८॥

फिर अपने बल से (राबिन्सन आदि) ईसाइयों को शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर आप (डेविन्सन साहब ए० जी०) कमिश्नर से, मिलने को गये ॥ ३८ ॥

गवादिरक्षाविषये यथोचितां
विधाय वार्तां सह तेन स स्वयम् ।
तदुत्तरेणापि तथाविधेन ता-
मगादरं कृष्णगढ़ाभिधं पुरम् ॥३९॥

उनसे गोरक्षा के विषय में स्वयं यथोचित बात कर और दूसरे रेपटन साहब से भी मिलते हुए आप दुबारा कृष्णगढ़ पधारे ॥ ३९ ॥

मार्गे तपस्वियुगलेन समं विधाय
वार्तामहङ्कृतिजयाजयपक्षवादे ।
सद्वर्णिभिः समभिपूजित एष चक्रे
श्रीवल्लभस्य मतखण्डनमत्र धीरः ॥४०॥

मार्ग में दो तपस्वियों से अहंकार के जय-पराजय में कुछ बात कर, ब्रह्मचारियों के द्वारा पूजित होकर वे बल्लभ मत का खण्डन करने लगे ॥ ४० ॥

ततः पुनर्जयपुरमाययौ मुनि-
र्जनैः स्तुतो दृढ़तरशासनक्रमः ।
शुभां मतिं बहुविधिभिः प्रवर्तयं-
स्ततो ययौ विधिवशतोर्गलं पुरम् ॥४१॥

कृष्णगढ़ से फिर आप जयपुर आये और वहाँ अपने सदुपदेशों से मनुष्यों को कृतार्थ करके आप फिर आगरे चले आये ॥ ४१ ॥

तत्र भागवतखण्डनं बला-
द्राजयूथविषये विधाय सः ।
दर्शनार्थमभयो ययौ पुन-
र्माथुरीं भुवमितोपि दण्डिनाम् ॥४२॥

आगरे में (१ नवंबर सन् १९६६ ई०) के दरबार में बहुत से राजाओं के बीच में भागवतादि ग्रन्थों का खण्डन करके आप दण्डीजी के दर्शनार्थ मथुरा पधारे ॥ ४२ ॥

विधाय तत्रान्तिमदर्शनं यति-
र्महागुरोराप्य तथाशिषं शिवाम् ।
जगाम नानानगरेषु संवसन्
पुनः स कुम्भोपरि पत्तनं हरेः ॥४३॥

मथुरा में विरजानन्दजी का अन्तिम दर्शन तथा आशीर्वाद ग्रहण कर बीच में आये हुए मेरठ आदि नगरों में विश्राम लेते हुए आप दुबारा कुम्भ के मेले पर हरिद्वार पधारे ॥ ४३ ॥

[षड्भिः कुलकम्]

यत्र पर्वतविदारणापटुः
शिल्पशास्त्रपरिशीलनश्रमी ।
उन्नतादगवरात्समानय-
ज्जाह्नवीमतिजलां भगीरथः ॥४४॥

जहाँ पर पर्वतों के भेदन में निपुण भगीरथ नामक शिल्प वेद का विद्वान् उन्नत पर्वत से बहुजल-पूर्ण गङ्गा को नीचे उतार लाया ॥ ४४ ॥

एकतः किल विभाति यत्न सा
पर्वतद्वयविचित्रकल्पना ।
रम्यभूमिरचनान्यतः परा
दृश्यते सहृदयैः कवीश्वरैः ॥४५॥

और, जहाँ पर दो पर्वतों का मेल, एक ओर अद्वितीय दृश्य को दिखा रहा है और दूसरी ओर जहाँ बड़ा भारी मैदान दीख रहा है ॥ ४५ ॥

रामणीयकविलोकनोत्सुकै-
र्यत्न योगिभिरपि प्रकल्पिता ।
मुक्तिभूरियमिति प्रकल्पना
सर्वसौख्यसमुदायदर्शनात् ॥४६॥

जिसकी उत्तम सुन्दरता को देख ऋषियों ने भी सुखाधिक्य से मुक्ति-स्थल माना है ॥ ४६ ॥

गाङ्गमम्बु बहु यत्न निर्मलं
तोयमध्यगतमिष्टकल्पनाम् ।

सत्यमेव सफलत्वमानयत्

किन्न भाति बहुविश्वमण्डले ॥४७॥

गङ्गाजी का निर्मल मधुर जल जहाँ पर जल के स्वाभाविक मधुर गुण को बता रहा है ॥ ४७ ॥

द्वादशे भवति यत्न हायने

कुम्भ इत्यतिजनैः प्रशंसिता ।

सर्वदेशमनुजानुवर्तिनी

रम्यकूलवसना जनस्थितिः ॥४८॥

जहाँ बारहवें वर्ष बड़ा भारी कुम्भ का मेला हुआ करता है ॥ ४८ ॥

यत्समीपविषयेधुना धृतं

सज्जनैर्गुरुकुलं विराजते ।

प्राक्तनार्षपदवीमुपागतं

वास्तवेपि जगदेकमण्डनम् ॥४९॥

जिसके पास आज कल प्राचीन ऋषि-प्रणाली के अनुसार विश्व-भूषण गुरुकुल विराजमान हो रहा है ॥ ४९ ॥

स तत्र गत्वा रचयत्समन्ततो-

महान्तमेकं तृणकल्पितं कुटम् ।

यदन्तरे तत्समभावभाविनो-

यतीश्वराश्चक्रुरनन्तकल्पनाः ॥५०॥

उस हरिद्वार में पहुँच कर सप्तस्रोत के ऊपर आपने एक बहुत बड़ा लकड़ी का बाड़ा बनवाया जिसमें बहुत से संन्यासी आ आकर वैदिक-धर्म के उन्नति-मार्ग का विचार करते रहते थे ॥ ५० ॥

सप्तस्त्रोतोभिधा यत्न निर्मिता परमात्मना ।

वनस्थली ऋषिव्रातानाक्रष्टुमिव सुन्दरी ॥५१॥

जहाँ पर सप्तस्रोत नामक स्थान ईश्वर ने मुनियों के मनों को मोहित करने के लिए बनाया था ॥ ५१ ॥

पाखण्डखण्डिनीं तत्र पताकां विजयोद्यताम् ।
बहुभिः सज्जनैः सार्धं योजयामास योगिराट् ॥५२॥

और उसके सामने ही आपने विजय-सूचक पाखण्ड-खण्डिनी नाम की पताका गड़वा दी ॥ ५२ ॥

अत्रान्तरे महाँस्तत्र समुदायोऽभवत्परः ।
नानामतपरा यत्र नानालोकाः समाययुः ॥५३॥

इसी बीच में वहाँ पर एक बड़ा भारी मेला लगा जिसमें अनेक मत-वादी अनेक जन आये ॥ ५३ ॥

वाराणसीनिवास्येको विशुद्धानन्दनामभाक् ।
समं राजजनैस्तत्र विवादार्थमुपागमत् ॥५४॥

काशी-निवासी स्वामी विशुद्धानन्दजी भी कुछ राजाओं के साथ आप से शास्त्रार्थ करने आये ॥ ५४ ॥

मन्त्रं जातिपरं कञ्चित्प्रस्तूय कृतवाग्श्रमः ।
तथा पराभवं प्राप यथानाप परः पुमान् ॥५५॥

वे जातिपरक (ब्राह्मणोऽस्य०) मन्त्र के छेड़ने पर ऐसे परास्त हुए कि जैसा आजतक कोई नहीं हुआ ॥ ५५ ॥

कैलासपर्वतस्तत्र दृष्ट्वा दुर्धर्षकल्पनाम् ।
दयानन्दस्य मध्यस्थो जयमस्यान्वमोदत ॥५६॥

उस शास्त्रार्थ में श्रीमान् कैलास पर्वतजी मध्यस्थ थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द का पक्ष प्रबल देख कर उन्हीं को विजयी प्रसिद्ध किया ॥ ५६ ॥

पौराणिका जनास्तत्र श्रुत्वा तद्गर्जनध्वनिम् ।
सिंहान्मृगा इव दिशो ययुरुद्दिश्य कातराः ॥५७॥

बहुत से पौराणिक पण्डित आपकी गर्जना को सुन कर इस प्रकार भागने लगे कि जैसे सिंह की गर्जना को सुन कर मृग भाग जाते हैं ॥ ५७॥

बहवः सज्जनास्तत्र दर्शनार्थमुपागताः ।
यतीशं तुष्टुवुर्भक्त्या परेशमिव योगिनः ॥५८॥

बहुत से सज्जन आपके दर्शन के लिए आकर आपको देख कर अति प्रशंसा करने लगे ॥ ५८ ॥

बहून्विपक्षिणोलोकाञ्छुतभाषणविस्तरान् ।
वैदिके पथि संयोज्य जयभागभवन्मुनिः ॥५९॥

ऋषि भी बहुत से विपक्षियों को आर्य्य-मार्ग में लाकर विजय को प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥

ज्ञातवान्क इदं वृत्तं दयानन्दो भविष्यति ।
लोकोपकारकरणे सन्नद्धः सर्वशास्त्रवित् ॥६०॥

इस बात को कौन जानता था कि समस्त शास्त्रों का जाननेवाला ऋषि दयानन्द लोकोपकार में तत्पर होगा ॥ ६० ॥

विहायेमं दयानन्दं कस्य शक्तिरभूत्परा ।
य एवंविधसङ्घेपि मतवादान्निवारयेत् ॥६१॥

आपके सिवा किसकी शक्ति थी जो कि इतने जन-समुदाय में समस्त मतों का मुक़ाबिला करता हुआ वैदिक धर्म का प्रचार कर सके ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा यतिवराँस्तत्र स्वार्थसाधनतत्परान् ।
हृदये समभूदस्य विचारैकपरा मतिः ॥६२॥

उस मेले में संन्यासियों को भी स्वार्थ-साधन में तत्पर देख कर आपके मन में बड़ा दुःख हुआ ॥ ६२ ॥

य एव लोकरक्षायै विधिना विनियोजिताः ।
त एव लोकनाशाय विचेष्टन्ते किमद्भुतम् ॥६३॥

जिनको ईश्वर ने जगत् का रक्षक बनाया था वे ही आज उसके भक्षक बन गये ! ॥ ६३ ॥

केचित्पञ्चशिखाः केचिन्मुण्डिनः केपि केशिनः ।
काषायवस्त्रवन्तोपि मतमित्थं वितन्वते ॥६४॥

कोई पञ्चशिख, कोई मुण्डी, कोई शिखी, काषाय वस्त्र धारण करके भी नाना मतों का प्रचार करते हैं ॥ ६४ ॥

देशस्याधोगतिं वीक्ष्य पश्चात्तापपरो मुनिः ।
नितरामुन्नतौ तस्य मनः स्वीयं न्यवेशयत् ॥६५॥

इस दुर्दशा को देख कर पश्चात्ताप करते हुए आप उसकी उन्नति में अपना मन लगाने लगे ॥ ६५ ॥

विरागिणामपि दशां बहुरागपरायणाम् ।
उदासीनवदासीनो विलोक्य शुचमागमत् ॥६६॥

विरागियों को भी बहुरागी देख कर वहाँ पर आप और भी चिन्ता में ग्रस्त हुए ॥ ६६ ॥

दुर्दशा दुर्दशां यातु सुदशा यातु भारतम् ।
इति प्रार्थितवानीशमात्मोत्तेजनया यतिः ॥६७॥

और आप भारत की दुर्दशा के दूर होने और सुदशा की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने लगे ॥ ६७ ॥

सतां परोपकाराय सम्भवन्ति विभूतयः ।
इति मत्वा निजं सर्वं ददौ सर्वेभ्य आदरात् ॥६८॥

यह सोच कर उन्होंने निश्चय किया कि सज्जनों की विभूति परोपकार के लिए ही होती है। इसलिए उन्होंने भी अपना सर्वस्व दूसरों को दे डाला ॥ ६८ ॥

महाभाष्यं गुरोरर्थे मथुरामयमात्मवित् ।
सवस्त्रं सधनं साधुः प्रापयामास तत्क्षणम् ॥६९॥

सबसे पहले अपने गुरु के लिए एक महाभाष्य का पुस्तक, दो सुवर्ण-मुद्रा और एक दुशाला मथुरा को भेजा ॥ ६९ ॥

कौपीनवान्दिग्वसनो भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
भूत्वा परोपदेशाय मतिमादादनुत्तमाम् ॥७०॥

इस प्रकार अपनी सब वस्तुओं को परोपकार्थ दान कर आप कौपीन-धारी हो गये और भस्म को धारण करके आप परोपकार में ही निरन्तर मन लगाने लगे ॥ ७० ॥

देशस्यातिपवित्रत्वान्निजवेशोचितं शुभम् ।
गङ्गातटमुपक्रम्य प्रारेभे भ्रमणक्रियाम् ॥७१॥

देश के अति पवित्र होने से आप गङ्गा-तट पर भ्रमण करने के लिए उद्यत हुए ॥ ७१ ॥

पूर्वं यथावृषिक्षेत्रं परावृत्य ततस्त्वरम् ।
हरिद्वारादिवासेषु क्रमशो गमनं व्यधात्[1] ॥७२॥

पहले वे हृषीकेश जाकर वहाँ से लौट, कानपुर तक गङ्गा के किनारे किनारे क्रमशः रहने लगे ॥ ७२ ॥

सार्द्धमब्दयुगं कूले जाह्नव्याः स परिभ्रमन् ।
स्वकीये बलविक्षेपि तपोयुक्तेकरोन्मुनिः ॥७३॥

इस प्रकार ढाई वर्ष भ्रमण करते हुए वे आत्मिक बल बढ़ाते रहे ॥७३॥

देववाणीव्रतो नित्यमेकाहारपरः शुचिः ।
आकर्णपुरमागच्छन्प्रत्यावृत्तिमुपागमत् ॥७४॥

एक समय भोजन और संस्कृत में भाषण करते हुए कानपुर से फिर लौटने लगे ॥ ७४ ॥

येषु येषु निवासेषु पूर्वं वासमकल्पयत् ।
तेष्वेव स पुनर्गच्छन्नाप योगित्वमद्भुतम् ॥७५॥

जिन स्थानों में वे जाते समय ठहरे थे उन्हीं में आते समय भी रहे ॥७५॥

---

१ विपूर्वकस्य धाञः करणार्थकत्वं विधत्तां निःशंकमित्यादौ दृश्यते ।

सर्वेष्वपि निवासेषु सन्ध्यादिशुभकर्मणाम् ।
विधानमुपदिश्यासौ कर्णवासमवाप्तवान् ॥७६॥

जहाँ जहाँ पर वे रहे वहाँ वहाँ पर सन्ध्यादि कर्मों का उपदेश देते हुए कर्णवास पधारे ॥ ७६ ॥

यत्र मत्पितृचरणैरेभ्य एव यथाविधि ।
समग्राहि शिवादीक्षा शिक्षापि निगमोचिता ॥७७॥

वहाँ पर मेरे पिता पण्डित टीकारामजी ने आप ही से वैदिक दीक्षा एवं शिक्षा भी ग्रहण कर शिष्यता प्राप्त की ॥ ७७ ॥

वनभूमिरसम्बाधा यत्र विश्राम्यतां नृणाम् ।
समाकर्षति चेतांसि चिरविश्रामहेतवे ॥७८॥

वहाँ की निरुपद्रव वनभूमि रहनेवाले पुरुषों का मन अधिक रहने के लिए आकर्षित करती है ॥ ७८ ॥

भृगुर्यत्र तपस्तेपे महर्षिः कतिचित्समाः ।
पश्चात्समाधावातस्थौ परमात्मपरायणः ॥७९॥

वहाँ पर महर्षि भृगु ने कुछ वर्ष तप कर फिर समाधि द्वारा परमेश्वर को जाना था ॥ ७९ ॥

कर्णराज्ञो निवसनाद्यत्र नूनमहर्दिनम् ।
अन्वर्थतामुपगता कर्णवासेति कल्पना ॥८०॥

वहाँ पर राजा कर्ण के सर्वदा रहने से कर्णवास नाम सार्थक बन गया ॥ ८० ॥

स तत्र नानाविधपण्डितैः समं
विधाय शास्त्रार्थमयत्नसिद्धिदम् ।
चकार गप्पाष्टकखण्डनं तथा
यथा पतन्मन्दिरमूर्तयो जले ॥८१॥

उस कर्णवास में अम्बादत्तादि बहुत पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ कर आपने आठ गप्पों का ऐसा खण्डन किया कि जिसके प्रताप से मन्दिरों की मूर्तियाँ गङ्गा में गिरने लगीं ॥ ८१ ॥

तत्रैव दुष्टजनभीतिमसौ विमुच्य
शस्त्राभिघातमपि तादृशवैरिजातम् ।
सत्योपदेशमकरोन्मनुजेषु नूनं
हुंकारदूरकृतशत्रुजनौघदर्पः ॥८२॥

वहीं पर हुंकार मात्र से शत्रुओं को डरा, निर्भय होकर, ठाकुर कर्णसिंह की तलवार का भी भय न करते हुए ऋषि धर्म का उपदेश करते रहे ॥८२॥

अत्रान्तरे जह्नुसुतातटस्थं
स रामघट्टं गतवान्महात्मा ।
महोपदेशाय भवन्ति यत्र
विपश्चितस्तीर्थधिया समेताः ॥८३॥

इसी बीच में कार्तिकी के मेले पर बहुत से मनुष्यों को उपदेश देने के लिए वे गङ्गातटस्थ रामघाट को पधारे ॥ ८३ ॥

निवार्य नानामतगान्मनुष्या-
नयं महात्मा नरकस्य मार्गात् ।
बलेन तत्राथ निवेश्य धर्मे
पुनर्भृगोराप तपःस्थलं तत् ॥८४॥

उस रामघाट में अनेक मतवाले पुरुषों को दुःख-मार्ग से हटा और सच्चे वैदिक धर्म में लगाकर आप फिर (भृगुक्षेत्र) कर्णवास पधारे ॥ ८४ ॥

धैर्येण तत्र निवसन्स जितात्मभावः
पाश्चात्यदेशजमनुष्यगणेन सार्द्धम् ।
वार्ताश्चकार परमेश्वरदत्तचेता
नाशं यथा किल ययुर्निजवैरियूथाः ॥८५॥

उस कर्णवास में धैर्य से रहकर पञ्जाब के कुछ पुरुषों के साथ वे इस प्रकार की बात करने लगे कि जिससे वहाँ के सब शत्रु नष्ट हो गये ॥ ८५ ॥

सर्वेपि तद्रिपुगणाः क्रमशो महान्तं
क्लेशं समापुरिति वीक्ष्य समेति चित्ते ।
सत्यं वदन्ति ऋषयः परमार्थविज्ञाः
पापस्य यत्फलमहो भवतीह कष्टम् ॥८६॥

ऋषियों का यह कथन सत्य है, कि पाप का फल दुःख ही होता है। जिन जिन दुष्टों ने ऋषि को कष्ट दिया उन उन का अन्त में बुरा ही हुआ ॥ ८६ ॥

सूर्यग्रहागतमनुष्यगणे स तत्र
वेगेन खण्डनमकल्पयदप्रमेयम् ।
मिथ्याविनिर्मितनिजार्थपरायणानां
तीर्थप्रशास्तिवचनस्य किमन्यदस्मात् ॥८७॥

उसी कर्णवास में सूर्य्य-ग्रहण में आये हुए मनुष्य-समुदाय में कर्णवास-माहात्म्य का आपने खूब खण्डन किया। यह माहात्म्य वहीं के लोगों ने बना रक्खा था ॥ ८७ ॥

तस्मादनन्तरमितो विजयाय योगी
नानापुरेषु पुनराप जवादनूपम् ।
गङ्गातटस्थितमितोपि ययौ स पश्चात्
तस्मात्परं करुणयाघहरं निवासम् ॥८८॥

वहाँ से समीप ही नगरों में भ्रमण करते करते आप अनूपशहर में लाला बाबू की कोठी पर कुछ दिन रह कर वहाँ से भी आहार पधारे ॥८८॥

रामादिभूपतिचरित्रभृतो मनुष्यान्
मिथ्याविनोदनपथाच्छुभकर्ममार्गे ।
नानोपदेशविधिना विनियोज्य तत्र
योगासनस्थितिमकल्पयदप्रमेयाम् ॥८९॥

आहार में बहुत से लोग रामलीला आदि में लगे रहते थे। स्वामीजी ने अपने उपदेश से उनको उस खेल से हटा कर वास्तविक धर्म-मार्ग में लगाया और आप कुछ दिन तक वहीं योगाभ्यास करते रहे ॥ ८९ ॥

अत्रान्तरे दलमिषेण जनेन दत्तं
मत्वा महद्गरलमाशु जलान्तरस्थः ।
योगक्रियाविधिवशादयमेकदेशा-
दुज्झाञ्चकार सहसैव महर्षिवर्यः ॥९०॥

उन्हीं दिनों किसी दुष्ट ने उनको पान में विष दे दिया। खाने पर स्वामीजी को मालूम हो गया। वे तुरन्त गङ्गा में गये और वहाँ जाकर योग-मार्ग से उस विष को शरीर से बाहर निकाल दिया ॥ ९० ॥

निःसार्य तद्गरलमीक्ष्य विषप्रदं तं
बन्धे महीपरचिते निरमोचयत्सः ।
संसारबन्धनविमोचनदत्तचित्ताः
नो बन्धनेषु मनुजान्गमयन्ति सत्यम् ॥९१॥

विष निकल जाने पर उन्होंने देखा कि विष देनेवाला हवालात में सड़ रहा है। उसका दुःख उनसे न देखा गया। उन्होंने अपनी कृपा से उसको छुड़वा दिया। भला बन्धनों को काटनेवाले पुरुष किसी को बन्धन में थोड़े ही डालते हैं ॥ ९१ ॥

निवार्य तं बन्धनतः स योगी
ययावितो बिल्ववनं प्रशस्तम् ।
महर्षयो यत्र फलाशनेन
योगानलभ्यानलभन्सुखेन ॥९२॥

बन्धन से उस पुरुष को छुड़ा कर आप यहाँ से बेलौन पधारे। वह ऐसा स्थान था कि जहाँ पर ऋषियों ने केवल फल खाकर योग-सिद्धि को प्राप्त किया था ॥ ९२ ॥

गत्वा तत्र विधाय खण्डनमलं श्राद्धस्य तस्मात्परं
रामादीनवतारभावरहितान्संबोध्य चायं मुनिः ।
व्याख्यानैरपि वेदमन्त्रमहितैर्विश्वास्य विद्वज्जना-
नन्ते मङ्गलमन्त्रपाठमकरोद्भद्राय विश्वात्मनाम् ॥९३॥

फिर स्वामी दयानन्द सरस्वती बेलौन जाकर मृतक के श्राद्ध तथा अवतारवाद का युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा अच्छे प्रकार खण्डन कर और व्याख्यानों द्वारा विद्वानों को भी आनन्दित करते हुए अन्त में जगत् के कल्याण के लिए शान्ति-पाठ करने लगे ॥ ९३ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
सदुपदेशारम्भवर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ।

षष्ठः सर्गः

श्रीयुतः स पुनरप्युपदेष्टुं
व्यातनोज्जनहितानि हि तानि ।
कुत्र यान्ति विरतिं निजकृत्या-
दादृताः परशिवेषु महेच्छाः ॥१॥

परोपकार में दत्त-चित्त पुरुष कदापि निज कार्य से नहीं हटा करते, ऐसा जान कर श्रीमान् फिर भी हितोपदेश देने के लिए उद्यत हुए ॥ १ ॥

यत्र यत्र स जगाम महात्मा
तत्र तत्र सुमहार्य्यसमाजः ।
सङ्गतोभवदचिन्त्यगुणाना-
मादरे भवति को न हितैषी ॥२॥

जहाँ जहाँ पर वे ऋषि जाते थे वहाँ वहाँ पर सज्जन-समाज हुआ करता था, क्योंकि अद्भुत गुणों के ग्रहण में कौनसा जन आदर नहीं करता ? ॥२॥

योभिवाञ्छति जनेषु नितान्तं
स्वागतं स तनुते सहसैव ।
निष्प्रयोजनतया सुगुणानां
पूर्णवृष्टिमिव नूतनमेघः ॥३॥

जो पुरुष मनुष्यों में अपनी प्रतिष्ठा चाहता है वह पहले उन से कुछ प्रयोजन न रख कर उनके लिए नवीन मेघ के समान गुणों की वृष्टि किया करता है ॥ ३ ॥

स्वार्थसाधनपरे मनुजे के
विश्वसन्ति मनुजा इह लोके ।
दृश्यते जगति नैव समुद्रं
यान्ति मूढ़मतयोपि जलाय ॥४॥

जो पुरुष स्वार्थ-साधन में तत्पर रहते हैं लोग उनका विश्वास नहीं करते । यह बात है भी ठीक । यह बात प्रत्यक्ष है कि मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी जल के लिए समुद्र के पास दौड़ा नहीं जाता ॥ ४ ॥

इत्यवेक्ष्य मुनिरार्यनिवासं
कर्तुमेतदखिलं किल विश्वम् ।
मानसे मनुनिबोधितकृत्यां
व्याततान निगमानुगतां ताम् ॥५॥

यही मन में सोच कर वे जगत् को आर्यनिवास बनाने के लिए मनुप्रोक्त वेदानुकूल कार्यों का विचार करने लगे ॥ ५ ॥

मन्दिरेथ लघुभैरवमूर्ते-
र्मानुषं वपुरुपेत्य किमत्र ।
कर्म कर्तुमुचितं जनिमासै-
रित्युदारमतिरेष जगाद ॥६॥

यही विचार कर वे वहाँ से अतरौली पहुँचे । वहाँ भैरव के मन्दिर में उन्होंने मनुष्यों के कर्तव्य पर व्याख्यान दिया ॥ ६ ॥

विश्वविश्रुतमनोहरकीर्तिः
सोत्र सज्जनजनानुपदिश्य ।
वन्दितो बहुजनैरुपपेदे
पत्तनं लघु छलेश्वरसञ्ज्ञम् ॥७॥

वे विख्यात-कीर्ति ऋषि अतरौली में सज्जनों को उपदेश देकर वहाँ से शीघ्र ही छलेसर चले गये ॥ ७ ॥

मन्दिराणि गमनोत्तरमेव
प्रस्तरैरुपचितानि स योगी ।
विंशतिर्निजकृतैरुपदेशै-
स्तत्र यज्ञसदनानि चकार ॥८॥

छलेसर में पहुँच कर उन्होंने ऐसा उपदेश दिया और उसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहाँ के बीसियों मन्दिरों से मूर्तियाँ हटा दी गईं और उनमें यज्ञशालायें बनने लगीं ॥ ८ ॥

विधाय तस्मिन्नगरे महात्मा
स पाठशालाः कतिचित्सुखेन ।
जगाम वेगादपरं निवासं
विलोक्य नम्रं जयकृष्णदासम् ॥९॥

उसी शहर में वे महात्मा राजा जयकृष्णदास से मिले और उन्होंने कई पाठशालायें खुलवाईं । फिर वे वहाँ से बगड़िया में पहुँच गये ॥ ९ ॥

समेत्य चक्राङ्कितपण्डितानां
स तत्र लीलां बहुशोवलोक्य ।
विजित्य सर्वानथवादमध्ये
जयं प्रपेदे जगति प्रसिद्धम् ॥१०॥

वहाँ पहुँच कर उन्होंने चक्राङ्कितों की लीलायें देखीं । वहाँ शास्त्रार्थ में सबको जीत कर प्रसिद्ध जयलाभ किया ॥ १० ॥

इतः परां कोलपुरीमयं यति-
र्जगाम तत्रापि बहून्महोदयान् ।

श्रुतेर्मते सम्मिलितानकल्पय-
ज्जनौघमध्ये बलवद्वचोबलः ॥११॥

यहाँ से आप सूकरक्षेत्र में पहुँचे । वहाँ व्याख्यान द्वारा बहुत से सज्जनों को वैदिक-मार्ग में लगाकर आप कुछ दिन वहीं निवास करने लगे ॥ ११ ॥

अथाङ्गदं पण्डितमेकमादरा-
द्विजित्य नानाविषयेषु सत्वरम् ।
तथा वशीभूतमकल्पयद्यथा
सहस्रशस्तद्वशमापुरस्मयाः ॥१२॥

कुछ दिनों के बाद वहीं पर एक अंगद नामक पंडित को समस्त विषयों में ऐसा परास्त किया कि जिससे बहुत जन आर्य होगये ॥ १२ ॥

यथोत्तरं सर्वपुराणकल्पनां
नवीनरूपामनुवाद्य सर्वशः ।
स पर्वतं प्रत्यवदन्मतत्रयी-
विभञ्जनार्थे निगमानुशासनः ॥१३॥

वहीं पर सबके समक्ष पुराणों की रचना नवीन एवं मिथ्या बता कर आप कैलास पर्वत से रामानुज, वल्लभ और माध्व मतों के खण्डन के लिए कुछ कहने लगे ॥ १३ ॥

क्रमेण तत्रागतमङ्गदान्तरं
स पूर्वशिष्यो द्रुतमङ्गदाभिधः ।
तथा विवादेनयदेकमूकतां
यथा स गेहं प्रजगाम लज्जितः ॥१४॥

इसी अवसर में पीलीभीत का रहनेवाला एक दूसरा अंगद आपसे विवाद करने आया जिसको पहले अंगद ने ही परास्त करके भगा दिया॥१४॥

बलदेवगिरिर्विलोक्य बुद्धिं
महतीमस्य जयोद्यमप्रविष्टाम् ।
शरणं गतवानिमं यतीशं
त्रिभिरप्यात्ममनोधनैः समेतः ॥१५॥

वहीं पर बलदेवगिरि गुसाईं ने आपकी शास्त्रार्थ में जीत देखकर अपना तन मन धन सबही आपके अर्पण कर दिया ॥ १५ ॥

अतः परं कोपि यतिर्दिगम्बरः
कृते विवादस्य समाययौ रसात् ।
परं बलं वीक्ष्य निजं ततोवरं
जगाम देशाटनतत्परो द्रुतम् ॥१६॥

कुछ समय के बाद वहीं पर एक नग्न संन्यासी आपसे विचार करने आया, परन्तु अपना बल अल्प देख कर शीघ्र ही चला गया ॥ १६ ॥

यतीश्वरोपीश्वरदत्तमानसः
पुरान्तरं प्राप्य गुरोर्दिवङ्गमम् ।
निपीय दुःखीसमभूदितो महान्
गुरोर्वियोगे वत को न दूयते ॥१७॥

ईश्वर में मन लगानेवाले ऋषि दयानन्दजी वहाँ से ककोड़े चले गये। वहाँ पहुँच कर गुरु विरजानन्दजी का देहान्त-संवाद सुनकर वे बहुत शोकाकुल हुए। भला गुरु का शोक किस को दुःख नहीं देता ? ॥ १७ ॥

वियोगदूनोपि स पत्तनान्तरं
पुरादितः प्राप्य विचारपद्धतौ ।
महोदयान्नष्टविशेषसंशया-
नकल्पयत्सत्वरमेव तत्त्वरः ॥१८॥

शोकाकुलावस्था में ही आप नरौली गये और वहाँ आपने बहुत से लोगों की शंकाओं का समाधान करके उन्हें निःसंशय कर दिया ॥ १८ ॥

इतः स गत्वा नगरान्तरं यति-
निजोपदेशैर्बहुबोधयज्जनान् ।
ययावितः कायमगंजमंजसा
ततोपि वेगेन नु फर्रुखपत्तनम् ॥१९॥

फिर आप नरौली से बहरामपुर गये और वहाँ के लोगों को उपदेश देकर कायमगंज होते हुए फ़र्रुख़ाबाद पधारे ॥ १९ ॥

धर्मोपदेशमथ तत्र विधाय विद्या-
सम्बन्धिनं सुविषयं खलु बोधयित्वा ।
गङ्गातटे वटविशोभितकूलयुग्मे
तस्थौ समाधिविधिवर्धनदत्तचित्तः ॥२०॥

वहाँ पर जाकर धर्म एवं विद्या विषय में व्याख्यान देकर वट-वृक्षाच्छादित गंगा-तट में समाधि-क्रम बढ़ाते हुए रहने लगे ॥ २० ॥

श्रुत्वा तमद्भुतविचारपरं यतीन्द्रं
पौराणिका भयविशुष्कमुखाः कथञ्चित् ।
वाराणसीविलिखितं लघुमानपत्रं
शीघ्रं निवेद्य पुरतोस्य शनैरतिष्ठन् ॥२१॥

वहाँ के भयभीत पौराणिक विचारशील ऋषि के सामने स्वयं कुछ भी विचार-शक्ति न रखने के कारण काशी के पण्डितों के दिये हुए मानपत्र पेश करने लगे ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा तदीयलिपिमादरतोस्य चित्ते
हर्षोत्कताद्यतिविलोकनतोभवद्या ।
वाराणसीबुधगणस्य पराजये सा
प्राकट्यमेष्यति किमत्र विलेखनेन ॥२२॥

काशीस्थ पण्डितों के हाथ के लिखे हुए पत्र में अशुद्धियों को देख कर स्वामीजी के मन में उनके जीतने की जो प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई वह इसी सर्ग के अन्त में वर्णन की जायगी । यहाँ अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? ॥ २२॥

अत्रान्तरे दिनविनिश्चयपूर्वकं यः
शास्त्रार्थनिश्चयपणः समभूद्बुधानाम् ।
पीताम्बरः समभवत्परिषत्प्रधानो-
गोपालकश्च लघु तत्र वचःप्रधानः ॥२३॥

इतने में ही वहाँ शास्त्रार्थ का दिन निश्चित होगया जिसमें प्रधान पीतांबर जी बनाये गये और वक्ता पण्डित गोपालजी नियत हुए ॥ २३ ॥

मूर्तिप्रपूजनविधावभवद्विचारः
सर्वैः समं बुधवरैः प्रहरत्रयं सः ।
यस्मिन्ययुर्विमुखतां विबुधाः क्रमेण
पौराणिकास्तदपरे लघुहर्षमापुः ॥२४॥

वह शास्त्रार्थ मूर्त्ति-पूजन विषय में हुआ जिसमें पौराणिक लोग हार गये और विद्वानों को बहुत बड़ा हर्ष हुआ ॥ २४ ॥

एतावतैव समयेन दलं द्वितीयं
वाराणसेयमनयन्विबुधाः पुरोस्य ।
यत्तस्य खण्डनमयं विदधे महात्मा
सम्यक्तया प्रतिपदं तिलशः किमन्यत् २५

इतने ही में दूसरे 'शास्त्रार्थ का निश्चय होने पर जो दूसरा काशी का पत्र आपके समक्ष आया उसका आपने ख़ूब खंडन किया ॥ २५ ॥

कामार्थिनोपि शिवइत्यवगम्य तस्य
शीर्षे निजांसधृतगाङ्गजलप्रपूरान् ।
आपातयञ्छिवकरं जगतामवेक्ष्य
सत्यं तदद्भुतमभूच्छिवमेव यूनाम् ॥२६॥

वहाँ पर कुछ कामरियों ने स्वामी जी को शिव समझ कर अपने कंधे पर रक्खी हुई गंगाजल की सारी शीशियाँ उनके सिर पर चढ़ा दीं। वास्तव में उनका भी कल्याण होगया ॥ २६ ॥

अत्रान्तरे हलधरो बहुभिर्मनुष्यैः
सत्राजगाम किल तत्र महाभिमानी ।
यत्राश्रितिः समुचिता मुनिना वनान्ते
ध्यानोपयोगितटमाप्य कृता निसर्गात् ॥२७॥

इसी बीच में अभिमानी हलधर (ओझा) बहुत से पुरुषों को साथ लेकर वहीं पर आये जहाँ कि गंगा-तट पर आप ठहरे हुए थे ॥ २७ ॥

दृष्ट्वेश्वरं बुधगणस्य स तत्र मानाद्
द्रव्यात्मकं विनिमयं परिकल्प्य तूर्णम् ।
मौर्त प्रकल्प्य विषयं निगमप्रमाणा-
भावान्निरुत्तरइवाभवदश्रमेण ॥२८॥

वह गर्व से उनके सामने चार सहस्र की जमा रखकर मूर्तिपूजन विषय में कुछ बोला, परन्तु वेद-प्रमाणाभाव से स्वयं मूक होगया ॥ २८ ॥

सर्वं विहाय मतपक्षमयं विपक्षी
रात्रौ कृञः प्रकरणं प्रथयन्न चक्रे ।
यद्भाषणं मलिनतां महतीं जनेषु
तत्सत्यमाप बलवन्मुनिना परास्तः ॥२९॥

दूसरे दिन रात के समय और सब बातों को छोड़ कर केवल 'कृञ' धातु का प्रकरण उठाया गया, परन्तु जब वह कुछ भी न बोला तब उसकी बड़ी निन्दा हुई ॥ २९ ॥

पश्चादसौ मलिनशाक्तमतैकपक्षो-
वार्तामकल्पयदनल्पविषादवेषः ।

यस्मिन्पराजयमवाप्य परं न पश्चा-
दास्यं प्रकर्तुमशकन्मनुजेषु नूनम् ॥३०॥

फिर ओझा महाशय ने क्रोध में भर कर शाक्त-मत की बातें छेड़ीं, परन्तु उनमें भी वह ऐसा परास्त हुआ कि उसको मुँह दिखाना भारी होगया ॥ ३० ॥

अनन्तरं तत्र निवेश्य रम्यां
स पाठशालां मनुजैः प्रशस्तम् ।
पुरान्तरं प्राप लघु क्रमेण
जनौघसन्दर्शितमञ्जुमार्गः ॥३१॥

शास्त्रार्थ के अनंतर आप वहाँ पर एक पाठशाला स्थापन कर वहाँ से शीघ्रही सिंहीरामपुर पधारे ॥ ३१ ॥

तत्र तर्जितमतान्तरवादः
सत्यशास्त्रविनिवेशितभावः ।
यापयन्दिनयुगं मनुजौघा-
नश्रुपूर्णनयनानकरोत्सः ॥३२॥

वहाँ पर दो दिन रह के मतों का खण्डन एवं सत्य शास्त्रों का मंडन करते हुए अंत में वियोग के लिए उद्यत हुए ॥ ३२ ॥

इतो गमिष्याम्यधुनेति सादरं
वदत्यमुष्मिन्यमिनाम्बरे परा ।
निरस्तधैर्याभवदेव सर्वथा
शुचा बुधाली किमतः परं वचः ॥३३॥

जब आपने अपने जाने का मनोरथ विद्वानों को सुनाया तब समस्त विद्वान् शोक से अत्यन्त शोकाकुल हुए ॥ ३३ ॥

पुरान्तरं गतवति पुण्यदर्शने
मुनौ ततः परतरमेकतः स्थिता ।

मुदाभवत्प्रमुषितशोकसागरा
शुचान्यतः प्रमुषितहर्षसागरा ॥३४॥

जलालाबाद जाने के समय आपके एक भाग में स्थित जन तुष्ट हुए, दूसरी तरफ़ के शोकाकुल हुए ॥ ३४ ॥

विश्रम्य तत्र दिवसैककमादरेण
सम्भाषणैर्बुधजनान्परितोष्य चारम् ।
गङ्गातटस्थितमयं प्रययौ क्रमेण
स्नुघ्नं सुरामिषपरायणकान्यकुब्जम् ॥३५॥

जलालाबाद पहुँच कर एक दिन वहाँ के विद्वानों को भाषण से संतुष्ट कर आप वहाँ से क़न्नौज पधारे ॥ ३५ ॥

गत्वा स तत्र विबुधद्वयमञ्जसैव
मूर्तिप्रपूजनपथे बलवद्विजित्य ।
सर्वासु दिक्षु जनगीतशुभावदान-
स्तस्थौ दिनानि कतिचिन्निजयोगचित्तः ॥३६॥

क़न्नौज में गुलज़ारीलाल हरिशंकर नामक दो पण्डितों को मूर्त्तिपूजन विषय में परास्त कर स्वामीजी सर्वतः निज कीर्ति को सुनते हुए कुछ दिन वहीं योग-क्रिया करने लगे ॥ ३६ ॥

ब्रह्मावर्तं पुरवरमथ प्राप्य योगीश्वरायं
नानासिद्धैः सह परिचयं वर्धयित्वा महद्भिः ।
नानायोगाभ्यसनपटुतां वीक्षयन्मोक्षशिक्षा-
भिक्षामिक्षाव्रतपरिचये दत्तचित्तो बभूव ॥३७॥

वहाँ से फिर आप ब्रह्मावर्त गये वहाँ के सिद्धों से परिचय कर उनसे कुछ योग की बातें करते हुए रहने लगे ॥ ३७ ॥

ततः परं कर्णपुरं महात्मा
ययौ तटस्थानि बहूनि पश्यन् ।

पुराणि सामध्वनिसुन्दराणि
मनुष्यवर्यैरपि सेवितानि ॥३८॥

फिर आप वहाँ से गंगा तट पर बसे हुए अनेक ग्रामों को देखते हुए क्रमशः कानपुर पधारे ॥ ३८ ॥

गत्वा तत्र तटोत्तमाश्रितलसद्विश्रान्तघट्टाश्रमे
विश्रान्तिं समुपेत्य सज्जनवरैरामोदितः सत्कथाः ।
कुर्वन्वार्षिकयोगसाधनविधावम्भोजिनीमञ्जुले
देशे हंस इवातिहर्षमगमत्सत्यं परिव्राडयम् ॥३९॥

वहाँ पर विश्रांत घाट पर विश्राम कर आप वहाँ के पण्डितों से बात करते हुए, वर्षा काल के योग्य योग-क्रिया करने लगे ॥ ३९ ॥

न भवति नवबिल्वैः प्रीतिमानीश्वरस्त-
न्निगमलिखितमन्त्रैः स्तूयतामादरेण ।
इति वदति यतीन्द्रे सज्जना बिल्वपर्णैः
करभशिशुबुभुक्षामेव दूरं प्रचक्रुः ॥४०॥

वहीं पर श्रावण में बेलपत्र चढ़ाने वालों से आपने कहा कि ईश्वर इनसे प्रसन्न नहीं होता, वेद-मन्त्रों से उसकी प्रार्थना करो। ऐसा कहने पर पण्डितों ने सब पत्ते ऊँटों को चरा दिये ॥ ४० ॥

भैरवो यदि विभीषणमूर्तिः
कारणं त्रिजगतां न हि पूर्तिः ।
सर्वमेतदनृतं क्व महेशो-
भैरवः क्व महदन्तरमेतत् ॥४१॥

वहीं पर निवासस्थान में भैरव का भय दिखानेवालों से आपने कहा कि यदि भयानक भैरव ही जगत् का कारण है तो संसार कदापि स्वस्थ नहीं रह सकता, इसलिए यह सब मिथ्या है ॥ ४१ ॥

जनेन मुक्तिमिच्छता विधेय एव सर्वदा
स पञ्चयज्ञसङ्ग्रहः श्रमेण भक्तिपूर्वकम् ।
विलोक्यते जगत्ययं विमुक्तिमार्गउत्तमो-
न मूर्तिपूजनादिकं कदापि मुक्तिदं भवेत् ॥४२॥

वहीं पर जनों से आप कहने लगे कि मुक्ति चाहनेवालों को सर्वदा पंचयज्ञ से हवन करना ही शास्त्रों में बतलाया है। मूर्त्ति-पूजनादि से कदापि मुक्ति नहीं होती ॥ ४२ ॥

न मूर्तयः प्रस्तरनिर्मिताङ्ग्यो
भवन्ति शीतादिभिरत्रतान्ताः ।
अतः किमर्थं वसनव्ययोयं
मनुष्यवर्यैः क्रियते मुधैव ॥४३॥

वहीं पर आपने यह भी कहा कि पत्थर की मूर्त्तियों को कभी शीत नहीं लगता इसलिए उन्हें कपड़ा पहनाना व्यर्थ है ॥ ४३ ॥

इति निगदति योगिवृतपूज्ये नितान्तं
सकलविपणिभाजां मन्दिरे मन्दिरेरम् ।
वसनरहितवेषा मूर्तयः सम्बभूवुः
क्व न फलति बुधानां वाक्यमेकान्तरम्यम् ॥४४॥

ऐसा कहने पर वैश्यों के सब मन्दिरों में मूर्त्तियों से वस्त्र उतरवा दिये गये ॥ ४४ ॥

न वास्तवेऽयं शिवइत्युदीरय-
त्यरं मुनौ तत्र तदा गृहे गृहे ।
उपस्करीभूतपदार्थपेषणं
बभूव पाषाणशिवैर्यथोचितम् ॥४५॥

यदि शिव हो तो क्योंकर यह संसार का कल्याण न करे ? इसलिए यह शिव नहीं। ऐसा कहने पर वहाँ के मनुष्य महादेवों से घर घर मसाला पीसने लगे॥ ४५ ॥

एकस्मिन्दिवसे विलोक्य रचनां चक्राङ्कितानां मुनि-
स्तानित्थं निजगाद कुत्र लिखितं मांसाशनं पुस्तके ।
नोचेत्तर्हि वितप्तमुद्रणशिलासंपृक्तमांसास्रजां-
पानं यत्क्रियते तदत्र न कथं पापोदयः सम्भवेत् ॥४६॥

एक दिन आप चक्रांकितों से कहने लगे कि आपके किस पुस्तक में मांस खाने का विधान है ? यदि नहीं तो दुग्ध में तप्त मुद्रा बुझाकर पीना कहाँ तक विहित है ? ॥ ४६ ॥

'तोबाह' शब्दकथनेन लयन्नयान्ति
पापानि कस्यचिदपीह तदेतदत्र ।
केनापि मन्दमनसा वचनं प्रयुक्तं
पापान्वितो भवति पापमना मनुष्यः ॥४७॥

वहीं पर आये हुए यवनों से आप कहने लगे कि "तोबाह" के करने से किसी के पाप दूर नहीं होते । किया हुआ अवश्य भोगना ही पड़ता है ॥४७॥

एवं वादिनि देवे
सकलापरिषत्पुरोस्य यवनानाम् ।
सत्यं ते किल कथनं
प्रावददित्थं समास्थिता हर्षात् ॥४८॥

ऐसा सुन कर सब लोग प्रसन्नता से सत्य है सत्य है कहने लगे ॥ ४८ ॥

अधमकार्यवशाज्जगतीतले
सुमनसामपि निन्दनमीक्ष्यते ।
इति वदत्युचितं विदुषांपतौ
परिषदस्य वचोन्ववदच्छिवम् ॥४९॥

बुरे काम के करने से अच्छे पुरुषों की भी बुराई ही हुआ करती है, आप के इस प्रकार कहने पर सब मान गये ॥ ४९ ॥

इत्थं विनीतसमयः
स्वामी विश्रान्तघट्टभवनेषु ।
अनयद्वर्षाकालं
वेदोदितमार्गमुपदिशन्नखिलम् ॥५०॥

इस प्रकार उपदेश देते हुए आप विश्रांत पर वर्षा-काल बिताते रहे ॥५०॥

अथ प्रवृत्तां शरदं विलोक्य
जयागमाशामपि पत्तनेषु ।
बभूव हंसः परमः स योगी
विभागचुञ्चुर्गुणदोषवाराम् ॥५१॥

फिर शरद् तथा जयाशा को देख आप गुण दोष-रूप जल के विभाग में हंस बन विचरने का प्रारंभ करने लगे ॥ ५१ ॥

प्रवृत्तमेनं प्रसमीक्ष्य योगिनं
विपश्चितां दिग्विजयेषु सर्वथा ।
मनस्यभूत्सा भयवेपथुव्यथा
न शक्यते या मयकापि वर्णितुम् ॥५२॥

आपको दिग्विजयोद्यत देख जो दुःख पण्डितों के हृदय में हुआ वह अकथनीय है ॥ ५२ ॥

निजोपदेशैर्भयमादधानः
स तत्र पौराणिकमण्डलेषु ।
नवीनकोलाहलकार्यमाने
निदानभूतोभवदप्रमेयः ॥५३॥

अपने उपदेशों से पौराणिकों में भय जमाते हुए वे जगत् में नवीन कोलाहल के कारण बन गये ॥ ५३ ॥

जनैः समस्तैर्नगरे समस्ते
विमर्दनां वीक्ष्य पुराणभाजाम् ।
कथाविलोपानुगमादरोदि
सतारमुत्तारितवस्त्रभूषैः ॥५४॥

पौराणिकों ने नगर में कथा वालों की दुर्दशा देखकर और वस्त्राभूषणों को उतार कर रोना आरंभ कर दिया ॥ ५४ ॥

परस्परं केप्यवदन्मुखे मुखे
किमत्र कुर्मो वयमस्य भाषणैः ।
पुराणि सर्वाणि गतानि चेतनां
न कोपि शेते वत निद्रयावृतः ॥५५॥

कोई कोई आपस में कहने लगे कि अब हम क्या करें । इनके भाषण से सभी पुरुष सचेत होगये, किसी को रात में नींद तक नहीं आती ॥ ५५ ॥

एवं विचारयति तत्र जने सशोकं
प्रादुर्बभूव नितरां मनुजेषु हर्षः ।
सन्द्रष्टुमद्भुततयोभयतः प्रवृद्धं
वादं यतीन्द्रहलयोर्जगति प्रसिद्धम् ॥५६॥

जब इस प्रकार पौराणिक लोग दुःख के साथ विचार कर रहे थे तब लोगों ने ऐसा सोचा कि हम स्वामीजी के साथ हलधर पण्डित का शास्त्रार्थ करावेंगे ॥ ५६ ॥

वेदोपवेदमुनिकल्पितशास्त्रजातं
वेदाङ्गजातमितरन्मुनिभिः प्रदिष्टम् ।
सिद्धान्तकोटिमुपनीय जगत्प्रसिद्धः
शास्त्रार्थकल्पनपटुर्यतिराजगाम ॥५७॥

यह सुन कर स्वामी जी भी वेद, वेदाङ्ग और उपांगों को सिद्धान्त कोटि में रखकर शास्त्रार्थ के लिए तयार होगये ॥ ५७ ॥

घट्टे भैरवनाम्नि विष्टरवरैराभूषिते सर्वतः
सर्वे तत्पुरवासिनोतिधनिनो मान्यास्तथा सूरयः।
अन्ये राजजनाः प्रबन्धविषये न्यस्ताः सभानायकं
चक्रुस्थैनपदाभिधं पुनरभूत्संभाषणस्योदयः ॥५८॥

भैरवघाट में विस्तर बिछाने पर नगर के सब धनी एवं गुणियों की उपस्थिति में संस्कृतज्ञ (मिष्टर थैन साहब को) सभापति बनाकर शास्त्रार्थ का आरंभ हुआ ॥ ५८ ॥

पूर्वं तत्र हलः पराजितमुखः प्रस्तावनाडम्बरं
कृत्वाख्यन्मुनिमैतिहासिकमतं सत्यं न वेत्यावद ।
मिथ्येति प्रतिगद्य तद्यतिवरः सर्वाञ्जनानावद-
द्यूयं वैदिकमार्गसंश्रितिपरास्तूर्णं भवन्त्वादरात् ॥५९॥

उसमें पूर्व परास्त हलधरजी कुछ देर प्रस्तावना पढ़कर आपसे पूँछने लगे कि पुराण आपके मत में सत्य हैं वा मिथ्या हैं ? स्वामीजी ने मिथ्या कहकर कहा कि सबके सब वैदिक-मार्ग का अवलंबन करो ॥ ५९ ॥

लज्जासन्नतमेनमीक्ष्य सकला गोष्ठी परास्तं मुदा
मेने तत्र हलं जयोन्मुखमियं योगीन्द्रमेकान्ततः ।
अन्ते तन्मतपक्षपातमकरोत्सर्वं विहाय भ्रमं
के लोके मनुजा भवन्ति न सदा सन्मार्गसंसेविनः ॥६०॥

इस शास्त्रार्थ में हलधरजी का पराजय एवं आपका जय देखकर सब लोग अंत में गत-संदेह हो, वैदिक-मार्ग का आश्रय लेने लगे ॥ ६० ॥

सभापतिरनन्तरं निजविचारपक्षोचितं
दलं वितरयाम्बभूव यतये प्रशंसापरम् ।

प्रणम्य च ततो ययौ मुनिवरं हलस्याज्ञतां
वदञ्जनशतैर्वृतः स्वभवनं समन्ताद्घनम् ॥६१॥

अंत में सभापति भी अपने विचार से स्वामीजी को जयपत्र देकर और हलधरजी की हार बतला कर अपने बँगले को चले गये ॥ ६१ ॥

अथारभन्निपातनां सरिद्वराजलेष्वरं
गृहे गृहेग्निहोत्रिणो जना बभूवुरेकतः ।
शिवागणेशकालिकामहेशकेशवाश्मनां
क्रमेण वीक्ष्ययन्निदं हलो जगाद मानवान्॥६२॥

अब नगर के मनुष्यों ने जब अग्निहोत्री बन मूर्त्तियों को गंगा में फेंकना आरंभ किया तब हलधरजी उनसे कहने लगे ॥ ६२ ॥

मा पातयन्तु सलिलेषु शिवादिदेवान्
मा धारयन्तु हृदयेषु मतं नवीनम् ।
मा विश्वसन्तु विदुषोस्य वचःसु लोकाः
किं किं न भञ्जितमनेन पुराणकृत्यम् ॥६३॥

नवीन मत को धारण कर मूर्त्तियों को मत फेंको । तुम इसकी बात का विश्वास मत करो । इसने किस का खण्डन नहीं किया ॥ ६३ ॥

यदि मतमस्य नैव हृदयादधुना भवतां
व्रजति लयं ततो मम गृहस्य पुरः क्रियताम् ।
बहुविधमूर्तिसञ्चयइति प्रदिशन्मनुजा-
नयमतिशोकपूरिततनुः समभूदवरः ॥६४॥

उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारे हृदय से इसका मत नहीं निकलता तो अपनी अपनी मूर्त्तियाँ मेरे घर के द्वार पर धर आओ ॥ ६४ ॥

वाचं यदा हलधरस्य जनाः समन्तात्
सामाजिकं समधिगत्य मतं न केचित् ।

आकर्णयन्नतिविशुष्कमुखस्तदानी-
मेषः स्वगेहमुदगादतिरोषयुक्तः ॥६५॥

अंत में जब किसी ने न सुना तब अपना सा मुँह लेकर महाराज घर बैठ गये ॥ ६५ ॥

अन्ते समाजनवमन्दिरमत्र योगी
सम्यग्विधाय सुजनैरभितः प्रशस्तः ।
हैमीभिरादरवशाद्बहुमुद्रिकाभि-
राराधितो जयमनन्तमवाप दैवात् ॥६६॥

स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के अंत में वहाँ पर समाज-मन्दिर की स्थापना कराई । फिर सुवर्ण-मुद्राओं से अभिपूजित मुनि जय को प्राप्त हुए ॥ ६६ ॥

इतः प्रतस्थे मनुजैरभिष्टुतः
सपत्तनान्युत्तमशिष्यसंवृतः ।
क्रमेण पश्यन्पुरमेकमद्भुतं
सराजमप्येकपथादराजकम् ॥६७॥

यहाँ से फिर आप बीच में आये हुए नगरों को क्रमशः देखते हुए उत्तम शिष्यों सहित "रामनगर" को पधारे ॥ ६७ ॥

तत्र रामनगरे स महात्मा
वैदिकं मतमशेषजनेषु ।
दर्शयन्न विरराम बुधाना-
मन्तरेषु विनिवेशितभीतिः ॥६८॥

वहाँ पर (२१ सितम्बर सन् १८६९ ई० को) पहुँच कर रामलीला में उसका खण्डन कर वैदिक धर्म प्रचार करने लगे ॥ ६८ ॥

तद्भयादविदुषां तु कथा का
निःस्मृतिर्न विदुषामपि मन्ये ।

सम्बभूव भवनादपरं किं
मूर्छिताभवदशेषबुधाली ॥६९॥

आपके भय से मूर्खों की तो बात ही क्या विद्वान् भी अपने अपने घरों में से नहीं निकले ॥ ६९ ॥

अन्धकारकृतकुद्युतिलेशा
ज्योतिरिङ्गणकुर्कीटकभेदाः ।
नो विभान्ति हरिदश्वसमक्षे
सत्यतामयमगाज्जनवादः ॥७०॥

सूर्य के समक्ष पटबीजना नहीं चमकता। वह अँधेरे में ही चमका करता है। यह दृष्टान्त उस समय में सत्य होगया ॥ ७० ॥

परतरमितः स योगी
कुत्सितमार्गप्रचारपटुलोकम् ।
उपकण्ठस्थितमारात्
काशीनगरं समाजगामारम् ॥७१॥

वहाँ पर धर्मोपदेश देकर आप उस काशी में गये जहाँ के लोग निन्दित मार्ग का प्रचार करते थे ॥ ७१ ॥

तत्रानन्दारामे
नितरामानन्दयँल्लोकान् ।
सानन्दं किल कृतवान्
वसतिं श्रीमान्दयानन्दः ॥७२॥

२२ अक्टूबर सन् १८६९ ई० को आप आन्दबाग़ में उतर कर निवास करने लगे ॥ ७२ ॥

तद्गतबुधजनविजये
दत्तमनास्तन्निवासिनो विबुधान् ।

नानाविधमनुजोचित-
भेदव्यासैरपृच्छदयमखिलान् ॥७३॥

वहाँ के पण्डितों के पराजय का ध्यान करते हुए स्वामीजी वहाँ के पुरुषों से वहाँ की व्यवस्था पूछते रहे ॥ ७३ ॥

तत्राययुस्त्रिचतुराः क्रमशो महीशा
ये नास्तिका इव निरादरणीयवेदाः ।
तानुत्तरोत्तरविवादसमृद्धशङ्कान्
नव्योत्तरैरयमकल्पयदार्यभद्रान् ॥७४॥

इतने में ही दो तीन नास्तिक से राजा लोग आकर आपसे कुछ पूछने लगे, जिनका उत्तर देकर आपने उनको आस्तिक बना दिया ॥ ७४ ॥

अत्रान्तरे कतिचिदुन्नतगर्ववन्तो-
नूनं विपश्चिदवराः सहसोपगम्य ।
शङ्कासमाधिविषयैः प्रसमीक्ष्य पूर्णं
तं प्रार्थनापटुवचोभिरलं प्रणेमुः॥७५॥

कुछ देर बाद कई अभिमानी पण्डित और आये जो आपको देखकर आपकी प्रशंसा करने लगे कि आपके समान यहाँ पर कोई विद्वान् नहीं है ॥ ७५ ॥

एवं विनीतदिवसः स सुखेन योगी
विद्यामवेक्ष्य विदुषां सहसैव तत्र ।
विज्ञापनैरहरहः सकलप्रतोली-
भित्तीश्चकार खचिता इव चित्रभेदैः ॥७६॥

दूसरे दिन स्वामी जी ने गली गली में शास्त्रार्थ के विज्ञापन लगवा दिये ॥ ७६ ॥

तार्तीयीकदिने प्रधानमनुजद्वारा दलं मुद्रितं
सर्वेषां विदुषां गृहेषु बलवानेषः समप्रापयत् ।

यद्दृष्ट्वा समकालमेव सभयाः कैलासचन्द्रादयः
कर्णाकर्णि गतागतैर्बहुविधं मन्त्रं प्रचक्रुः स्वयम् ॥७७॥

तीसरे दिन आपने एक प्रधान पुरुष के हस्ताक्षराङ्कित विज्ञापन छपवा कर समस्त विद्वानों के घर पर पहुँचवा दिया, जिसको देखकर कैलासचन्द्रजी जैसे विद्वान् भी भयभीत होकर विचार करने लगे ॥ ७७ ॥

अस्मादप्यपरं दलं नरपतेः संप्रेष्य पार्श्वेवद-
द्विद्वद्भिः सह कारयाशु महितं शास्त्रार्थमेकं मम ।
नोचेत्स्वीकुरु वेदमार्गममलं हित्वा मतानिक्रमा-
द्यत्ते रम्यतरं चकास्ति हृदये तत्स्वीकुरुष्वानयोः ॥७८॥

चौथा पत्र आपने श्रीमान् काशीनरेश के पास भेजा । उसमें लिखा था कि यातो आप काशी के पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ करावें और या आप वैदिक-सिद्धान्तों को मानें । इसमें जो उचित हो सो कीजिए ॥ ७८ ॥

निरीक्ष्य दलमीदृशं नरपतिः समाहूयतां
समस्तबुधमडलीं गदितवानिदं श्रूयताम् ।
अनेन मुनिना समं कुरुत वादमेकान्ततो-
न चेत्परमतो निजे मनसि मानमानीयताम् ॥७९॥

स्वामीजी के पत्र को देखते ही काशि-राज ने पण्डितों को बुलाकर कहा कि या तो आप लोग स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करें और या आज से पाण्डित्य का अभिमान छोड़दें ॥ ७९ ॥

इति श्रुतवचोलवाः सकलपण्डिताः प्रावदन्
न वेदविषयेषु नो गतिरतः प्रदेयो ध्रुवम् ।
कथंचिदवधिस्ततो वयमितस्ततः स्वेच्छया
निरीक्ष्य कथनक्रमे प्रचलिता भविष्यामहे ॥८०॥

काशि-राज के वचन सुनकर पण्डितों ने कहा कि हम वेद बिलकुल नहीं जानते। वहाँ वेद का विषय छिड़ेगा। इसलिए आप हमको कुछ दिन का अवकाश दें तो हम कुछ देख भाल कर शास्त्रार्थ की तैयारी करें ॥ ८० ॥

इति श्रुत्वा वाचं परिषदुदितां पञ्चदशकं
दिनानां विद्वद्भ्यो नरपतिरदान्मार्गणकृते ।
प्रबन्धं दीपानामथ नियतसंवादभवने
प्रकर्तुं भृत्यादीनवददितिवृत्तव्यसनवान् ॥८१॥

यह सुनकर राजा ने उन्हें पन्द्रह दिन का अवकाश दिया और शास्त्रार्थ के स्थान की सफ़ाई आदि के लिए नौकरों को आज्ञा देदी ॥ ८१ ॥

एकस्तेषु ययौ महर्षिसविधे कालात्यये पण्डितः
प्रष्टुं के भवतां मतेऽभिमततां प्राप्ताः प्रमाणोचिताः ।
ग्रन्थाइत्यधिगत्य शास्त्रनिचयं तं प्रावदत्सादरं
विद्वन्मण्डलनायकानुतलसत्पादारविन्दद्वयः ॥८२॥

नियत समय बीत जाने पर एक विद्वान् स्वामीजी के पास आये और आकर पूछने लगे कि आप किन किन ग्रन्थों का प्रमाण मानते हो? स्वामीजी ने यह उत्तर दिया कि ॥ ८२ ॥

स्वातन्त्र्येण मते ममास्ति सुमते प्रामाण्यमेषां क्रमा-
द्वेदानां परतः प्रमाणपदवी शास्त्रेषु मे संमता ।
अङ्गब्राह्मणपुस्तकेष्वपि मतिस्तादृग्विधा वर्तते
नातः किञ्चिदपि प्रमाणपदवीमाप्तं मते मे कृतम् ॥८३॥

मैं वेदों को स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण तथा अङ्गशास्त्र आदि को परतः प्रमाण मानता हूँ। इनके अतिरिक्त मैं और किसी ग्रन्थ का प्रमाण नहीं मानता ॥ ८३ ॥

इति निगदितवाचं स्वामिनं वीक्ष्य लोकाः
कथमपि न वचांसि प्रावदंस्तत्समक्षे ।

परमितरभयेन प्राप्तकालान्तभागा-
नियतमगुरनेके वाहनैः पारिषद्याः ॥८४॥

इस प्रकार उत्तर देते हुए उनके समक्ष कुछ न कह कर राजा के भय से सब पण्डित सवारियों में बैठ कर नियत स्थान पर जा पहुँचे ॥ ८४ ॥

द्रष्टुं महत्त्वमिह वासवताम्बुधाना-
मत्रान्तरेऽतिमहती जनता समेता ।
यामाहुरानुमिकभावविदश्चिरत्ना
विद्वद्वरा इति ह षष्ठिसहस्रदेश्याम् ॥८५॥

इतने ही में यहाँ के पण्डितों का पाण्डित्य देखने के लिए बाहर से कोई ६०००० मनुष्यों का समूह आकर उपस्थित हुआ ॥ ८५ ॥

तस्यां स सत्वरमुपेत्य विवादवेश्म
संवेष्टितो बुधजनैर्मतिमानतिष्ठत् ।
कौशेयतन्तुपरिगुम्फितहारमध्ये
सर्वोत्तमो मणिरिवातिरुचानुविद्धः ॥८६॥

उस भीड़ में आप भी विद्वानों के बीच उच्चासन पर ऐसे जा बैठे कि जैसे हार के बीच में मणि ॥ ८६ ॥

दृष्ट्वाभितो निखिलपण्डितमण्डलन्तत्
सन्नद्धमुद्धततया निगमप्रमाणैः ।
सार्द्धं चकार कतिचिद्घटिकाः प्रवादं
पूर्वं प्रतर्जितसमस्तबुधः स पश्चात् ॥८७॥

सब विद्वानों को सभा में बैठा देख कर पहले तो स्वामीजी वेद-मन्त्रों के सम्बन्ध में कुछ वार्तालाप करते रहे ॥ ८७ ॥

मूर्तिप्रपूजनपरं परिकल्प्य वादं
स्वामी समस्तबुधमण्डलतो ययाचे ।

वेदप्रमाणमतिगर्जनतुल्यवाचा
मन्ये न कश्चिदशकत्पुरतोऽस्य वक्तुम् ॥८८॥

फिर स्वामीजी अति उच्चस्वर से गर्ज कर सबसे मूर्त्तिपूजन के सम्बध में वेदमन्त्रों का प्रमाण माँगने लगे। पर किसी ने एक भी प्रमाण नहीं दिया॥ ८८॥

अत्रान्तरेतिगलितं नितराञ्चिरत्नं
दष्टं घुणैरपगताक्षरमेकपत्रम्।
वेगादुपेत्य मुनये समदाच्छलेन
काशीबुधैः पुरत एव निसृष्टमेकः ॥८९॥

जब कोई न बोला तब एक मनुष्य ने एक गला, सड़ा, फटा पुराना सा पत्र लाकर स्वामीजी को दिया। यह सब चालाकी वहाँ के पण्डितों ने पहले से ही रच रक्खी थी॥ ८९॥

सायङ्कालवशादनन्तरमतिद्ध्वान्तोदये तद्दलं
यावद्दीपरुचौ विलोक्य विपलद्वन्द्वेन नष्टाक्षरम्।
वक्तुं प्रारभताशु तावदखिला मिथ्याजयोद्घोषिणी
साऽविद्वज्जनमण्डली समचलद्गेहानि यानैः स्वकैः ९०

समय सायंकाल का था, अँधेरा हो चला था और वायु के कारण लालटेन की ज्योति हिल रही थी। ऐसी दशा में जब स्वामीजी उस पत्र को पढ़कर उसका उत्तर देना ही चाहते थे तब इतने में ही वह अविद्वानों की मण्डली जय बोलती हुई अपने घर को चली गई॥ ९०॥

यातेषु तेषु विबुधेष्वयमेकयोगी
दत्वा तदुत्तरमुपान्तजनेषु सत्यम्।
वासं जगाम रघुनाथबुधश्च तेषां
सन्तर्जनं गतवतामकरोद् बुधानाम् ॥९१॥

उनके चले जाने पर और कितने ही विद्वानों के सामने स्वामीजी उस पत्र का उत्तर देकर अपने स्थान को चले आये। स्वामीजी के चले आने पर पण्डित रघुनाथप्रसादजी ने काशी के पण्डितों को .खूब फटकारा ॥९१॥

प्रातः समस्तनगरेषु जयप्रशस्तिं
गीतां जनैरुपनिशम्य स योगिवर्यः ।
तुष्टिम्परामुपजगाम बुधास्तथान्ये
रुष्टा बभूवुरतिनिन्दनया किमन्यत् ॥९२॥

प्रातःकाल होते ही समस्त नगर में एवं समाचार-पत्रों में अपना जय देख स्वामीजी अतिप्रसन्न हुए और काशीस्थ पण्डित उन्हीं पत्रों से अपनी हार देख अति शोकाकुल हुए ॥ ९२ ॥

यातेषु केषुचिदयं दिवसेषु योगी
भूयोपि विद्वदवरान्नवसूचनाभिः ।
वेगादिवाह्वयदहो परमेषु कोपि
चूंकारमात्रमपि नैव शशाक कर्त्तुम् ॥९३॥

कुछ दिनों के बाद आपने फिर भी शास्त्रार्थ का नोटिस दिया। परन्तु उनके तपोबल से किसी ने चूं तक नहीं की ॥ ९३ ॥

वसन्निवासे मधुसूदनस्य
यथाकरोत्खण्डनमेष देवः ।
पुराणदीक्षाविषये समस्ता
पुरी तथा साक्ष्यपदेस्ति नूनम् ॥९४॥

लाला मधुसूदनदास के यहाँ जिस प्रकार आपने पुराणों का खण्डन किया उसकी साक्षिणी समस्त काशी विद्यमान है ॥ ९४ ॥

यदा संस्कृतस्याशयं मूढलोका
विपर्यस्तभावेन चक्रुस्तदानीम् ।

गिरा मानवानामदाद् वक्तृतां ता-
मतो जन्तवः सर्वं एव प्रसन्नाः ॥६५॥

जब संस्कृत का आशय मनुष्य उलटा लगाने लगे तब आपने भाषा में व्याख्यान देना आरंभ किया। अब तक जितनी बातें हुईं वे सब संस्कृत में ही होती रहीं, भाषा में व्याख्यान सुन कर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए॥ ९५ ॥

त्रयं व्याख्यानानामतिबलवदाकर्ण्य सभया-
बुधा न्यायाधीशालयकृतपदं नष्टसुषमाः ।
अभूवन्राजापि द्रुतमुपगतः पादपतनान्
निजं मन्तुं चन्तुं समवददिदश्चित्रमभवत् ॥६६॥

जब जज साहब के बँगले पर आपके तीन व्याख्यान हुए तब तो सभी विद्वान् डर गये और काशिराज भी आपके चरणों में गिर कर अपने अपराध की क्षमा माँगने लगे ॥ ९६ ॥

देवोप्यथोत्तमगिरेरुपवाटिकं द्राग्
वेगाद् विजित्य विदुषः सकलान्पुनश्च ।
विज्ञाप्य सर्वमतगानपि सर्वभावै-
रन्ते निरीक्ष्य विबुधान्मुदितो बभूव ॥६७॥

आपने भी उत्तमगिरि के बाग़ में समस्त विद्वानों को शास्त्रार्थ में फिर जीत अंत में विज्ञापन द्वारा सूचना दी। पर फिर भी जब किसी को आता न देखा तब शांति को प्राप्त होकर आप अपना कार्य करते रहे ॥ ९७ ॥

लोकाः पुनर्मुनिमिमं समवेक्ष्य तत्र
पुष्पाभिषेकमुचितं प्रमदादकुर्वन् ।
प्राचीनतामुपगतामथ नैजमैत्रीं
नव्यामनुत्तमफलामपि सर्वभावैः ॥६८॥

शास्त्रार्थों के बाद नाना देशों से आये हुए पुरुषों ने हर्ष से आपके ऊपर पुष्प-वृष्टि कर प्राचीन मैत्री को नवीन बनाया ॥ ९८ ॥

द्वाविंशतिः समभवन्नृगिरा यदानीं
सम्भाषणानि महतोस्य तदा पुरेत्र ।
हर्षेण सज्जनवरैर्महदार्यधर्म-
संवर्धनाय रचितं भवनं विशालम् ॥९९॥

जब आपके २२ व्याख्यान भाषा में हुए तब वहाँ के पुरुषों ने आनन्द से काशी में भी समाज-मन्दिर बनवाया ॥ ९९ ॥

तत्र वैदिकमतप्रचारिणी
पाक्षिकी समभवच्छुभा सभा ।
यां विलोक्य शुचमेव सङ्गताः
सर्व एव किल कोविदाधमाः ॥१००॥

वहाँ पर वैदिक-मत-प्रचारिणी एक पाक्षिक सभा होने लगी जिसको देख वहाँ के पण्डित और भी जल गये ॥ १०० ॥

इत्थं विजित्य विबुधान्मुनिरत्र सर्वा-
नेकान्तमात्मिकबलेन स सप्तवारम् ।
वेदोदितं सकलमत्र निवेश्य कार्य्यं
दैवात्परिश्रमफलं समवाप पूर्णम् ॥१०१॥

इस प्रकार एक बार नहीं स्वामीजी ने सात बार काशी के विद्वानों को परास्त किया और वहाँ वैदिक धर्म का बीज बोते हुए आपने अपना परिश्रम सफल माना ॥ १०१ ॥

लब्ध्वा केन्द्रस्थले स्वं
जयमयमखिलं व्याप्य कीर्त्या महेशं ।
न्यायाधीशं दयालुं
विमलमखिलदं निर्जरं निर्विकारम् ।

सर्वाधारं समस्ते
जगति विजयदं वीक्ष्य मन्त्रैरसंख्यै-
र्भूयोभूयः प्रसन्ना-
द्वरललितपदं वर्णयन्नाप लक्ष्मीम् ॥१०२॥

भारतवर्ष के मुख्य विद्यापीठ काशी में, ईश्वर की कृपा से, विजय प्राप्त कर स्वामीजी सब दिशाओं में अपना यश फैलाने लगे। विजय पाकर अन्त में आपने वेद-मन्त्रों से उस महेश, दयालु, निर्मल, अजर, निर्विकार, सर्वाधार और विजयप्रद परमेश्वर की प्रार्थना की जिससे आपकी बड़ी शोभा हुई ॥ १०२ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
वाराणसी-विजयो नाम षष्ठः सर्गः ।
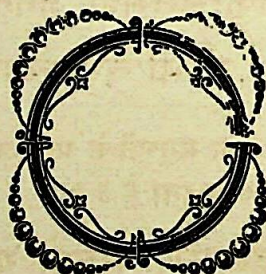
सप्तमः सर्गः

अथ प्रतस्थे सानन्दो दयानन्दः प्रतापवान् ।
गङ्गायमुनयोरन्तः पुलिनायितपत्तनम् ॥१॥

काशी के पण्डितों को जीतने के पश्चात् परमानन्दी, परमप्रतापी श्रीस्वामीजी महाराज गंगा-यमुना के बीच में बसे हुए प्रयाग में, कुम्भ के अवसर पर पधारे ॥ १ ॥

यत्र प्रकृष्टयज्ञानामनुष्ठानादहर्निशम् ।
नामानुगुणतां याता प्रयाग इति कल्पना ॥२॥

जहाँ पर प्रतिदिन शुभ यज्ञों के होने से प्रयाग नाम अन्वर्थ पड़ गया ॥२॥

यत्र माघे महाकुम्भसंभवा जनता नवाम् ।
गङ्गायमुनयोः शोभां वर्धयत्यागमैर्गमैः ॥३॥

जहाँ माघ में कुम्भ का मेला मनुष्यों के आने जाने से, गंगा और यमुना के दोनों तटों की शोभा बढ़ाया करता है ॥ ३ ॥

सप्ताशीति सहस्राणि ऋषयो यत्र सङ्गताः ।
मीमांसनपराश्चक्रुर्वैदिकं कर्म शाश्वतम् ॥४॥

जहाँ पर सतासी सहस्र ऋषि जन आपस में विचार करते हुए वैदिक कर्म करते थे ॥ ४ ॥

तत्र गंगातटे श्रीमान्कल्पयित्वा निजस्थितिम् ।
वैदिकं धर्ममाख्यातुं चकमे काम्यकल्पनः ॥५॥

सुन्दर कल्पना करनेवाले श्रीमान् स्वामीजी महाराज वहाँ अपने निवास का प्रबंध करके वैदिक धर्मोपदेश के लिए उद्यत हुए ॥ ५ ॥

चत्वार्युद्देश्य भूतानि कल्पयित्वातिवेदवित् ।
लक्ष्याणि प्रारभत्तेषां खण्डनामुत्तरोत्तराम् ॥६॥

स्वामीजी जड़पूजन, मृतकश्राद्ध, कल्पित पुराण, जलतीर्थ इन चार उद्देश्यों को लक्ष्य में धर कर क्रमशः इनका खण्डन करने लगे ॥ ६ ॥

कृतार्थान्विदधँल्लोकानुपदेशैर्महाशयैः ।
महाशयेतिपदवीमाप तत्र महाशयाम् ॥७॥

अपने भावगर्भित उपदेशों से मनुष्यों को कृतार्थ कर स्वामीजी ने वहाँ महाशय की पदवी को प्राप्त किया ॥ ७ ॥

साधवाः पण्डिताश्चैनं तत्र शङ्कासमाधिभिः ।
सहस्रशो व्यवृण्वन्त दातारमिव याचकाः ॥८॥

जिस तरह माँगनेवाले दाता के समीप आया करते हैं इसी तरह बहुत से साधु और पण्डित जन अपनी शंकाओं को दूर करने के लिए स्वामीजी को घेरे रहते थे ॥ ८ ॥

एकस्तमवदत्तत्र मानवो मानगर्वितः ।
नग्नस्य शीतबाधा ते कथं भवति न प्रभो ! ॥९॥

जिन दिनों स्वामीजी प्रयाग के कुम्भ-मेले में आये थे उन दिनों वे नग्न रहा करते थे । वे रात को भी कौपीन के अतिरिक्त और कोई वस्त्र नहीं पहनते थे। उन्हीं दिनों किसी अभिमानी पुरुष ने आप से पूँछा कि महाराज, ऐसे शीतकाल में आपको शीत की बाधा क्यों नहीं होती ? ॥ ९ ॥

नासिकामिव देहं मे तव मानवशीतता ।
बाधते नेति कथिते तस्मिन्स निरगादरम् ॥१०॥

स्वामी जी ने इस प्रश्न का तुरंतही कैसा अच्छा उत्तर दिया वह सुनने के योग्य है । उन्होंने कहा, जिस प्रकार तुम्हारी नाक को शीत नहीं लगता उसी प्रकार हमारे सारे शरीर को शीत की बाधा नहीं होती । इतना सुन और निरुत्तर होकर वह आदमी चला गया ॥ १० ॥

रचितां कविपद्यानां वीक्ष्य टीकामयं सुधीः ।
अशुद्धेति समाभाष्य तत्कर्तारमतर्जयत् ॥११॥

प्रयाग में पण्डित शिवसहायजी एक बड़े विद्वान् गिने जाते थे । उन्होंने वाल्मीकिरामायण की टीका बनाई थी । उस टीका में स्वामीजी ने अनेक अशुद्धियाँ निकालीं और टीकाकार को ख़ूब फटकारा ॥ ११ ॥

जनताजनसंजातनिजवादप्रचारणः ।
स परं हर्षमापेदे वेदमार्गप्रवर्तनात् ॥१२॥

वहीं पर बहुत से मनुष्यों के समुदाय में अपने व्याख्यानों द्वारा वैदिक धर्म को बढ़ता देखकर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

पुरान्तरमथो गत्वा भागीरथ्यास्तटे वसन् ।
वेदोदितानि कर्माणि व्याख्यानैरुपदिष्टवान् ॥१३॥

वहाँ से फिर स्वामीजी मिर्ज़ापुर पहुँच गंगा तट पर रहते हुए व्याख्यानों द्वारा वैदिक-कर्मों का प्रचार करने लगे ॥ १३ ॥

अस्योपदेशैर्मनुजाः पुराणप्रतिपादितम् ।
विहाय मनुसंदिष्टमग्निहोत्रादि चक्रिरे ॥१४॥

आपके उपदेशों से वहाँ पर मनुष्यों ने पुराण-प्रोक्त बातों को छोड़कर मनु-प्रोक्त अग्निहोत्रादिक करना प्रारंभ कर दिया ॥ १४ ॥

कृतां तत्रापि केनापि टीकां भारतमूर्द्धनि ।
समालोच्य प्रणेतारमशुद्धत्वादनिन्दयत् ॥१५॥

मिर्ज़ापुर में भी किसी बालकृष्ण नामी पण्डित ने महाभारत की टीका बनाई थी । उसको स्वामीजी ने देखा तो वह भी ठीक नहीं थी । अशुद्ध होने के कारण आपने उस टीकाकार की भी ख़ूब ख़बर ली ॥ १५ ॥

वक्तुकामा अपि जनाः पुराणोदारकल्पनाम् ।
पुरतस्तस्य नास्थातुमशकञ्छङ्कितान्तराः ॥१६॥

वहाँ कितने ही पौराणिक पण्डित आपके सामने आकर कुछ पौराणिक बातों के विषय में आपसे कुछ कहने की इच्छा तो करते थे, परन्तु वे इतने भयभीत हो रहे थे कि कुछ न कह सके ॥ १६ ॥

वर्षैकक्रमयं गङ्गातटे निजनिवेशिताः ।
पाठशालाः प्रपश्यन्सन्नुपदेशानदात्परान् ॥१७॥

एक वर्ष तक गंगा-तट पर स्वयं स्थापित की हुई पाठशालाओं को देखते हुए आप उपदेश देते रहे ॥ १७ ॥

इतो गत्वा दिशं पूर्वां पुरमेकमवाप्य सः ।
तस्थौ दिनद्वयं तस्मात्पुनराप पुरान्तरम् ॥१८॥

वहाँ से यथाक्रम पूर्व की ओर चलते हुए आप डुमरावँ पहुँचे और वहाँ दो दिन रहकर आरा पहुँचे ॥ १८ ॥

प्राड्विवाकस्य भवने कृतावासो महायशाः ।
नानोपदेशैर्मनुजान् गतशङ्कानिवाकरोत् ॥१९॥

वहाँ पहुँच कर आपने एक वकील (बाबू हरिवंशराय) की कोठी पर निवास किया। वहाँ आपने अपने उपदेशों से बहुत से लोगों की शंकाओं को दूर किया ॥ १९ ॥

अनन्तरमितः श्रीमान्ययौ पाटलिपुत्रकम् ।
यत्र कीर्तिः पुरो गत्वा सर्वं कार्यमकल्पयत् ॥२०॥

वहाँ से फिर आप उस पटने को पधारे कि जहाँ पर आपकी कीर्त्ति आपसे पहले ही पहुँच चुकी थी ॥ २० ॥

एकस्मिन्दिवसे तत्र पञ्चाशत्पण्डिताऽवराः ।
अर्द्धं शास्त्रार्थमुत्सृज्य वेगेन प्रययुर्गृहान् ॥२१॥

वहाँ पर एक दिन पचास पण्डित आप से शास्त्रार्थ करने को आये परन्तु विचार प्रस्तुत होने पर वे बीच में ही भाग गये ॥ २१ ॥

पुराणं गारुडं तत्र दुर्गां सप्तशतीमपि ।
मनुजान् बोधयामास मिथ्यासंवादपूरिताम् ॥२२॥

आपने फिर वहाँ गरुड़ पुराण और सप्तशती दुर्गा का खण्डन कर उसका जाल सब मनुष्यों को बता दिया ॥ २२ ॥

प्रभावादुपदेशस्य विबुधैस्तत्र सत्वरम् ।
गङ्गायां पूजनाश्मानो विनिक्षिप्ता विचारणात् ॥२३॥

आपके भाषणों के प्रभाव से वहाँ पर सज्जनों ने विचारपूर्वक पाषाण-मूर्तियाँ गङ्गा में डाल दीं ॥ २३ ॥

गुरुप्रसादस्तत्रैव बाँकीपुरत आगतः ।
गृहशब्दस्य नैरुक्त्यं पृष्ट्वा मौनमधारयत् ॥२४॥

बाँकीपुर से गुरुप्रसाद नामी एक मनुष्य ने आकर आपसे 'गृह'[1] शब्द का निर्वचन पूछा । यथार्थ उत्तर पाकर वह चुप होगया ॥ २४ ॥

पुरान्तरागतः कश्चित्पण्डितस्तत्र खण्डनम् ।
पुराणानां समाकर्ण्य योगीन्द्रमिदमब्रवीत् ॥२५॥

इतने में तिलहर से आये हुए यज्ञदत्त आपके द्वारा पुराणों का खण्डन सुनकर कहने लगे ॥ २५ ॥

सरलं खण्डनं मन्ये रचनं कठिनं मुने ।
पुराणानामदः श्रुत्वा वचो मुनिरभाषत ॥२६॥

हे मुने, खण्डन करना तो सरल है, पर पुराणों का बनाना कठिन है; यह सुनकर आपने कहा—॥ २६ ॥

उपानत्पादुके कृत्वा प्रश्नोत्तरपरायणे ।
क्रियते पद्यरचना मया लिखतु तां भवान् ॥२७॥

---

१ गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् (गेहे क इति कः)

मैं जूते और खड़ाऊँ का कल्पित संवाद बनाकर श्लोक-रचना करता हूँ आप लिखते जायँ ॥ २७ ॥

विश्वासो यदि ते नास्ति वचने मे महामते ।
कुरु नेत्रगतामेनां को विलम्बः क्रियावताम् ॥२८॥

हे बुद्धिमन्, यदि आपको विश्वास नहीं आता तो इस बात को प्रत्यक्ष करके देख लो। देरी का कुछ काम नहीं ॥ २८ ॥

इति वादिनि योगीन्द्रे सामग्रीमुपपाद्य सः ।
लेखनाय प्रवृत्तोभूद्यतिश्च कथने द्रुतम् ॥२६॥

ऐसा कहने पर वे लिखने बैठ गये। स्वामीजी धड़ाधड़ श्लोक बनाने लगे ॥ २९ ॥

किञ्चित्कालं विलिख्यासौ मुनेर्दुर्धर्षभाषिताम् ।
वीक्ष्य लज्जानतो भूत्वा जगाम निजमन्दिरम् ॥३०॥

थोड़ी देर लिखकर वे स्वामीजी की शीघ्र रचना-शक्ति को देखकर लज्जित होगये और अपने घर को चले गये ॥ ३० ॥

पुराणखण्डनां वीक्ष्य हतोत्साहा जनास्तदा ।
दिनास्तकमलश्रीणि वदनानि दधुर्भृशम् ॥३१॥

उस समय आपके द्वारा पुराणों का खण्डन सुनकर मनुष्यों के मुख सायङ्कालिक कमलों के तुल्य मलिन होगये ॥ ३१ ॥

दिनोदयलसत्पद्मश्रीमुखो यमिनां वरः ।
जयश्रियापि संयुक्तोभवदेव न संशयः ॥३२॥

सूर्योदय के समय खिले हुए कमल के समान आपका मुख अत्यन्त शोभित हो गया और जयलक्ष्मी को प्राप्त होकर आपकी बड़ी शोभा हुई ॥ ३२ ॥

गतः पुरान्तरमितो मूर्तिपूजनभञ्जने ।
चत्वारिंशन्मितान्मूकानकल्पयदयं बुधान् ॥३३॥

वहाँ से आप भागलपुर गये। वहाँ पण्डितों में आपकी ऐसी शोभा हुई कि जैसे प्रजा के बीच में राजा की होती है॥ ३३॥

मौनवेषधरस्तत्र कोपि साधुरसाधुताम्।
विहाय तद्वचः श्रुत्वा सत्यं साधुरिवाभवत्॥३४॥

वहीं पर एक मौनी साधु आपके भाषण सुनकर वास्तव में सच्चा साधु बन गया और उसने मौन छोड़कर सत्य बोलना आरम्भ कर दिया॥ ३४॥

पुरान्तरमभिप्रेत्य यतिर्धर्मप्रचारकृत्।
विबुधैः संवृतो रेजे राजेव विलसत्प्रभः॥३५॥

यहाँ से आप भागलपुर पहुँचे। वहाँ आप पण्डितों में जनवृन्दगत भूप के तुल्य भासने लगे॥ ३५॥

यत्रायमवसत्तत्र जनतामभिवीक्ष्यते।
उरव्याः पण्यवस्तूनि विक्रेतुमगमन्पुरात्॥३६॥

जहाँ पर आप रहा करते थे वहाँ पर वैश्यों ने सर्वदा मेला सा देख नगर से अपनी दूकानें वहीं पर लगादीं॥ ३६॥

वर्धमानपुराधीशो भूपस्तत्कीर्तिमुत्तमाम्।
विद्वज्जनगणाच्छ्रुत्वा चाकितोभवदात्मनि॥३७॥

उसी समय वर्धमान के राजा ने अनेक विद्वानों से आपका यश सुनकर अपने मन में बड़ा आश्चर्य माना॥ ३७॥

परीक्षणाय विदुषां चतुष्टयमयं ततः।
सविधे प्रेषयामास विदुषोस्य महामतेः॥३८॥

और उनकी परीक्षा के लिए उन्होंने राजाराम आदि चार पण्डित भेजे॥ ३८॥

न्यायशास्त्रप्रवीणास्ते वीक्ष्य वेदविदांवरम्।
अनुत्तरपदं गत्वा भाषणे नम्रतामगुः॥३९॥

वे नैयायिक पण्डित आपके पास जाकर शास्त्रार्थ में निरुत्तर हो नम्र हो गये ।। ३९ ॥

परावृत्य पुरन्नैजम्बुधास्ते सत्यभाषिणः ।
समस्तां क्षितिपस्याग्रे घटनां जगदुर्भृशम् ॥४०॥

और अपने नगर में जा राजा के समक्ष सत्य सत्य अपनी सब व्यवस्था कहने लगे ॥ ४० ॥

श्रुतवाक्यस्तदा राजा दर्शनाय महामतेः ।
सप्रजो निकटं प्राप भक्तिप्रह्वीकृतान्तरः ॥४१॥

उनकी बातें सुन कर राजा का हृदय स्वामीजी की भक्ति से उमड़ पड़ा । वे अपनी प्रजा के साथ स्वामीजी के चरणों में आ गिरे ॥ ४१ ॥

दर्शनावसरे वादं वीक्ष्य नानामतानुगैः ।
सहयोगेश्वरस्यायं राजा हर्षमुपागमत् ॥४२॥

नाना मतवादियों के साथ स्वामीजी के वाद विवाद को सुन कर राजा को बड़ा हर्ष हुआ ॥ ४२ ॥

मतमस्य महोत्साहैराविश्य विबुधान्वितः ।
पूजयामास चरणौ यथाशक्ति धनादिभिः ॥४३॥

और वह निज पण्डितों के साथ आर्यमत में प्रविष्ट हो यथाशक्ति धनादि से आपका सत्कार करने लगा ।। ४३ ।।

अनुज्ञामधिगत्याथ गुरुवर्य्यान्निजं पुरम् ।
प्रतस्थे परमोदारवचनैर्निगदन्गुणान् ॥४४॥

अन्त में आपसे आज्ञा माँग अनेक प्रकार से गुणानुवाद गाते हुए अपने नगर को चले गया ।। ४४ ॥

गते राजनि योगीशोप्ययमानन्दनैर्जनैः ।
समं वाचां विलासेन यापयामास वासरान् ॥४५॥

उसके जाने पर भी अनेक मनुष्यों के साथ वाग्विलास करते हुए कुछ दिन वहीं पर निवास करते रहे ॥ ४५ ॥

अनार्यमतगः कश्चिद् द्विजो मनसि योगिनम् ।
वीक्ष्य भाग्यमलं शोकान्निनिन्द किमतः परम् ॥४६॥

उसी समय एक ब्राह्मण, जो ईसाई होगया था, स्वामीजी को देखकर अपने भाग्य को सोचता हुआ यों कहने लगा ॥ ४६ ॥

यद्ययं योगिनां राजा मिलेत् प्रागेव दैवतः ।
भवेयं किमहं तर्हि नीचमार्गव्यवस्थितः ॥४७॥

यदि स्वामीजी महाराज यहाँ पर पहले ही आजाते तो मुझको काहे को धर्म-भ्रष्ट होना पड़ता । फिर मैं कभी ईसाई न होता ॥ ४७ ॥

इति शोकमलंप्राप्तं ब्राह्मणं वीक्ष्य योगिराट् ।
हृदये परमात्मानं सस्मार निजगाद च ॥४८॥

ब्राह्मण-ईसाई की ऐसी व्याकुलता को देखकर स्वामीजी महाराज ईश्वर का ध्यान करके इस प्रकार कहने लगे ॥ ४८ ॥

आर्यावर्तमनार्याणामावर्तं बहवो नराः ।
कल्पयन्ति मनुष्याणां धर्मनाशनतत्पराः ॥४९॥

बहुत से मनुष्य, लोगों के धर्म बिगाड़ने के लिए, इस आर्यावर्त को अनार्यावर्त बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं ॥ ४९ ॥

दयामय ! निराधार ! जगदीश्वर ! सत्वरम् ।
भारते करुणादृष्टिं कुरु भारतवत्सल ! ॥५०॥

हे दयामय, हे निराधार, हे जगदीश्वर, हे भारतवत्सल, आप भारतवर्ष पर कृपादृष्टि कीजिए ॥ ५० ॥

इति नानाविधाभासभासितात्मा स सन्मतिः ।
देशोपकारकरणे द्विगुणं यत्नमादधे ॥५१॥

इस प्रकार नाना प्रकार के सोच विचार करके सुमति स्वामीजी संसार की धार्मिक दशा के सुधार के लिए और अधिक यत्न करने लगे ॥ ५१ ॥

राजधानीन्धनाधानीं गुणाधानीमतःपरम् ।
प्रतस्थे यानमाग्नेयमधिरुह्य बुधाग्रणीः ॥५२॥

पण्डितों में अग्रणी स्वामीजी आग्नेय (अग्नि से चलने वाली) रेलगाड़ी पर सवार होकर गुण और धन से परिपूर्ण राजधानी कलकत्ते पधारे ॥ ५२ ॥

तडिन्मार्गश्रुतारम्याऽऽगमनास्तत्र सज्जनाः ।
दर्शनाकाङ्क्षिणो नूनं बाष्पयानस्थलीमगुः ॥५३॥

जब लोगों ने स्वामीजी के आने का समाचार तार के द्वारा सुना तब स्वामीजी के दर्शन की इच्छा रखनेवाले कितने ही सज्जन रेलवे स्टेशन पर जा पहुँचे ॥ ५३ ॥

आगमोत्सवसम्भारबहुमानवभूषिता ।
सा स्थली रम्यतामाप किमतो वर्णनं परम् ॥५४॥

स्वामीजी के दर्शन और स्वागत करने के लिए लोगों की इतनी भीड़ स्टेशन पर लग गई कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता । उस भीड़ से स्टेशन भी जगमगाने लगा ॥ ५४ ॥

स्वागताचारसञ्चारविचारवति तज्जने ।
समभूदुदयो यानादस्य योगीश्वरस्य सः ॥५५॥

लोग आपके स्वागत का विचार करही रहे थे कि इतने में आप रेलगाड़ी से उतर आये ॥ ५५ ॥

जाते तस्योदये पादपतिते मनुजव्रजे ।
या शोभा समभूत्सा किं वर्णनीयास्ति केनचित् ५६

जब स्वामीजी प्लेटफ़ार्म पर आये तब लोगों की भारी भीड़ आपके चरणों में गिर पड़ी । उस समय जो शोभा थी क्या उसको कोई वर्णन कर सकता है ? ॥ ५६ ॥

चन्द्रशेखरसेनाद्या जनाः स्वागततत्पराः ।
प्रमोदकानने रम्यमावासं तस्य चक्रिरे ॥५७॥

श्रीयुत चन्द्रशेखरसेन आदि सज्जनों ने आपका स्वागत किया और आपके ठहरने का प्रबंध प्रमोद-कानन में किया गया ॥ ५७ ॥

नन्दनादधिका तस्य दयानन्दसमागमात् ।
वनस्य ववृधे शोभा यया विश्वमिदं ततम् ॥५८॥

ऋषि दयानन्द के आने और ठहरने से देवताओं के नन्दन-वन से भी कहीं अधिक उस वन की शोभा बढ़ गई ॥ ५८ ॥

प्रातरेव समस्तेषु समाचारदलेष्वरम् ।
तदागमनसञ्चारा मुद्रिता अभवञ्छिवाः ॥५९॥

आपके आने का शुभ समाचार सवेरे ही समस्त समाचार-पत्रों में प्रकाशित होगया ॥ ५९ ॥

पण्डिता अपि तत्रत्याः समागत्य यथायथम् ।
निजां निजामनुमतिं तस्याग्रे क्रमशोवदन् ॥६०॥

वहाँ के बहुत से पण्डित जनों ने आपके सामने आ आकर अपनी अपनी अनुमति प्रकाशित की ॥ ६० ॥

असावपि महोदारवचनैरार्यमानवान् ।
नितरां तोषयामास वेदमार्गप्रवर्तकैः ॥६१॥

आप भी अपने उदार और वेदमार्ग-प्रवर्तक वचनों से आगत आर्य जनों को सन्तुष्ट करते थे ॥ ६१ ॥

न सा कापि पुरे तत्र प्रतोली समभून्मुदा ।
जना यस्यां मुनेरस्य जगदुर्न यशस्ततिम् ॥६२॥

उस महानगरी में कोई गली ऐसी न रही कि जिसमें लोग आपकी कीर्ति का गान न करते हों ॥ ६२ ॥

अथैनं कोपि पप्रच्छ साङ्ख्यकर्ता किमीश्वरम् ।
वेदाँश्च मानयामास न वेति स तमब्रवीत् ॥६३॥

कुछ दिनों के बाद हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने आपसे आकर पूँछा कि सांख्यकार वेद और ईश्वर को मानते हैं या नहीं ?॥ ६३ ॥

उभयस्वीकृतिपरः कपिलोभूदसंशयम् ।
भाष्यं भागुरिसम्भूतं वीक्ष्यतामत्र दर्शनम् ॥६४॥

यह सुनकर आपने उत्तर दिया कि वह दोनों को मानते थे। भागुरि मुनि का भाष्य इसमें प्रमाण देखिए ॥ ६४ ॥

इत्युक्तवति योगीन्द्रे केपि ब्राह्ममतानुगाः ।
समागत्य यथायोग्यमदो वचनमूचिरे ॥६५॥

इतना कहने पर ब्रह्म-समाज के देवेन्द्रनाथ आदि आकर आपसे पूछने लगे ॥ ६५ ॥

ब्राह्मं समाजमाप्तानामस्माकं धारणाविधौ ।
निषेधे वा विधिर्वास्ति यज्ञसूत्रस्य शाधि नः ॥६६॥

महाराज, हम लोग ब्रह्मसमाजी हैं। आप कृपा करके हमें बतलाइए कि हम लोगों के यज्ञोपवीत धारण का अधिकार है या नहीं ? ॥ ६६ ॥

इति पृच्छापरानेतान्गुणकर्मविभागशः ।
तद्विधानाविधानेषु कृतार्थानकरोज्जनान् ॥६७॥

इसके उत्तर में आपने उनको गुण-कर्म-विभाग के द्वारा अधिकार एवं अनधिकार बता दिया ॥ ६७ ॥

श्रुत्वा तद्वचनं तेपि वेदसिद्धान्ततत्पराः ।
समभूवन्निदं चित्रं विस्मितामकरोत्पुरीम् ॥६८॥

स्वामीजी का वचन सुनकर कितने ही ब्रह्मसमाजी वैदिक सिद्धान्तों को मानने लगे। इस विचित्र वृत्तान्त से सारी पुरी आश्चर्य में निमग्न हो गई ॥ ६८ ॥

केपि तत्रोपनिषदां पठनादिविधौ रताः ।
अन्ये तन्मतदीक्षासु पुष्टतामगमन्पराम् ॥६९॥

कोई पुरुष आपसे उपनिषद् पढ़ने लगे, कोई वैदिक धर्म में अत्यन्त आविष्ट हुए ॥ ६९ ॥

विद्वांसो बहवस्तत्र नानाशास्त्रपरायणाः ।
निजबुद्ध्यनुसारेण लाभमापुर्यथायथम् ॥७०॥

बहुत से विद्वान् अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार आपसे अनेक प्रकार के लाभ उठाते रहे ॥ ७० ॥

पुनर्जन्मपरं वादं हवनानुगतं तथा ।
कृतवन्तौ बुधौ मूकीकृतवानयमात्मधीः ॥७१॥

पुनर्जन्म एवं हवन विषय में विचार करने लगे। श्रीसुरेन्द्रनाथ और श्रीराजेन्द्रलाल को आपने यथोचित उत्तर से पराजित कर दिया ॥ ७१ ॥

नानाभवनभागेषु कृतव्याख्यानविस्तरा ।
नगरी शुशुभे तस्य दर्शनैरतिदर्शनैः ॥७२॥

बहुत से स्थानों में प्रति दिन व्याख्यान होने के कारण वह नगरी आपके दर्शनों से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुई ॥ ७२ ॥

नानाहवनपीठेषु यज्ञादिकमसौ मुनिः ।
कारयन्नवनीभागान्गन्धयुक्तानिवाकरोत् ॥७३॥

बड़े बड़े स्थानों में यज्ञ करते हुए वे सब स्थानों को सुगन्धित करते रहे ॥ ७३ ॥

एकस्मिन्दिवसे तत्र बहुमानवमण्डिते ।
भवने देववाचासौ व्याख्यानं संमदाददात् ॥७४॥

एक दिन एक मकान में बहुत से मनुष्यों की भीड़ में आपने संस्कृत में व्याख्यान दिया ॥ ७४ ॥

भाषान्तरे ततः कोपि विपरीतार्थकल्पनम् ।
प्रकुर्वन्बोधयामास तत्समाजगताञ्जनान् ॥७५॥

परन्तु किसी बंगाली ने आपके व्याख्यान का तात्पर्य कुछ उलटा करके मनुष्यों को सुना दिया ॥ ७५ ॥

प्रार्थयामासुरितरे तदातङ्केपि सूरयः ।
भगवन्नृगिरा देयं व्याख्यानमिति वादिनः ॥७६॥

यह गड़बड़ी देखकर कुछ समझदार वैदिक लोग आपसे कहने लगे कि महाराज ! इससे तो आप कृपा करके आर्य-भाषा (हिंदी) में ही व्याख्यान दें तो उत्तम हो ॥ ७६ ॥

भवदुक्तविपर्यासकल्पना मनुजैः कृता ।
दुनोत्यस्माकमत्यन्तं मानसानि विमर्शनात् ॥७७॥

क्योंकि आपके संस्कृत-व्याख्यान का अनुवाद जो बंगभाषा में करके लोगों को सुनाया जाता है वह आपके सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल होता है । यह देखकर हम लोगों को बहुत दुःख होता है ॥ ७७ ॥

इति श्रुतवचोव्रातः स महात्मा ततः परम् ।
मानवानां गिरा चक्रे भाषणं बहुविस्तरम् ॥७८॥

यह सुनकर फिर श्रीमान् स्वामीजी महाराज आर्य-भाषा (हिन्दी) में बड़े बड़े व्याख्यान देने लगे ॥ ७८ ॥

नानामन्त्रप्रमाणानि विषये विषये वदन् ।
कृतव्याख्यानसंपूर्तिर्जगामावासकाननम् ॥७९॥

इसी तरह आप वेद-मन्त्रों के प्रमाणों से युक्त अनेक विषयों में व्याख्यान दे दे कर विश्राम के लिए प्रमोद-कानन में आजाते थे ॥ ७९ ॥

प्रमोदकाननान्तस्थसरोवरतटाश्रितम् ।
योगिनं विबुधैर्व्यासं मनुजः कोप्यचिन्तयत् ॥८०॥

प्रमोद-कानन के अन्दर सरोवर के तट पर बैठे हुए एक पुरुष ने आपको याद किया ॥ ८० ॥

योगदृष्ट्या ततः श्रीमान्विचार्य तदभीप्सितम् ।
समाहूय मनाक्चक्रे तत्कार्यमपि गौरवात् ॥८१॥

उसी क्षण योग-दृष्टि से उसे जानकर और बुलाकर उसका काम पूर्ण किया ॥ ८१ ॥

कालान्तरे समीपस्थनिवासभवनेष्वयम् ।
नानावैषयिकीर्व्याख्याः कर्तुमारभतादरात् ॥८२॥

कुछ दिनों के अनन्तर [२ मार्च सन् १८७३ ई० को] निज निवासस्थान के समीपस्थ भवनों में भिन्न भिन्न विषय के व्याख्यान देने आपने आरंभ कर दिये ॥ ८२ ॥

क्वचिदीश्वरसद्भावविषयाभिमुखः क्रमात् ।
प्रमाणघटनाश्चक्रे तद्गताः समयोचिताः ॥८३॥

कहीं आपने ईश्वर की सत्ता के विषय में अनेक प्रमाणगर्भित और समयोचित व्याख्यान दिये ॥ ८३ ॥

जातिभेदपरं कञ्चित्प्रस्तूय विषयं ततः ।
सुमतिं कुमतिं सर्वलोकगामवदत्पराम् ॥८४॥

फिर आपने एक व्याख्यान जातिभेद के विषय में दिया । आपने ज़ाति-भेद-सम्बन्धी भी संसार की सभी सुमति और कुमति का वर्णन किया ॥ ८४ ॥

बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां क्वचिद्दशाम् ।
वर्णयन्नश्रुसम्पूर्णनयनानकरोज्जनान् ॥८५॥

किसी जगह आपने कुलीन बाल-विधवाओं की दुर्दशा का ऐसा चित्र उतारा कि सुननेवालों के नेत्रों से आँसू गिरने लगे ॥ ८५ ॥

ब्रह्मचर्य्यविधानादि क्वचित्प्रस्तूय तद्गताम् ।
दुर्दशां विबुधाग्रेषु दर्शयामास धीरधीः ॥८६॥

कहीं ब्रह्मचर्यरक्षा पर आपने व्याख्यान दिया और ब्रह्मचर्य-रक्षा के प्रभाव से जैसी कुछ दुर्दशा देश की हो रही थी उसका अच्छी तरह वर्णन किया ॥ ८६ ॥

इति नानानिबन्धेषु कल्पनाः पारमार्थिकीः ।
कल्पयन्नल्पकालेन कृतार्थामकरोत्पुरीम् ॥८७॥

इस प्रकार थोड़े से दिनों में ही आपने समस्त कलिकाता राजधानी को अपने सदुपदेश से कृतार्थ कर दिया ॥ ८७ ॥

पाठशालाप्रबन्धेपि राजकीये निजश्रमैः ।
वेदादिसत्यशास्त्राणां निवेशनमकारयत् ॥८८॥

राजकीय विश्व-विद्यालय में भी आपने निज परिश्रम से वेदादि सत्य शास्त्रों को रखवाया ॥ ८८ ॥

व्याख्यानान्यस्य विद्वद्भिर्लेखितुं यद्यपि श्रमः ।
कृतोपि मन्दभाग्यत्वान्नाप पूर्तिं यथोचिताम् ॥८९॥

यद्यपि वहाँ के विद्वानों ने आपके व्याख्यान लिखने आरंभ कर दिये तथापि वह दुर्भाग्य से पूर्ण न हुए ॥ ८९ ॥

तारानाथप्रभृतिभिर्विद्वद्भिः सह विस्तृतैः ।
प्रश्नोत्तरैर्नयव्याख्यामेव तत्राकरोन्मुनिः ॥९०॥

तारानाथ आदि अनेक विद्वानों के साथ नीति-विषय में विचार करते हुए आप कुछ दिन तक वहीं रहे ॥ ९० ॥

राजधानीश्रिया युक्तः स महात्मा भुवस्तले ।
कीर्तिमेकां व्यवस्थाप्य गमनाय मनो दधे ॥९१॥

फिर राजधानी की लक्ष्मी से विभूषित होकर वे वहाँ पर अद्वितीय कीर्ति को स्थापन कर चलने के लिए उद्यत हुए ॥ ९१ ॥

इतः स्थलान्तरं योगी बहुविद्वदुपावृतः ।
नानाविषयसंवादैः कृतार्थानकरोज्जनान् ॥९२॥

वहाँ से आप विद्वन्मण्डली से युक्त हुगली पहुँचे। वहाँ आपने सदुपदेशों से मनुष्यों को कृतार्थ करने लगे ॥ ९२ ॥

वेदवेदाङ्गशास्त्राणि प्रमाणीकृत्य मण्डले ।
सत्वरं विदुषां वाणीर्निग्रहस्थानमानयत् ॥९३॥

वेद, वेदाङ्ग और शास्त्रों के प्रमाणों से आपने विपक्षियों को परास्त कर दिया ॥ ९३ ॥

बुद्धिमन्तो जनास्तस्य दर्शनेनैव हर्षिताः ।
अभवन्परिपूर्णेन्दोर्दर्शनेनेव सागराः ॥९४॥

जिस प्रकार पूर्ण चन्द्र को देखकर सागर आनन्दित होता है उसी प्रकार आपके दर्शन करके वहाँ के सज्जन बहुत हर्षित हुए ॥ ९४ ॥

विपक्षिणो जनास्तत्र सभामेकामकल्पयन् ।
वञ्चनाय धनाढ्यानां वणिजामलसात्मनाम् ॥९५॥

उसी समय कुछ चक्राङ्कितों ने वहाँ पर एक "आर्य्यसन्मार्ग-सन्दर्शिनी" सभा वैश्यों के बहकाने को नियत की ॥ ९५ ॥

वृन्दावनपराभूतिसञ्जातकलुषान्तराः ।
यस्यां परिषदि प्रायो मूढा एव निमन्त्रिताः ॥९६॥

जिसमें आपके द्वारा वृन्दावन में फटकारे हुए चक्राङ्कित ही निमन्त्रित किये गये ॥ ९६ ॥

प्रागेव भयभीतास्ते ऋषेरस्य कथामपि ।
न कर्तुमभवञ्छक्ताः किमाह्वानादिकं पुनः ॥९७॥

उन्होंने आपके डर से आपका नाम तक नहीं लिया, बुलाना तो अलग रहा ॥ ९७ ॥

इतस्ततः समागत्य पण्डितास्तत्र पक्षिणः ।
नानाचूंक्तिभिर्गोष्ठीं वृत्ततामनयन्पराम् ॥९८॥

इधर उधर से बहुत से पण्डितों ने आकर सभा में चूँ चाँ करके उसको ऐसा बना दिया कि जैसा पक्षियों से संयुक्त वृक्ष ॥ ९८ ॥

इन्द्रजालसमानाभिः प्रश्नोत्तरसमाधिभिः ।
वणिजामलसान्तानां द्रव्याधानीरवञ्चयन् ॥९९॥

इन्द्रजाल के समान प्रश्नोत्तर करके उन लोगों को अपने जाल में फाँस और उनका कितनाही रुपया बिगाड़ डाला ॥ ९९ ॥

समाचारदले वीक्ष्य निन्दां ते वंचनोत्थिताम् ॥
वास्तवेपि मसीम्लानवदना अभवन्स्वयम् ॥१००॥

परन्तु समाचार-पत्रों में अपनी निन्दा सुन कर वे सबके सब मलिन-मुख हो गये ॥ १०० ॥

परं मूढा न मन्यन्ते निन्दां जगति किंत्वरम् ।
धनमेवाभिवाञ्छन्ति सर्वोपायैर्नु ते जनाः ॥१०१॥

परन्तु मूर्ख जन निन्दा की कुछ परवा न करते हुए केवल येन केन प्रकारेण धन ही कमाया करते हैं ॥ १०१ ॥

दयानन्दोपि महितं समाजभवनं क्रमात् ।
विधाय तत्र गमने मतिमाधादनुत्तमाम् ॥१०२॥

फिर स्वामी दयानन्दजी वहाँ समाज-मन्दिर बनवा कर चलने को उद्यत हुए ॥ १०२ ॥

अवाप्य पत्तनं तस्मात्परमद्भुतदर्शनः ।
वेदोदितमतव्याख्यामयं तस्तार सर्वशः ॥१०३॥

फिर वहाँ से भागलपुर जाकर आपने व्याख्यान दिये और लोगों को वैदिककर्म का प्रकार बतलाया ॥ १०३ ॥

तत्र नानाजनैरस्मादार्यधर्मप्रवर्धिनी ।
दीक्षा सादरमग्राहि किमलभ्यं सदागमात् ॥१०४॥

वहाँ पर बहुत से सज्जनों ने आपसे आदरपूर्वक आर्यधर्म के बढ़ाने वाली दीक्षा ग्रहण की। सत्समागम से सभी बातें सुलभ हो जाती हैं ॥ १०४ ॥

विधाय वस्त्रावरणं विदुषा केनचित्कृताम् ।
वक्तृतामल्पयत्नेन खण्डयन्मूकतामदात् ॥१०५॥

(वहाँ से छपरे में पहुँचे । वहाँ) एक पण्डित परदे की ओट में शास्त्रार्थ करने लगा। उस पण्डित का नाम जगन्नाथ था। स्वामीजी ने उसकी बातों का तुरंत खण्डन कर दिया। वह सर्वथा निरुत्तर हो गया ॥ १०५ ॥

अनन्तरमसौ पूर्वपत्तनेषु यथायथम् ।
विश्राम्यन्नाप मथुरां प्रयोजनवशाद्द्रुतम् ॥१०६॥

वहाँ से फिर आप पूर्व परिचित स्थलों में विश्राम लेते हुए चक्रांकितों के खण्डनार्थ मथुरा पधारे ॥ १०६ ॥

विद्वज्जनैस्तत्र सार्धं विधाय कथनं मनाक् ।
चपलं तत्र समगाद्यत्र रङ्गोत्सवोभवत् ॥१०७॥

मथुरा में भी कुछ विद्वानों से बात कर आप रंगजी के मेले पर वृन्दावन पधारे ॥ १०७ ॥

गत्वैव वैष्णवादीनां मतानि विदितक्रमात् ।
खण्डयामास योगीन्द्रो वैदिकैरेव साधनैः ॥१०८॥

वहाँ जातेही योगीन्द्र ने वेद-मंत्रों द्वारा वैष्णवमत का ख़ूब खण्डन किया ॥ १०८ ॥

बहवो द्वेषभाजोपि तत्रासन्मनुजाधमाः ।
परं ते नाशकन्कर्तुं किमप्यस्य महामतेः ॥१०९॥

वहाँ पर अनेक वैष्णव द्वेष-बुद्धि से उत्पात मचाने को उद्यत भी हुए परन्तु आपकी सावधानी से वे कुछ न कर सके ॥ १०९ ॥

मासैकक्रमुपस्थाय तत्र खण्डनमण्डनैः ।
प्रवाहे यामुने मूर्तीः पातयामास गेहिनाम् ॥११०॥

एक मास तक बराबर वहाँ रह कर खण्डन करते हुए आपने सैकड़ों गृहस्थों की मूर्तियाँ यमुना में गिरवा दीं ॥ ११० ॥

प्रभावं तत्र विन्यस्य ससमाजं गिरामयम् ।
प्रत्यावृत्तौ मनश्चक्रे नानास्थानेषु शान्तधीः ॥१११॥

अन्त में वहाँ समाज स्थापन करके फिर आप ने लौटने के लिए मन में विचार किया और मुरसान पधारे ॥ १११ ॥

जघान यत्र यत्नेन मुरं श्रीमधुसूदनः ।
दिनमेकं वसंस्तत्र वेदमार्गमचीकथत् ॥११२॥

जहाँ पर श्रीकृष्ण ने मुर नामक दैत्य को मारा था। उस मुरशायन में आकर स्वामीजी ने वैदिक-धर्म का प्रचार किया ॥ ११२ ॥

हस्ताभिधं ततो योगीपुरमेत्य मनोरमैः ।
योगदीक्षाक्रमैरेव हर्षितानकरोज्जनान् ॥११३॥

एक दिन मुरसान में रहकर फिर आप हाथरस पधारे और योग-मार्ग का व्याख्यान देकर आपने वहाँ के लोगों को बहुत संतुष्ट किया ॥ ११३ ॥

कौलं नाम ततः श्रीमानयमेत्य पुरं लघु ।
समाजकल्पनामत्र विधाय प्रययौ शनैः ॥११४॥

यहाँ से फिर आप अलीगढ़ पहुँचे । वहाँ कुछ दिन ठहर कर आप छलेसर चले गये ॥ ११४ ॥

यथायथं निवासेषु पूर्वदृष्टेषु संवसन् ।
दक्षिणां दिशमुद्यम्य ययावेकं पुरं महत् ॥११५॥

वहाँ से भी आप पहले देखे हुए प्रयागादि नगरों में होते हुए दक्षिण की ओर जबलपुर पधारे ॥ ११५ ॥

परं निधाय तत्रापि प्रभावं वचसामयम् ।
जगाम सत्वरं योगी शिवां पञ्चवटीमरम् ॥११६॥

वहाँ भी अपने वचनों का प्रभाव जमाकर स्वामीजी जल्दही वहाँ से कल्याणकारिणी पंचवटी पर चले गये ॥ ११६ ॥

पत्तने द्वे ततो गत्वा भिक्षावृत्तिपराञ्जनान् ।
विनिन्दन्देशसौन्दर्यनिरीक्षणपरोभवत् ॥११७॥

वहाँ से नासिक और त्र्यम्बक होते हुए स्वामीजी भिक्षुक वृत्तिवालों को फटकार कर देश की सुन्दरता को देखने लगे ॥ ११७ ॥

मूर्तिपूजाविधानानां खण्डनैस्तत्कृतैः शुभाः ।
दिशः प्रपूरयामासुर्मानवा मानवाः स्वयम् ॥११८॥

आपके किये हुए मूर्ति-पूजन-खण्डन को वहाँ के मनुष्य स्वयं सर्वत्र फैलाने लगे ॥ ११८ ॥

दिनैः कतिपयैरेव विचरन्विदुषांवरः ।
दक्षिणाया दिशः प्राप राजधानीमलंकृताम् ॥११९॥

थोड़ेही दिनों में उस देश का सौंदर्य देखकर आप दक्षिण देश की राजधानी मुम्बई पधारे ॥ ११९ ॥

ऋषेरस्यागमं श्रुत्वा विबुधा हर्षनिर्भराः ।
समभूवन्नथो मूढा विषण्णा युगपद्द्रुतम् ॥१२०॥

ऋषि का आना सुनकर वास्तविक विद्वान् तो अपने मन में अत्यन्त मुदित हुए परन्तु साथही मूढ़ जन अप्रसन्न भी हुए ॥ १२० ॥

बालकेश्वरविख्यातभवने तस्य सज्जनैः ।
समकारि मुनेरस्य निवासविधिरादरात् ॥१२१॥

मुम्बई के प्रतिष्ठित जनों ने बालकेश्वर के ऊपर एक प्रसिद्ध स्थल में आपके ठहरने का प्रबंध किया और वहाँ आप ठहरे ॥ १२१ ॥

भाषाचतुष्टयाभिज्ञैर्विबुधैर्धर्मनिर्णयम् ।
समुद्दिश्य मुनेरस्य विज्ञापनदलं कृतम् ॥१२२॥

ठहरने के बाद चार भाषाओं में प्रवीण विद्वानों ने एक एक विज्ञापन बनाया ॥ १२२ ॥

यस्मिन्मुद्रापिते पश्चात्प्रेषितेथ समुद्भवौ ।
नानापुरेषु विख्यातिरस्य सर्वजनश्रुता ॥१२३॥

जिसके छपने और बटने पर आस पास के सब नगरों में आपकी प्रसिद्धि होगई ॥ १२३ ॥

अनन्तरं समाजग्मुस्तत्र पौराणिका जनाः ।
परं हुङ्कारमात्रेण गता निजगृहाङ्गणम् ॥१२४॥

विज्ञापन देखते ही पहले वहाँ पर पौराणिक आये परन्तु स्वामीजी की एकही फटकार से वे अपने अपने घरों को भाग गये ॥ १२४ ॥

एकाङ्गपाठिनः केचिदेकशास्त्रपरा बुधाः ।
कथं सर्वज्ञसविधे विदध्युः स्थितिमित्यलम् ॥१२५॥

फिर एकही विषय के ज्ञाता कई पण्डित आये परन्तु वे बहुज्ञ स्वामीजी के सामने क्योंकर ठहर सकते थे ? ॥ १२५ ॥

वाल्लभस्य मतस्याथ सर्वतः पूर्वमादरात् ।
विभञ्जनामयं चक्रे तिलशः सर्वरीतिभिः ॥१२६॥

इसके बाद सबसे पहले आपने वहाँ पर आदरपूर्वक वल्लभमत का खण्डन किया ॥ १२६ ॥

दुर्धर्षं वीर्यमेतस्य खण्डने तन्मतानुगाः ।
समीक्ष्य दन्तमध्येषु स्वाङ्गुलीः समवेशयन् ॥१२७॥

जिसको सुन कर सब वल्लभकुल के मत को मानने वाले दाँतों के बीच में अँगुलियाँ दबाने लगे ॥ १२७ ॥

उपायाभावतः पश्चाद्गरलं दातुमुद्यताः ।
समभूवन्परं यत्नो नाभवत्कर्मणीदृशे ॥१२८॥

जब उनसे कुछ न बन पड़ा तब वे ज़हर देने को उद्यत हुए, परन्तु दे न सके ॥ १२८ ॥

परमात्मा मनुष्यस्य यस्य रक्षार्थमुद्यतः ।
कथं तस्य विनाशः स्यादिति सत्यं कथानकम् १२९

ठीक है, परमेश्वर जिसका रक्षक होता है उसका विनाशक कौन हो सकता है ? ॥ १२९ ॥

योगिराडपि दस्यूनामभिचारादि वीक्षणे ।
परमं यत्नमुद्यस्य तस्थौ तत्र यथा हरिः ॥१३०॥

आपभी फिर दुष्टों की दुष्टता जानकर बड़े सावधान होकर वहीं आनन्द-पूर्वक रहने लगे ॥ १३० ॥

एतावतैव कालेन गुप्तः कोपि सुमुद्रितान् ।
चतुर्विंशति सम्प्रश्नानकरोद्वाचिधीमताम् ॥१३१॥

इतने में किसी गुप्त नामक पुरुष ने संस्कृत में चौबीस प्रश्न छपवाकर आपके पास भेजे ॥ १३१ ॥

उत्तरं मुद्रितं तेषामयमप्यतिवेगतः ।
सम्प्रदायावदद्धर्मे गुप्तता का महात्मनाम् ॥१३२॥

जिनका उत्तर आपने भी तुरंतही संस्कृत में छपवाकर भेज दिया और लिख दिया कि धर्म-कार्य में गुप्त नाम क्यों ? ॥ १३२ ॥

पापभीता जना लोके यान्ति गुप्तत्वमुद्धताः ।
प्रकाशन्ते गुणस्यार्थे गुप्ता अपि महोदयाः ॥१३३॥

पापी पुरुष ही जगत् में गुप्त रहा करते हैं । महात्मा तो गुप्त भी प्रकट हो जाया करते हैं ॥ १३३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विद्वद्वराः केप्यकल्पयन् ॥
गोष्ठीं वैष्णवलोकानां पक्षपातेन गर्विताः ॥ १३४ ॥

इसी बीच में पक्षपात से गर्वित किन्हीं मूर्खों ने एक वैष्णवों की सभा की ॥ १३४ ॥

गट्टूलालादयो यस्यां सभापतिपदे स्थिताः ।
प्रमाणाभावतो मूर्तिपूजने मूकतां गताः ॥१३५॥

जिसमें गट्टूलालजी महाराज प्रधान बन मूर्ति-पूजन के शास्त्रार्थ में परास्त हुए ॥ १३५ ॥

धनलोभप्रभावेन यत्र विद्वद्वरा अपि ।
मूर्तिखण्डनवाक्यानि नावदन्किमतः परम् ॥१३६॥

धन के लोभ से विद्वान् भी सत्य छोड़ असत्य-वादी होते हैं, इसीसे किसी ने मूर्त्तिखण्डन के वचन न कहे ॥ १३६ ॥

यतिराडपि तां गत्वा गोष्ठीमबुधमण्डिताम् ।
नानामन्त्रपदैश्चक्रे मतानां खण्डनं क्रमात् ॥१३७॥

आपने भी उसमें जाकर वेद-मन्त्रों से जड़-पूजा का ख़ूब खण्डन किया ॥ १३७ ॥

यदाकर्ण्य बुधास्तत्र शीघ्रमेव सहस्रशः ।
वेदमार्गमुपक्रम्य तस्थुरत्यंतहर्षिताः ॥१३८॥

उस शास्त्रार्थ के विजय का लोगों के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सैकड़ों मनुष्य प्रसन्नता से वेदमार्ग पर चलने लगे ॥ १३८ ॥

बलवत्तरमालोक्य मतमस्य जयोन्मुखम् ।
ययुः सर्वेपि वेश्मानि वैष्णवाः पापबुद्धयः ॥१३९॥

सभा में आपका बड़ा प्रभाव देखकर सब वैष्णव अपने अपने घर में जा घुसे ॥ १३९ ॥

येन केन प्रकारेण मारणे कृतनिश्चयाः ।
मरणं स्वयमेवापुर्जगन्मध्ये पराभवम् ॥१४०॥

उन्होंने विष द्वारा आपके मारने के लिए प्रयत्न किये परन्तु मरण से भी अधिक पराजय-रूप मृत्यु को स्वयं प्राप्त हुए। स्वामीजी का कुछ भी न बिगड़ा ॥ १४० ॥

पुस्तकालयमध्येऽपि कृतशास्त्रार्थकल्पनाः ।
सहसैव पराभूतिं प्रापुरुद्धतपण्डिताः ॥१४१॥

फिर पुस्तकालय में कई पण्डित शास्त्रार्थ के लिए आपके पास आये जो बात की बात में परास्त होगये ॥ १४१ ॥

जयकृष्णादयोऽप्यन्ये वाटिकागतचत्वरे ।
जीवेश्वरपरं वादं कृत्वा मौनमुपागमन् ॥१४२॥

सेठ लीलाधर के बाग़ में चबूतरे पर जयकृष्ण आदि कई पण्डित जीवेश्वर विषय में कुछ बोलने लगे परन्तु अन्त में मूकही हुए ॥ १४२ ॥

नानामतपरा लोकाः प्रभावादस्य सत्वरम् ।
सत्यमार्गपरा एव समभूवन्नहोऽद्भुतम् ॥१४३॥

अनेक मतों में फँसे हुए अनेक जन आपके प्रताप से फिर भी आर्य-समाज में प्रविष्ट होगये ॥ १४३ ॥

जनानां किल साहस्री संख्यया षष्ठिसंमिता ।
मतमस्य महोदारा स्वीचकार महाधना ॥१४४॥

साठ हज़ार पुरुषों के बड़े भारी समुदाय ने वेदमत को स्वीकार किया ॥ १४४ ॥

नियमान्वेदविहितान्विलोक्य समकल्पयत् ।
समाजरचनां भक्त्या गिरिग्रामे यथोचिताम् ॥१४५॥

उन्होंने ने समाज में प्रविष्ट होकर बड़े समारोह से गिरगाँव में समाज-मन्दिर बनवाया और सब वेदानुकूल दस नियमों पर चलने लगे ॥ १४५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रामानुजमताश्रितैः ।
परिषत्कल्पिता यस्यां मतवादो महानभूत् ॥१४६॥

इसी बीच में रामानुजों ने एक सभा नियत की जिसमें निज पक्ष का बहुत कुछ मण्डन किया जाता था ॥ १४६ ॥

खेमराजादयो यस्यां व्यवस्थायै व्यवस्थिताः ।
स्वागतानि यथायोग्यं जनानां चक्रिरेचिरात् ॥१४७॥

उसके इन्तज़ाम के लिए सेठ खेमराज आदि नियत किये गये । उन्होंने सब का स्वागत किया ॥ १४७ ॥

नियतं समयं प्राप्य नानाभरणभूषिता ।
बभूव समितौ तस्यां जनानां क्रमशः स्थितिः ॥१४८॥

ठीक समय पर अनेक भूषणों से भूषित सभ्य जन यथोचित स्थानों पर बैठने लगे ॥ १४८ ॥

उभयाश्रितपक्षस्य लेखनाय व्यवस्थिताः ।
पत्रसंपादकाः सर्वे पदशोऽक्षरशोलिखन् ॥१४९॥

दोनों तरफ़ से संवाद लिखने के लिए पत्र-सम्पादक नियत हुए जो कि एक एक अक्षर लिखने वाले थे ॥ १४९ ॥

यतीश्वरोपि मतिमान्महासनमधिष्ठितः ।
समारेभे वचो व्यासं रामानुजजनैः समम् ॥१५०॥

सब काम जुड़ने पर आपभी उच्चासन पर बैठकर रामानुजियों से शास्त्रार्थ करने लगे ॥ १५० ॥

नियतग्रन्थसंवादप्रमाणपदभूषितः ।
ववृधे मूर्तिपूजायां विवादो विबुधोत्थितः ॥१५१॥

नियत ग्रन्थों को प्रमाण कोटि में रखकर मूर्ति-पूजा पर शास्त्रार्थ आरंभ होगया ॥ १५१ ॥

आवाहनविसर्गादिप्रमाणाभावतः स्वयम् ।
रामानुजमताविष्टो जनोभयमुपागमत् ॥१५२॥

जिसमें आवाहन और विसर्जन के मंत्राभाव से सब रामानुजी परास्त हुए ॥ १५२ ॥

पराभूतिमुपालभ्य रामानुजदले गते ।
किमेतदपि वक्तव्यं योगीजयमुपागमत् ॥१५३॥

पराजय को प्राप्त हुए रामानुजियों के भागने पर आपका विजय सर्वत्र प्रसिद्ध होगया ॥ १५३ ॥

दिनान्तरे महामान्यैरेका व्यरचि सा सभा ।
राज्ञामवनतेर्यस्यां निदानान्ययमुक्तवान् ॥१५४॥

सभा के दूसरे दिन आर्यपुरुषों ने अपनी सभा की जिस में भारतीय राजों का अधःपतन का कारण ख़ूब बतलाया ॥ १५४ ॥

ज्योतिर्वित्क्लीबकरभतैलिकानां निदर्शनैः ।
चातुर्विध्यं महायोगी मन्त्रिणामवदत्स्फुटम् ॥१५५

और जोतिषी, हीजड़े, ऊँटवाले, तेलवाले, चार प्रकार के दृष्टांतों से चार प्रकार के मन्त्रियों को बना कर आपने बड़े ज़ोर के साथ क्षत्रियों की दुर्दशा कही ॥ १५५ ॥

ईसवीयमताः केचिदनेन सह संविदम् ।
कुर्वन्नगुरहो द्विलैः प्रश्नैरेव बहुश्रमम् ॥१५६॥

इतने ही में विलसन साहब आदि कई ईसाई पादरी आपसे कुछ बोलने आये परन्तु वे भी न बोल सके ॥ १५६ ॥

मूर्तिपूजापरानन्ते रामलालादिपण्डितान् ।
विज्ञापनदलैरेव मूकीभूतानयं व्यधात् ॥१५७॥

अन्त में रामलाल आदि पौराणिकों को फिर विज्ञापन द्वारा परास्त कर अन्त में आपने विजय पाया ॥ १५७ ॥

नानामौक्तिकसम्प्रोतजयमालाविभूषितः ।
स बभौ तत्र परया शोभया परितो वृतः ॥१५८॥

मोतियों की माला से सुशोभित होकर आप जयध्वनियों से प्रसन्न हुए ॥ १५८ ॥

एकलक्षमितं द्रव्यं जनैर्दत्तमुपायने ।
समादाय ततो भव्यं पुण्यपत्तनमागमत् ॥१५९॥

भेट में आये हुए एक लक्ष द्रव्य वैदिकधर्मप्रचारार्थ ले कर [२० जुलाई सन् १८७५ ई० को] आप पूना पधारे ॥ १५९ ॥

विद्वज्जनवरैरेषः सत्रा सम्भाषणादिकम् ।
विधाय वैदिकं मार्गं तत्रायमुपदिष्टवान् ॥१६०॥

वहाँ दो मास तक पण्डितों से शास्त्रार्थ करते हुए वैदिकधर्मप्रचार करते रहे ॥ १६० ॥

नानानगरसंवासैरथायं विगतश्रमः ।
धर्मोपदेशदानाय निजं देशं समाययौ ॥१६१॥

अन्त में रतलाम आदि नगरों में जा कर [१८७५ ई० में] अपने देश काठियावाड़ में पहुँचे ॥ १६१ ॥

निजदेशगतेष्वेवं समस्तेषु पुरेष्वयम् ।
वेदोदितानि कर्माणि समन्तादुपदिष्टवान् ॥१६२॥

स्वामीजी पूर्वोक्त प्रकार से निज देशस्थ समस्त नगरों में वैदिक धर्म का उपदेश देते रहे ॥ १६२ ॥

यज्ञशाला गवां शालाः पाठशालाश्च सत्वरम् ।
विषये कल्पयामास निजे धर्मपरायणः ॥१६३॥

कहीं यज्ञशाला, कहीं गोशाला, कहीं पाठशाला बनवाते हुए स्वामीजी परमानन्द को प्राप्त हुए और ईश्वर का धन्यवाद एवं गुणगान करने लगे ॥ १६३ ॥

एवं त्रिशङ्कुतिलकां दिशमुद्यमेन
सम्यग्विजित्य निगमोक्तमतं वितन्वन् ।
योगी परां श्रियमलम्भत सत्यमेव
सिध्यन्ति कुत्र सुकृतानि न पुण्यभाजाम् ॥१६४॥

इन्द्र की दिशा (पूर्व) को तो स्वामीजी पहले ही विजय कर चुके थे अब उन्होंने उस यम दिशा को भी, कि जो त्रिशंकुतिलका के नाम से भी प्रसिद्ध है, विजय कर लिया। इन दोनों दिशाओं को अच्छी तरह जीतकर स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी महाराज सर्वत्र वैदिक-धर्म का प्रचार करते हुए वास्तव में सर्वोत्तम शोभा को प्राप्त हुए। ठीक है, पुण्यात्माओं के किये हुए परिश्रम कहाँ पर सफल नहीं होते ? सर्वत्र ही सफल होते हैं ॥ १६४ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
मोहमयी-प्रत्यावृत्तिर्नाम सप्तमः सर्गः ।

अष्टमः सर्गः

अथ जगदुपकारं सर्वशः कर्तुमिच्छ-
न्नयमतिकरुणार्द्रः कल्पयामास नव्यान् ।
निगमनियमपूर्णानप्रमेयप्रभावा-
नखिलगुणसमुद्रानुत्तमान्ग्रन्थपूगान् ॥१॥

अब आपके बनाये हुए ग्रन्थों का वर्णन करने के लिए आठवाँ सर्ग प्रारंभ किया जाता है। दक्षिण दिग्विजय के अनन्तर हर तरह से जगत् का उपकार करने के लिए वे करुणा-सागर स्वामीजी वेदानुकूल, अचिंत्य प्रभावशाली, सम्पूर्ण गुणों के समुद्र, उत्तमोत्तम नवीन ग्रन्थों के बनाने के लिए प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥

भवति सकलविज्ञो दर्शनैर्यत्कृतानां
जगति मनुजवर्यः पुस्तकानामयत्नात् ।
सकलगुणनिधानं नायकः सज्जनानां
कथमतिलघुवाचां मे पदं स्यात्स देवः ॥२॥

जिनके बनाये हुए ग्रन्थों के दर्शनों से ही मनुष्य जगत् में अनायास सम्पूर्ण बातों से अभिज्ञ बन जाता है वे सकल गुणनिधान, सज्जनों के नायक, दिव्यगुणवाले स्वामीजी अत्यन्त छोटीसी मेरी वाणी से किस प्रकार वर्णन के योग्य बन सकते हैं ॥ २ ॥

यदनुभवसमुत्था भारती भारते सा
विलसति विबुधानां पुष्पमालेव कण्ठे ।

गुणगणपरिपूर्णामन्दसौरभ्यरम्या
जगति स चिरकालं कीर्तिमाप्नोति भव्याम् ३

जिसके अनुभव से उत्पन्न हुई गुणयुक्त, उत्कट कीर्तिकर रचना विद्वानों के कण्ठ में पुष्पमाला के समान शोभा दे रही हो वही पुरुष चिरकाल तक इस संसार में यश का भागी होता है ॥ ३ ॥

इति मनसि स योगी चिन्तयित्वातिहर्षा-
ल्लिखनविधिविधाने दक्षिणानष्ट विज्ञान् ।
नियमयदतुलश्रीर्वेतनादानयुक्त्या
निखिलकरणयुक्तान्सर्वतः पूर्वमारात् ॥४॥

अपने मन में ऐसा निश्चय कर सबसे पहले लिखने में चतुर सब बातों में दक्ष, आठ पण्डितों को नौकर रखकर आप अपना विचार करने लगे ॥ ४ ॥

अवसरमथ लब्ध्वा भूमिकां वेदवाचा-
मरचयदयमात्मज्ञानवेत्ता प्रशस्ताम् ।
यदनुकरणकृत्ये सूरिणां बुद्धिरुग्रा
कथमपि बहुयत्नैः कल्पयामास कृत्यम् ॥५॥

विचार के अनन्तर, ईश्वरीय ज्ञान के वेत्ता ऋषि, प्रशस्त ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका का आरंभ करने लगे, जिसके लिखने में बड़े बड़े पण्डितों की बुद्धि चक्कर खाकर बड़े परिश्रम से काम दिया करती थी । अर्थात् जिसका लिखना भी कठिन था ॥ ५ ॥

अविरलविषयाणां दर्शनाद्यत्र चेतः
प्रसरति निगमानां दर्शने बुद्धिभाजाम् ।
भवति च सकलार्थप्राप्तिराश्वेव भक्ति-
र्जननमरणशून्ये सच्चिदानन्दरूपे ॥६॥

---

१ इन्नन्तोयं शब्दः शब्दस्तोममहानिधौ द्रष्टव्यः ।

जिस भूमिका में लिखे हुए विषयों के दर्शन से बुद्धिमान् मनुष्यों का चित्त स्वयं वेद की ओर प्रवृत्त होकर उनके अर्थों की प्राप्ति होने पर अजन्मा, अजर, अमर, ईश्वर में भक्तियुक्त हो जाता है ॥ ६ ॥

अनुभवति स एनां भूमिकां येन मन्ये
गुरुकुलमधिगत्यानेकविद्या व्यलोकि ।
न कथमपि समानव्याकृतिव्यासवेत्ता
विषयनिरतमर्त्यो वीक्षणेस्याः समर्थः ॥७॥

वही पुरुष इस भूमिका का विचार कर सकता है जिसने गुरुकुलों में जाकर बड़े बड़े कष्ट उठाये हों और अनेक विद्याओं का अभ्यास किया हो। छोटे मोटे व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों का जाननेवाला विषयी पुरुष इसको कदापि नहीं देख सकता ॥ ७ ॥

अखिलनिगममन्त्रैर्यत्र देवेन दैवात्
सकलविषयवार्तां मूलभूतां निबध्य ।
व्यरचि निखिलविश्वेनातपः संश्रिताना-
मतुलसुखनिदानं वेदवृक्षस्य नीचैः ॥८॥

जिसमें ऋषि ने चारों वेदों के मन्त्रों द्वारा मूल भूत समस्त बातों को दिखाकर भवताप से तपे हुए मनुष्यों के लिए पूर्ण सुखों की देनेवाली वेद वृक्ष की छाया समस्त भारतवर्ष में फैलादी ॥ ८ ॥

तिमिरगतजनानां दीपिका दर्शयित्री
निरयगतनराणां वारिका बोधयित्री ।
कुमतिमनुगतानां वर्तिका खण्डयित्री
व्यरचि सुमतिभाजां मोदिका भूमिकेयम् ॥६॥

यह भूमिका अन्धकार में जानेवाले मनुष्यों के लिए प्रकाश देनेवाली कर-दीपिका, नरक में जानेवाले मनुष्यों के लिए हटानेवाली परिखा, कुमति के पीछे जानेवाले जनों को पछाड़ने वाली तलवार की धार, सुमति के पीछे चलनेवाले भद्र पुरुषों के लिए आनन्द देनेवाली है ॥ ९ ॥

अपगततिमिराणां पण्डितानां मुखश्री-
विंधिविहितमतीनां सज्जनानां कुलश्रीः ।
नवनवयुवकानां बोधनार्था दिनश्री-
रियमियमनुग्राह्या सर्वदा भारतश्रीः ॥१०॥

यह भूमिका निर्मल चित्तवालों के लिए मुख की शोभा, वैदिक-धर्मवालों के लिए कुल की शोभा और अविद्या-रात्रि में सोये हुए लोगों के लिए दिन की श्री है। यह भारत वर्ष के समस्त पुरुषों के ग्रहण करने योग्य है ॥ १० ॥

किमिदमपि मयैवाभाष्यमस्यान्न कश्चि-
न्निगमविषयभिन्नो वर्णितः सर्वथैव ।
विलसनपटुविद्वन्मानसोद्यत्प्रकाशे
सकलमपि निसर्गाद्दृश्यते बुध्यते च ॥११॥

यह भी क्या मुझे ही कहना पड़ेगा कि इस में वेद-विरुद्ध कोई विषय ऋषि ने नहीं लिखा ? यह तो बुद्धिमानों के अंतःकरण में स्वयं प्रतीत हो सकता है, कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है ॥११॥

परमिदमपि लोके दृश्यते दीपकानां
भवति किल तमिस्रं मूलदेशे निसर्गात् ।
परहितकरणार्थे दत्तचित्ता महेच्छा
नहि निजविधुराणि ह्यालयन्तीति हेतोः ॥१२॥

परन्तु दीपक के नीचे अँधेरा, यह दृष्टान्त लोक में प्रसिद्ध है। इस का कारण यह है कि परोपकार में दत्तचित्त पुरुष अपने दोषों को चन्द्रमा के समान नहीं देखा करते ॥१२॥

इति मनसि विचार्य प्रायशो वच्मि काँश्चि-
न्निखिलजनसमृद्ध्यैतद्गतान् रत्नभेदान् ।

नियमितमनसा यान्वीक्ष्य सिद्धाञ्जनाभा-
नधिगतपरमार्थाः सर्वलोका भवेयुः ॥१३॥

ऐसा विचार कर समस्त पुरुषों के लाभार्थ उस के कुछ विषय प्रकाशित करता हूँ जिससे समस्त जन उन को देख कर अपने जन्म की सफलता अनायास प्राप्त करें ॥१३॥

निगमविधिविचारः पूर्वमेवास्ति तस्यां
परतरमथ यानाद्यङ्गनिर्माणमार्गः ।
जलगमनसमीक्षा विद्युदाकर्षणान्ता
गणितविधिरथान्ते वेदभाष्यप्रकारः ॥१४॥

उसमें पहले ही वेदोत्पत्ति विषय है, फिर शिल्प-विद्या का विषय है, तदनन्तर जलयान, बिजली का खींचना, गणित आदि करना और अन्त में वेद-भाष्य करने का प्रकार है ॥ १४ ॥

तदपरमिह लोके वस्तुजातं न मन्ये
यदतिमधुरवाचा वर्णितं नात्र हर्षात् ।
इति मनसि विचिन्त्यालोक्यतां भूमिकेयं
परतरमिह किं किं वर्णयाम्यल्पसिद्धिः ॥१५॥

संसार में वह कौन पदार्थ है जो ऋषि ने इसमें न बतलाया हो ? यह जानकर इस ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को समस्त जन देखें ॥ १५ ॥

इति परमदयालोरीश्वरस्य प्रभावै-
रवसितिमथ नीत्वा भूमिकां शीघ्रमेव ।
परमकरुणचेताः सत्यमार्गप्रकाशं
रचयितुमवतस्थे श्रीदयानन्ददेवः ॥१६॥

इस प्रकार ईश्वर की कृपा से भूमिका को शीघ्रही पूर्ण कर स्वामीजी फिर " सत्यार्थप्रकाश " के बनाने में प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

विरचितमिव यस्मिन्वेदसिद्धान्तसारं
सकलविषयभूतं सूत्रवत्कोविदेन ।
विलसति विबुधानां मानसेष्वद्य मन्ये
मुनिजनहृदयान्तर्धामयद्वद्वरेण्यम् ॥१७॥

जिसमें महर्षि रचित सूत्ररूप से धरा हुआ सकलार्थप्रद वेदों का सार आज पण्डितों के चित्त में इस प्रकार वर्तमान है कि जिस प्रकार मुनीश्वरों के चित्त में परमेश्वर का रूप वर्त रहा हो ॥ १७ ॥

कथमलमतिमानं यापयेयन्तमेतं
लघु लघुनिजबुद्ध्या यत्र योगेश्वरेण ।
भुवनमितविभागैः पूर्वपश्चार्धरीत्या
प्रतिभुवनमनन्तो दर्शितो वेदमार्गः ॥१८॥

मैं अपनी मन्दबुद्धि से उस ग्रन्थ की किस प्रकार प्रशंसा कर सकता हूँ कि जिसमें ऋषि ने पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के चौदह समुल्लास बनाकर चौदह भुवनों में वेद-मार्ग प्रकाशित कर दिया ॥ १८ ॥

निगमकुसुमजातात्सारभागांशवेत्ता
मधुपइव महर्षिः प्रायशो वेदवृत्तम् ।
कठिनमखिलशाखं यत्नतो व्याप्नुवानः
कथमपि मधुकल्पं ग्रन्थमेनं चकार ॥१९॥

भ्रमर के समान सार लेने वाले ऋषि ने ग्यारह सौ सत्ताईस शाखावाले वेद-वृक्ष को अत्यन्त परिश्रम से सर्वतः व्याप्त कर मन्त्र-रूपी पुष्पों से सार लेकर यह मधुरूपी ग्रन्थ बनाया ॥ १९ ॥

ऋषिमुनिकृतवाचां हंसतुल्यः स योगी
जलमयबहुभागं दूरमुत्सार्य हर्षात् ।
कथमपि निजबुद्ध्या सङ्गमादुद्धरन्सन्
पयइव मधुधारं पाययामास देवान् ॥२०॥

उस हंसरूप महर्षि ने दुग्ध रूप ऋषियों की वाणी में मनुष्यों की वाणी-रूप मिले हुए जल को अपनी विवेक बुद्धि से अलग कर दिया। वे मीठा मीठा दूध आर्यपुरुषों को पिला गये ॥ २० ॥

अहह परतरं किं दर्शनाद्यस्य भीताः
कथमपि न सभाद्ये मानवाः स्थातुमीशाः ।
निखिलभुवनदीपे भास्करे दीप्यमाने
परिषदि बहुयत्नैरप्यलं ते दिवान्धाः ॥२१॥

जिस तरह समस्त लोक में प्रकाशमान सूर्य के प्रकाशित होने पर दिवान्ध (उल्लू) पक्षी प्रकाश में नहीं आते, इसी तरह जिस सभा में स्वामीजी का यह सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ विद्यमान रहता है वहाँ इतर धर्मावलम्बी जन ठहर भी नहीं सकते, कुछ कहने की तो बात ही अलग है ॥ २१ ॥

कतिपयदिनलब्धां गाढनिद्रां प्रमादान्
मनुजकमलसङ्घे सङ्गतामेष दीपः ।
सततविलयमार्गं प्रापयँल्लोकमध्ये
दिनमणिरिव हर्षाद्राजते देवजातः ॥२२॥

कुछ दिनों से मनुष्यों में प्रमाद द्वारा आई हुई अविद्यारूप गाढ़ रात्रि को सर्वथा हटाकर यह ग्रन्थ संसार में सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है ॥ २२ ॥

किमयमुत स किंवा तत्परो न्याय्यमार्गः
परतरमपि वेत्थं मानवानीहमानान् ।
विगलितनिजमार्गान्मार्गमध्ये नियन्तुं
ममतु मतपथेयं रत्नदीपो विभाति ॥२३॥

हमारा चलने का मार्ग यह है या वह? अथवा उससे भी कोई अन्य है इस प्रकार अपने मार्ग को भूले हुए मनुष्यों के लिए यह ग्रन्थ वैदिक मार्ग में चलाने के लिए मेरी अनुमति में तो रत्नदीप सा प्रतीत हो रहा है ॥ २३ ॥

अनुचितविषयोत्थाविद्यया मुद्रिताङ्गान्
निगमभुवनदीपज्वालयोच्चैः स्वरेण ।
निजनिजशुभकर्मण्यादरात्सन्नियोज्या-
नुकरणमिव धत्ते रात्रिपान्थस्य सैषः ॥२४॥

नाना मतरूपी अन्धकारों में सोये हुए मनुष्यों को वेदरूपी लालटैन दिखाता हुआ ऊँची आवाज़ों से जगाकर अपने कर्मों में चेतन कर यह ग्रन्थ चौकीदार के समान आज जगत् में प्रतीत हो रहा है ॥ २४ ॥

पठति किल य एनं ग्रन्थमाद्यन्तभागं
सकलमतसमूहाञ्जालबुद्ध्या विमुच्य ।
जगति स परमार्थप्रार्थनाचाटुकारः
शरणमिव समेति प्रायशो देवदेवम् ॥२५॥

जो पुरुष इस ग्रन्थ को एकबार साद्यन्त पढ़ता है वह समस्त जाल-रूपी मतों को छोड़, ईश्वर में ध्यान लगाता हुआ जगत् में ओ३म् के झण्डे के नीचे आकर ईश्वर से रक्षा पाता है ॥ २५ ॥

दिनविकसनभागे मृग्यतारागणौघो-
निजरुचिपरिवेषैर्यामिनीशेषवेषम्[1] ।
विदधदुदयभावं मानवानां मनःसु
प्रजनयति समन्तादेष सूर्यस्य सत्यम् ॥२६॥

स्वामीजी का यह सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ प्रभातसमय के समान है जिस तरह अल्पतारागणवाला प्रभात समय सूर्योदय से पहले अपने प्रकाश से रात्रि को हटा कर लोगों को सूर्योदय का समाचार सुनाता है इसी तरह यह ग्रन्थ भी अपनी शक्ति से अविद्या-रात्रि को दूर कर लोगों को, वैदिकसूर्य के उदयहोने की सूचना देता है ॥ २६ ॥

---

१ विशेषणावशाद्विशेष्यःप्रभातसमयोत्रा यते ।

विलसति किल यस्मिन्भागयुग्मेपि धर्मा-
चरणकरणवाक्यं धर्मशास्त्रोपदिष्टम् ।
इतरमतपथानां खण्डनाय प्रदिष्टं
सहृदयहृदयेन स्वामिना सज्जनेन ॥२७॥

इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इन दो बड़े बड़े भागों में महर्षि ने अन्य मतों का खण्डन तथा वैदिक धर्म का मण्डन करने के लिए वेदानुकूल धर्मशास्त्रों के वचनों का अच्छा संग्रह किया है ॥ २७ ॥

अतिमधुरिमवृत्तो ग्रन्थ एषः समेयात्
कथमपि पुरुषं तं साम्यभावेन शङ्के ।
निजलघुकरशाखासूचनैः सूर्यलोकं
शयितमनुजदृष्ट्या योजयेन्निर्दिशन्यः ॥२८॥

अत्यन्त सुन्दर विषयवाला यह सत्यार्थप्रकाश किसी प्रकार उस पुरुष के समान बन सकता है जो सोते हुए पुरुषों को एक हाथ से सूर्य की रोशनी दिखलाता हो ॥ २८ ॥

इतरकरबलेनालम्बनं दातुमग्रे-
कृतनिजकरशाखाकृष्टतद्गात्रभङ्गम् ।
विदधदखिलयत्नैर्जागृतानां नराणा-
मतिमहदुपकारे योजयेद्यः स्वदेहम् ॥२९॥

और दूसरे हाथ से उनको जगाने के लिए झटका देकर उनके उपकार में अपना शरीर भी अर्पण करता हो ॥ २९ ॥

कथमपि स समेयाद्वैद्यराजोस्य साम्यं
निजकरयुगले यो वस्तुनी द्वे विदध्यात् ।
प्रथमकरतले तद्भेषजं भेषजाना-
मितरकरतले तत्पथ्यमारोग्यमूलम् ॥३०॥

इस ग्रन्थ की बराबरी किसी अंश में वह वैद्यराज कर सकता है जो अपने दोनों हाथों में एक एक चीज़ लिये रहे। एक में रोगी के लिए औषध और दूसरे में पथ्य का कटोरा। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध और उत्तरार्थ ऐसेही समझने चाहिएँ ॥ ३० ॥

इति कृतबहुमान्ये ग्रथरत्ने यदारात्
परमपुरुषवर्यैर्गुप्तरीत्या निबद्धम् ।
तदखिलमधुनाहं विस्तराविस्तरेण
प्रकथयितुमनल्पं साहसं कर्तुमीहे ॥३१॥

इस प्रकार उस प्रशंसनीय ग्रन्थ में महर्षि ने जो विषय गुप्तरीति से वर्णन किया है उसको संक्षेप से वर्णन करने के लिए मैं अपना साहस प्रकट करता हूँ ॥ ३१ ॥

विहितमतिशयेन स्वामिनाद्ये विभागे
परमपुरुषनाम्नां वर्णनं विस्तरेण ।
यदुदितवचनानां पालने दत्तभारा-
द्वपुरपि किल तेन प्रीतिमासेन हर्षात् ॥३२॥

उस पहले समुल्लास में ऋषि ने परमेश्वर के सौ नामों का वर्णन किया है जिसके वेद रूप निर्देश के पालन में उन्होंने अपना शरीर भी अर्पण कर दिया था ॥ ३२ ॥

अतिशयरमणीया पुत्रकाणां द्वितीये
कथमिह करणीया बाल्यभावे सुरक्षा ।
निगदितमितिवृत्तं योगिराजेन दैवा-
दवसितिसमये सा शिक्षणा बालकानाम् ॥३३॥

दूसरे में बतलाया है कि जन्मकाल में बालकों की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए? उनका बर्ताव कैसा रखना चाहिए और उनकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए ॥ ३३ ॥

ऋषिमुनिरचितानां पुस्तकानामभिख्या
यमनियमसमेता ब्रह्मचर्यव्यवस्था ।
गुरुकुलगतभव्याभव्यदीक्षासमीक्षा
निखिलपठनरीतिर्बालकानां तृतीये ॥३४॥

तीसरे में ऋषि-मुनि-प्रणीत पुस्तकों के नाम तथा यम नियम समेत ब्रह्मचर्य की व्यवस्था और गुरुकुल में जाकर आचार विचार का बर्ताव करना और ब्रह्मचारियों की लिखने पढ़ने की प्रक्रिया यथायोग्य वर्णन की है ॥ ३४ ॥

परिणयविधिरस्मिन् ब्रह्मचर्यान्तभागे
निजगृहविगतानां पुत्रिकापुत्रकाणाम् ।
व्यरचि विबुधवर्यैः कर्मदीक्षासमेतो-
गृहविधिरपि पश्चाददूभुतोस्मिँश्चतुर्थे ॥३५॥

चौथे में ब्रह्मचर्य के अनन्तर गुरुकुल से घर जाने के बाद कन्याओं की तथा पुत्रों की विवाह की रीति वर्णन की है और गृहस्थाश्रम में जाकर किस प्रकार कर्मों को करना चाहिए यह बात भी स्पष्ट दिखला दी है ॥३५॥

प्रकरणवशतोस्मिन्वासरीतिः समुक्ता
गृहसुतसमुदायन्यस्तभारा वनेषु ।
विधिजनिखिलकर्मन्यासदीक्षा परस्ता-
च्छतगणितविभागैर्देहिनां पंचमेपि ॥३६॥

पाँचवें में प्रकरणवश अपने पुत्रों के ऊपर घर का भार छोड़ वन में जा वानप्रस्थाश्रम का पालन तथा अपनी आयु का चौथा भाग, संन्यासाश्रम को धारण कर, देशोपकार में लगाने का वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

विलसति किल षष्ठे यद्विभागे नितान्तं
नयविलसनरीतिर्दण्डनीतिश्च राज्ञाम् ।

सरलविरलदुर्गादुर्गभूभागरीत्या
करनियमसमीक्षा मानवानां विचारात् ॥३७॥

छठे में राजनीति और दण्डनीति का वर्णन तथा सम विषम विभाग से पृथिवी का कर लेना और उसका भी ब्राह्मणादिकों में विवेचन करना आपने स्पष्ट बतलाया है ॥ ३७ ॥

निगमविषयरीतिः सप्तमे सम्प्रयुक्ता
प्रकृतिविकृतिभेदाभेदवैशिष्ट्यरम्या ।
गुणविभजनसङ्गासङ्गवैकल्प्यलीला-
विलसितिरिति वृत्तैरावृता लोकभाजाम् ॥३८॥

सातवें में प्रकृतिविकृतिभावशून्य, भेदाभेदवैशिष्ट्य सुन्दर वैदिक विषय की रीति तथा सांसारिक पदार्थों के वर्णन से पूर्ण गुण-विभाग से शून्य वेदप्रतिपाद्य ईश्वरोपासना का विषय भी पूर्ण रूप से वर्णन किया है ॥ ३८ ॥

किमपरमतिसूक्ष्मा वेदमन्त्रैर्निबद्धा
जगदुदयविनाशस्थापना चाष्टमेपि ।
कलितसकलशक्तेरीश्वरस्यानुमत्या
जगदुपकरणं यत्सर्वमेवास्ति बद्धम् ॥३९॥

आठवें में अत्यन्त सूक्ष्म संसार का उत्पत्ति-स्थिति-विनाश-क्रम, यथा-योग्य वैदिक मन्त्रों से स्पष्ट कर दिया और परमेश्वर के इच्छानुकूल जो जो सांसारिक व्यवहार हैं उन सबका भी वर्णन कर दिया है ॥ ३९ ॥

उपनिषदुपगम्या बन्धमोक्षव्यवस्था
विलसति नवमेपि प्रायशो न्यस्तवेशा ।
अनुभवति यदन्ते विद्ययाविद्ययाथ
प्रलयविलयभावं विश्वलोकः सुखेन ॥४०॥

नववें में बहुत करके उपनिषदों द्वारा जानने योग्य बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था वर्णित की है कि जिसके अन्त में यह मनुष्य एक प्रलयरूप में आकर आनन्द में मग्न रहा करता है ॥ ४० ॥

असमयमृतिहेतुः कोस्ति लोके नराणां
भवति कथमनल्पं दुःखदारिद्र्यजातम् ।
इति सकलसमीक्षा विस्तरेण प्रदिष्टा
महितदशमखण्डे योगिराजेन नूनम् ॥४१॥

दशम में महर्षिजी ने, संसार में मनुष्यों की मृत्यु का कारण क्या है और क्योंकर बहुत प्रकार के दारिद्र्य आदि प्रतीत होते हैं इस बात की समीक्षा विस्तारपूर्वक की है ॥ ४१ ॥

अखिलमतसमीक्षा मूर्तिपूजानिरीक्षा
जनकगुरुपरीक्षा देवतीर्थप्रतीक्षा ।
तिलकविकृतियुक्तिर्नाममात्रेण मुक्ति-
र्निगमपदविभागैः खण्डितास्मिन्विभागे ॥४२॥

ग्यारहवें में वैष्णवादि मतों का तथा मूर्तिपूजा का खण्डन, सच्चे माता-पिता की भक्ति करना, देवता और तीर्थों की परीक्षा, तिलक छाप का खण्डन, एवं नाम मात्र से मुक्ति के पाने का खण्डन किया गया है ॥ ४२ ॥

अगमनिगमवाचां नास्तिकैर्या प्रणीता
जगति कुमतिपूर्णैर्बौद्धजैनादिभिः सा ।
निजमतिकृतयुक्त्या खण्डनापीह शक्त्या
विलयपरमभागं प्रापिता देवदेवैः ॥४३॥

बारहवें में जो अपनी बुद्धि के अनुसार जैन, चार्वाक आदि मतानुयायी पुरुषों ने वेदों के ऊपर हस्तक्षेप किया है उसका निवारण कर आपने उन जैनादि कें का ऐसा खण्डन किया कि जिसका लिखना अशक्य है। वह केवल ग्रन्थ के देखने से ही विदित हो सकता है ॥ ४३ ॥

कलिसमयविभागप्राप्तराज्यप्रतिष्ठै-
र्जगति बहुविभक्तं यन्मतं ताम्रवक्त्रैः ।
तदपि सकलमेव स्वामिभिर्युक्तिमन्त्रैः
कणश इव समाप्तिं नीतमस्मिन्विभागे ॥४४॥

तेरहवें में उस ईसाई मत का खण्डन किया है कि जो दूरदेश से आये हुए गौराङ्गों ने यहाँ फैलाया है। इसका खण्डन भी स्वामीजी ने बड़ी अकाट्य युक्तियों से किया है ॥ ४४ ॥

अथ यवनसमुत्थं यन्मतं लोकमध्ये
सकलमपि जनौघं नाशयिष्यन्प्रवृत्तम् ।
तदपि परमविद्वानेष नानाप्रमाणै-
स्तिलश इव विनाशं प्रापयामास देवः ॥४५॥

चौदहवें में संसार के भीतर जो मनुष्यों के नाश करनेवाला यवनों ने अपना मत फैलाया था उस की पूर्णरूप से ख़बर लेकर अंत में अपने वेदानुकूल मंतव्यों को प्रकट कर दिखला दिया ॥ ४५ ॥

इति सकलगुणानामेकपात्रं विधाय
प्रथितमतिरपूर्वं ग्रन्थरत्नं स योगी ।
गुरुजनतटलब्धज्ञानजातं स्वचित्ते
सफलमिति विचार्य प्राप हर्षस्य सीमाम् ॥४६॥

इस प्रकार संपूर्ण गुणों का एक आधारभूत, अति मनोहर ग्रंथ को पूर्ण कर, गुरुओं की सेवा से मिली हुई अपनीविद्या को सफल मान आनन्द की परम सीमा को प्राप्त हो गये ॥ ४६ ॥

प्रशमितबहुभारः प्रत्तदस्युप्रहारः
प्रकटितबहुसारो धीमतां चाटुकारः ।
अधरितमतभारः प्राप्तविद्याब्धिपारः
सकलनिगमचारः सर्वविद्यावतारः ॥४७॥

भार को शान्त करने वाले, दस्युओं पर प्रहार करने वाले, सार बातों के प्रकाशक, सदा स्वतन्त्र रहनेवाले, विद्यासागर के पार पहुँचने-वाले, समस्त वेदों के जाननेवाले और समस्त विद्याओं के अवतार (स्वामीजी महाराज) ॥ ४७ ॥

पुनरपि मधुगीर्भिर्वेदभाष्यं चिकीर्षुः
करुणरसपदाङ्गैर्वेदमन्त्रैः परेशम् ।
अजमजरमनन्तं निर्विकारं दयालुं
प्रमुदितमनसाक्तः प्रार्थयामास देवः ॥४८॥

वेदभाष्य निर्माण करने की इच्छा से करुणरस-पूर्ण वेदमन्त्रों से परेश, अजन्मा, अजर, अनन्त, निर्विकार, दयालु परमात्मा की स्तुति करने लगे कि—॥ ४८ ॥

जय जय जय विष्णो ! देहि मे शक्तिमुग्रां
निरवयव ! विधाने वेदभाष्यस्य पूर्णाम् ।
कुरु कुरु कुरु बुद्धिं सर्वथा निर्मलाभा-
मिति बहु परमात्मध्यानमादौ चकार ॥४९॥

हे विष्णो, आपका जय हो, जय हो, जय हो । मुझको वेदभाष्य निर्माण करने के लिए शक्ति प्रदान कीजिए । मेरी बुद्धि को निर्मल बनाइए । इस प्रकार स्वामीजी ने पहले परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना की ॥ ४९ ॥

अथ कथमपि चित्ते चिन्तयन्निर्विकारं
स किल यजुपदानामातनोद्भाष्यमुग्रम् ।
पृथगिव विलसन्तो यत्र सर्वेपि मन्त्राः
स्वरऋषिविनियोगालङ्कृतिव्याप्ततन्त्राः ॥५०॥

तदनन्तर निर्विकार परमात्मा का ध्यान करते हुए स्वामीजी महाराज ने यजुर्वेद का भाष्य करना आरम्भ कर दिया। एक एक मन्त्र का अलग अलग भाष्य किया और साथही स्वर, ऋषि, विनियोग और अलङ्कारों का भी वर्णन कर दिया ॥ ५० ॥

---

१ प्रतिभान्तीति वाक्यशेषः ।

यदपि बहुभिरस्मिन्वेदभागे मनुष्यै-
र्व्यरचि विवृतिरल्पा सा न भव्या कथञ्चित् ।
निजनिजमतलेशावेषतो दूषितान्ता
कृतिरपि किल तेषां वर्तते तासु यस्मात् ॥५१॥

यद्यपि इस वेद की महीधर, सायण आदि पुरुषों ने थोड़ी थोड़ी वृत्ति बनाई है, परन्तु वह सर्वथा देखने योग्य नहीं, क्योंकि उनमें महीधरादि पण्डितों ने अपने अपने मत के अनुकूल बहुत सी बातें वेदों के विपरीत भी लिख दी हैं ॥ ५१ ॥

अनुकरणवशाद्ये कुर्वते भाष्यलेखं
कुकृतिपटुमनीषास्तस्करास्ते जगत्याम् ।
न सुखमनुभवन्ति प्रायशः कीर्त्तिजातं
परवसुहरणानामेष मार्गः प्रशस्तः ॥५२॥

जो पुरुष दूसरे पुस्तक से कुछ बात चुराकर अपना नाम करने के लिए नया पुस्तक बनाते हैं वे चोर कहाते हैं। उनकी कीर्ति कदापि नहीं होती क्योंकि संसार में चोरों की तो निन्दा ही प्रसिद्ध है ॥ ५२ ॥

ऋषिमुनिरचितानामत्र तत्तत्पदेषु
प्रकरणवशतः सा राजते सूत्रभक्तिः ।
न नयति बहुदूरं या पदार्थं निसर्गा-
द्बुधजनकृतभाष्ये सारमेतन्निविष्टम् ॥५३॥

ऋषि मुनियों के बनाये हुए भाष्यों में प्रकरणवश उन उन स्थलों में पाणिनि आदि मुनियों के बनाये सूत्रों की वह मर्यादा शोभायमान हो रही है जो स्वभाव से ही पदों के अर्थों को दूर नहीं जाने देती। यही एक बात पण्डितों के भाष्य में अद्वितीय होती है ॥ ५३ ॥

अखिलकरणयुक्तं भाष्यमेतन्महात्मा
व्यरचयदतिभक्त्या यत्र दोषावकाशः ।

प्रभवति न कथञ्चिद्वीक्षिते धीरमत्या
पदविभजनमस्मिन्कारणं मूलभूतम् ॥५४॥

महर्षि ने इस भाष्यको अत्यन्त प्रयत्न से समस्त साधनों समेत ऐसा अच्छा बनाया है कि जिसके देखने से ही हृदय के सब संशय दूर हो जाते हैं। कारण यह कि इसमें पदों का विभाग बहुत ही अच्छा किया गया है ॥ ५४ ॥

अधिगतगुरुपादप्रह्ववविद्यो मनुष्यः
सकलमपि सुखेनालोकयेद् भाष्यमेतत् ।
परमितरविलासानन्दसन्दोहभाजां
न हृदि कथमपीदं यास्यति स्थानमुग्रम् ॥५५॥

वही पुरुष इस भाष्य को अनायास देख सकेगा जिसने गुरु के चरणार-विंदों की उपासना कर सांगोपांग विद्या पढ़ी हो। दो चार संस्कृत-पुस्तकों को पढ़कर पण्डित बना हुआ पुरुष पढ़ना तो क्या देख भी नहीं सकता ॥५५॥

निरवयवसमुत्थो ज्ञानरूपः स वेदो-
जगति विभजनात्प्रागेकरूपोवतस्थे ।
विधिनियमविभागात्तस्य चत्वारि मन्ये
कथमपि शकलानि प्रस्फुरन्तीह सम्यक् ॥५६॥

निराकार ईश्वर का ज्ञानरूप वेद सृष्टि से पहले वेद के नाम से ही प्रसिद्ध था, परन्तु सृष्टि के अनन्तर कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान इन चार विषयों में प्रवृत्त होकर चार नामों से प्रसिद्ध होगया ॥ ५६ ॥

विलसति ऋगभिख्ये वेदमध्ये समस्ता
सकलगुणगणानां विस्तृतिर्लोकभाजाम् ।
विमलकरणभाजां दर्शनादेव यस्याः
प्रभवति हृदि मन्ये देवदेवेनुरागः ॥५७॥

पहले ऋग्वेद में सम्पूर्ण सांसारिक गुणों का विस्तार पूर्णरूप से प्रतीत होता है जिस विस्तार के अवलोकन से शुद्धांतःकरण पुरुषों की परमात्मा में प्रीति उत्पन्न हो जाती है ॥ ५७ ॥

कथमिह करणीयं वैदिकं कर्म लोकैः
प्रभवति च किमस्माद्यज्ञभागात्फलं तत् ।
भवति विधिविधानं कुत्र कैः कैरुपायै-
रिति यजुषि समस्तं दृश्यते कार्यजातम् ॥५८॥

इस संसार में किस प्रकार वैदिक कर्म करना उचित है और उससे क्या फल होता है तथा किन किन साधनों से वह सिद्ध होता है, यह सब विषय पूर्णरूप से यजुर्वेद में विद्यमान है ॥ ५८ ॥

भवति हृदि जनानां सामवेदावलोका-
न्निरवधिपदसंगज्ञानमज्ञानवैरि ।
यदनुभवनवेत्तानन्दमाप्नोति लोके
जनिमृतिगतचक्रान्मुच्यते चेतरत्र ॥५६॥

सामवेद के देखने से मनुष्यों के चित्त में अज्ञान का शत्रु ज्ञान उत्पन्न होता है, जिस ज्ञानवाला पुरुष इस लोक में आनन्दों को भोग फिर मुक्त हो सर्वथा सुख में रहा करता है ॥ ५९ ॥

लसति परमविद्याथर्वणे या न लभ्या
क्वचिदपि बुधवर्यैः संशयच्छेदरूपा ।
प्रसरति शतधारं तद्वरेण्यं स्वचित्ते
नयनकमलपात्री सादरं धारयेच्चेत् ॥६०॥

अथर्व वेद में वह प्रशस्त पदार्थ-विद्या विद्यमान है जो और कहीं भी दृष्टि-गोचर नहीं होती और जिसके विचारने से अनन्त प्रकाशमय परमात्मा का स्वरूप हृदय में स्वयं आविर्भूत हो जाता है और अज्ञान रूपी अन्धकार स्वयं ही नष्ट हो जाता है ॥ ६० ॥

इति गुणवशतोस्मिन्वेदमार्गे प्रवृत्ते
जगति परमविज्ञः श्रीदयानन्दयोगी ।
महदुपकृतिरस्मात्संभविष्यत्यतः किं
जगति बहुगुणाढ्यं कल्पयामास भाष्यम् ॥६१॥

इस प्रकार गुणों के भेदों से प्रवृत्त हुए वेद में परम विद्वान् दयानन्दजी इसीसे बहुधा लोकोपकार जान सम्पूर्ण गुणों करके युक्त अति सुन्दरभाष्य को बनाने के लिए प्रवृत्त हुए ॥ ६१ ॥

अवसितिमथ नीत्वा वेदभाष्यं पुरस्तात्
प्रचलितमतिशीघ्रं व्यातनोत्तत्परेपि ।
ऋगिति निगमभागे पूर्ववद्योगिवर्यः
सकलकलितशक्तेरीश्वरस्य प्रभावैः ॥६२॥

सर्वशक्तिमान् ईश्वर की कृपा से स्वामीजी अति शीघ्र प्रचलित यजुर्वेद भाष्य को [१८७५] ईसवी में पूर्ण कर उसी प्रकार ऋग्वेद भाष्य को बनाने लगे जिसकी संकलना १०५८९ इतने मन्त्रों की है अर्थात् ७ मण्डल ५ अष्टक ५ अनुवाक ३ वर्ग २ मन्त्र तक महर्षिजी ने ऋग्वेद का भाष्य किया ॥ ६२ ॥

ऋगिति निगमभागं व्याददाने मुनीन्द्रे
हतविधिलसितानां निर्विशङ्कं प्रचारात् ।
अहह तदभवद्यत्कर्णशूलायमानं
विलिखितुमधुना मे लेखनी मौनमाप्ता ॥६३॥

ऋग्वेद के भाष्य बनाने के समय दैववश वे कर्णशूल के समान वृत्त होगये जिसके यहाँ पर वर्णन से लेखनी रुकती है और जिह्वा बन्द होती है वह शोक २० वीसवें सर्ग में वर्णन किया जायगा ॥ ६३ ॥

इतिकृतनिजभाष्याद्वेदरूपं समुद्रं
सुतरमनुविचार्य प्रायशः सज्जनेशः ।

तदनुगमकृतेपि प्रोन्नतं ग्रन्थमेकं
रचयितुमवतस्थे मङ्गलारम्भचित्तः ॥६४॥

इस प्रकार अपने बनाये हुए भाष्य से वेदरूप समुद्र को सुगम जानकर स्वामीजी भाष्य के देखने योग्य बोध करानेवाले एक अद्वितीय ग्रन्थ को बनाने के लिए उद्यत हुए ॥ ६४ ॥

श्रवणमननरीत्या वेदवेदाङ्गमध्ये
प्रविशति मतियुक्तो मानवो यस्य तूर्णम् ।
अतिलघुरसनोद्यच्छ्लोकपुष्पैः स्तुमस्तं
कथमिव कथयन्तु श्रीमतामेव मान्याः ॥६५॥

जिस ग्रन्थ के श्रवणमात्र से ही मनुष्य समस्त वेद-वेदांगों में प्रवीण हो जाता है उस ग्रन्थ को छोटी वाणी से किस प्रकार प्रतिष्ठा पदवो को पहुचायें, ज़रा आप ही कहिए ॥ ६५ ॥

वररुचिरसनोत्था वार्तिकाली विशाला
विरचयति नितान्तं यत्र शोभामनल्पाम् ।
मुनिपदगतदाक्षीपुत्रसूत्रानुविद्धा
स कथमखिलयोगान्न प्रकुर्यादधस्तात् ॥६६॥

जिस ग्रन्थ में ख़ासकर पाणिनि-मुनि-प्रणीत सूत्रों के अनुसार वररुचि के बनाये हुए वार्तिक अत्यन्त शोभा दे रहे हों वह समस्त कौमुद्यादि ग्रन्थों को किस प्रकार नीचा न दिखावे ॥६६॥

प्रकरणवशतोस्मिन्धातुपाठः स्वरूपै-
र्विलसति गणपाठः कोषदीक्षासमेतः ।
समसनपरिभाषासन्धिशिक्षादिभागो-
द्विगुणयति यदीयां विस्तृतिं मूलभूतः ॥६७॥

जिस ग्रन्थ में प्रकरणवश अपने अपने रूपों से युक्त धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ रक्खे गये ग्रौर जिस ग्रन्थ की शोभा को मूलभूत समास, परिभाषा, संधि, शिक्षादि प्रकरण ग्रद्वितीयता से बढ़ा रहे हैं ॥ ६७ ॥

नवकुसुममयीनामञ्जलीनां सहस्रं
परिचरणविधाने यस्य विद्वज्जनानाम् ।
पतति स यदकार्षीद् व्याकृतेर्भाष्यमुग्रं
तदपि लसति वेगादत्र विद्यावतारः ॥६८॥

जिन की ग्राराधना सहस्रों विद्वान् प्रतिदिन किया करते हैं वह पतंजलि जिस व्याकरण महाभाष्य को बना गये वह भी इस वेदांग प्रकाश में प्रकरणानुसार विद्यमान है ॥ ६८ ॥

ग्रवसितिगतभागे सोऽपि नैघण्टुकोऽर्थः
प्रसरति किल यस्मिन्यास्कदेवप्रदिष्टः ।
यदधिगमवशेन ध्वस्तशब्दान्धकारा
जगति सकलमेव प्राप्नुयुः शब्दजातम् ॥६९॥

ग्रंत में यास्काचार्य का बनाया हुग्रा निघण्टु भी इस में विशेष करके शोभायमान हो रहा है, जिस के बोध से संशयहीन विद्वान् समस्त विषयों को प्राप्त कर सकते हैं ॥ ६९ ॥

इति निखिलपदानां बोधिकां देवराजो-
निवसितिमिव कृत्वा पेटिकामादरेण ।
इतरविरचनेषु स्वागतानां प्रशस्तिं
प्रकटयितुमिवाधान्मानसे हर्षजातम् ॥७०॥

इस प्रकार समस्त ग्रर्थों के बतलानेवाली इस वेदांग प्रकाशरूपी पिटारी को ऋषि बनाकर ग्रौर ग्रन्थों के बनाने के लिए ईश्वर की प्रार्थना में दत्तचित्त हो ध्यान करने लगे ॥ ७० ॥

अथ मुनिरचितानामष्टकान्तर्गतानां
सरलविवृतिमेषः कर्तुमैच्छद्यदैव ।
अभवदतिनृशंसन् तावदेवात्र यस्मिन्
न चलति मम जिह्वा वर्णनीये किमन्यत् ॥७१॥

वेदांगप्रकाश के अनन्तर जब महर्षि पाणिनीय सूत्रों के ऊपर वृत्ति बनाना चाहते थे तब एक ऐसी दुर्घटना हुई कि जिस का वर्णन उन्नीसवें सर्ग में किया गया है ॥ ७१ ॥

अतिथिजनसपर्या देवयज्ञादिचर्या
हवनविधिनियुक्तिस्तर्पणादिप्रयुक्तिः ।
जगदिदमभिवीक्ष्याचारहीनं बुधेन
व्यरचि निजनिबन्धे सर्वलोकेक्षणाय ॥७२॥

फिर इस जगत् को आचार-विचारों से शून्य देख कर समस्त भारतवर्ष के उपकार के लिए आपने "पंचमहायज्ञविधि" पुस्तक बनाया जिस में सांगोपांग अतिथि-पूजन, देवपूजन, हवन, तर्पण, वर्णन किये गये हैं ॥ ७२ ॥

इति जगदुदितानां नित्यशिक्षाविधीनां
कलनमनुविधाय प्रत्नैमित्तिकानाम् ।
विषयमपि जगत्यामादरेण प्रवृत्तं
व्यकथयदयमाराद्रक्षितुं ग्रन्थमेकम् ॥७३॥

पूर्वोक्त रीति से महर्षि संसार के हित के लिए नित्य नैमित्तिक क्रियाओं से युक्त भारत वर्ष को सुमार्ग में चलाने के लिए "संस्कारविधि" नामक एक ग्रन्थ बनाने लगे ॥ ७३ ॥

अभिहितमिव यस्मिँल्लभ्यते कार्यजातं
सकलमपि सुधीभिः केनचित्कोविदेन ।
भवनगतधरित्रीन्यस्ततातादिभाण्ड-
प्रगतधनमिवालं कास्य पश्चात्प्रशस्तिः ॥७४॥

जिस में पहलेही से किसी पण्डित का धरा हुआ सा समस्त विषय विद्वानों को ऐसा मिल जाता है जैसे पूर्व पुरुषों का रक्खा हुआ द्रव्य-पूर्ण कलश घर में मिल जाता है। इस से अधिक और क्या प्रशंसा करें ॥ ७४ ॥

ऋतुसमयविधानान्नूनमारभ्य मन्ये
सकलमपि यथावद्धस्मयावत्प्रदिष्टम् ।
परमविषयविज्ञैर्यत्र योगीन्द्रवर्यैः
किमपरमिह वाच्यं नास्ति साम्येस्य बन्धः ॥७५॥

जिस में महर्षिजी ने गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि संस्कार पर्यन्त समस्त वेदोक्त संस्कार पूर्णरूप से वर्णन किये हैं। और कोई ग्रन्थ इस की समता नहीं कर सकता ॥ ७५ ॥

सदृशमिव तदेतन्नामधेयस्य मन्ये
यदतिकरुणभावान्निर्मितं ग्रन्थरत्नम् ।
विलसति किल यस्मिन्वेदमन्त्रप्रमाणैः
सकलजनुभृतामारक्षणं किं परस्तात् ॥७६॥

यह तो एक महर्षिजी की करुणा ही थी जो "गोकरुणानिधि" नामक एक ग्रन्थ उन्होंने बनाया जिसमें कि स्पष्ट रीति से वेदों के मन्त्रों से अहिंसा को ही पूर्ण रूप से दर्शाया है ॥ ७६ ॥

विधिविहितमहिंसावाक्यमेकत्र कृत्वा
पशुबलिजनितन्तन्मारणं नेति नेति ।
प्रतिदिशति मुनौ यल्लोकमध्ये समन्ता-
दभवदिति समस्तं तस्य मन्ये चरित्रम् ॥७७॥

इस ग्रन्थ में आपने समस्त वेदों के मन्त्रों को इकट्ठा कर जो मांसभक्षी हिंसकों ने यज्ञादि कर्मों में गोहिंसा का विधान बतलाया था उसका ऐसा खण्डन किया कि जिसका प्रभाव भारतवर्ष में पूर्णरूप से दृष्टि-गोचर हो रहा है ॥ ७७ ॥

मिलति किल न हिंसा वेदमन्त्रेषु लोके
पुनरपि गतधीभिः कार्यते या मनुष्यैः ।

निजवचननिवेशाद्धर्मशास्त्रादिमध्ये
कथमपि तत एषा लोकमध्ये न शस्ता ॥७८॥

वेदों में कहीं हिंसा का विधान नहीं है और जो मन्वादि धर्मशास्त्रों में पाया जाता है वह केवल दूसरे लोगों ने अपनी इच्छा से उसमें मिला दिया है और इसी लिए वह ठीक नहीं है ॥ ७८ ॥

प्रदिशति यदि हिंसां वेद एवाश्वमेधे
कथयति कथमेतां वारणावाक्यदीक्षाम् ।
शतपथविनिविष्टामध्वरेतिप्रशस्तिं
तदनुमतमिदं मे नास्ति वेदेषु घातः ॥७९॥

जो वेद ही हिंसा का विधान करता तो वेद में ही हिंसा का निषेध क्यों पाया जाता और ब्राह्मणों में यज्ञ का नाम क्यों अध्वर होता? इसलिए मालूम होता है कि वेदों में हिंसा का विधान नहीं है ॥ ७९ ॥

इति बहुविधवादावेष्टितं ग्रन्थमेकं
सपदि विरचयित्वा योगिराजः प्रसन्नः ।
निगदितुमिथ चक्रे रत्नमास्तां मनः स्वं
गत इव परमात्मध्यानमार्गं निसर्गात् ॥८०॥

इस प्रकार शंकासमाधानपूर्वक इस पुस्तक को बनाकर "आर्योद्देश्य-रत्नमाला" बनाने के लिए जब तक आप उद्यत हुए तभी तक योगाभ्यास का समय आगया; सूर्य भी चलते चलते देशांतर को प्राप्त हो गया ॥ ८० ॥

शतमितनवरत्नैर्गुम्फितामुज्ज्वलाङ्गीं
स्रजमिव गलदेशं प्रापयिष्यत्यलं यः ।
स सलिलनिधिकाञ्चीभूषितायां धरित्र्यां
निजसुरभिविलासं यापयिष्यत्यवश्यम् ॥८१॥

जो पुरुष सौ रत्नों से गुंफित इस "आर्योद्देश्यरत्नमाला" को माला के समान कण्ठ में धारण करेगा वह इस जगत् में अवश्य ही अपनी कीर्ति फैलावेगा ॥ ८१ ॥

जननमरणविद्याप्रार्थनातीर्थनिन्दा-
नरकविलयधर्म्माधर्मसत्सङ्गजीवैः ।
सगुणविगुणसत्यासत्यवर्णादिरत्नै-
रियमतिललिताङ्गी निर्मिता देवदेवैः ॥८२॥

जन्म, मरण आदि सौ रत्न इसमें देखने योग्य हैं जो कि मेरे बनाये हुए [आर्य-शिरोभूषण काव्य में] स्पष्ट वर्णित हैं ॥ ८२ ॥

क्रमगतमथ काशीविभ्रमोच्छेदनाख्यं
पटुतरमतिराराद्पुस्तकं तच्चकार ।
भवति हृदि नितान्तं यत्र दृष्टे जनानां
बहुकथनपथैः किं सत्यमेव प्रभावः ॥८३॥

आर्योद्देश्यरत्नमाला के अनन्तर आपने काशी के विद्वानों का सन्देह दूर करने के लिए एक "भ्रमोच्छेदन" नामक पुस्तक बनाया, जिसके देखने से स्वयं ही हृदय में प्रभाव उत्पन्न होता है ॥ ८३ ॥

शतनयनदिगन्ते यास्ति तोयाब्धितीरे
बहुधनकलिकाता तत्र योगेश्वरोयम् ।
विविधविबुधबुद्धिभ्रान्तिविध्वंसनाढ्यं
ललितपदनिबन्धं व्यातनोद् ग्रन्थमेकम् ॥८४॥

पूर्व की तरफ़ समुद्र के किनारे जो कलकत्ता राजधानी है वहाँ के विद्वानों का सन्देह दूर करने के लिए आपने एक "भ्रांतिनिवारण" नामक पुस्तक बनाया ॥ ८४ ॥

कथमिह परमात्मप्रार्थनोपासनाद्याः
समयविनिमयेपि प्रायशः कर्तुमर्हाः ।
इति सकलसमीक्षा यत्र मन्ये निबद्धा
तमभिविनयमार्याः सादरं वीक्षयन्तु ॥८५॥

१ गमेरत्र प्रापणार्थकत्वम्

इस संसार में मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना किस प्रकार करनी चाहिए; इसी उद्देश्य को लेकर आपने एक "आर्याभिविनय" नामक पुस्तक बनाया ॥ ८५ ॥

जगति विबुधवाणी दर्शनाद्यस्य नूनं
विलसति शिशुकण्ठे कण्ठभूषेव साक्षात् ॥
स किल नवजनानां बोधनाय प्रबोधः
प्ररचितइतिलोका ज्ञातवृत्ता भवन्तु ॥८६॥

जिसके दर्शन मात्र से बालकों के कण्ठ में संस्कृत-विद्या निवास करती है ऐसा "संस्कृत-वाक्य-प्रबोध" नामक पुस्तक बनाया ॥ ८६ ॥

व्यवहरणपराणां मानवानां कथं स्या-
ज्जगति बहुपदार्थज्ञानमित्याकलय्य ।
बहुविधबुधवाणीपात्रमेषः प्रचक्रे
व्यवहृतिपदपूर्वं भानुमेकं नवीनम् ॥८७॥

व्यवहारों में मग्न मनुष्यों के लिए पदार्थ ज्ञान किस प्रकार हो, यही सोचकर महर्षिजी ने "व्यवहारभानु" नामक एक ग्रन्थ बनाया ॥ ८७ ॥

जगति मतपथानां वेदमार्गेतराणां
समुपचितिमनल्पां वीक्ष्य नानाजनेषु ।
प्रबलतरसमाधिध्वस्तमूढ़ोक्तशङ्कः
समरचयदनन्तं खण्डनं योगिवर्यः ॥८८॥

मनुष्यों में फैली हुई वेदबाह्य प्रवृत्ति को देखकर उसके खण्डन में आपने "वेद-विरुद्ध-मत-खण्डन" नामक एक अद्वितीय पुस्तक बनाया ॥८८॥

मतमथ विधिशून्यं स्वामिनारायणानां
प्रचलितमतिवेगाद् गुर्जरोद्भूतलोके ।
विलयमलमनैषीदेषदेवः प्रमाणै-
र्यदनुगतमिहास्ते पुस्तकं विश्वमध्ये ॥८९॥

आज कल गुजरात देश में जो वेद-विरुद्ध स्वामिनारायणमत फैल रहा है उसके खण्डन में भी स्वामीजी ने एक पुस्तक बनाया कि जिसका नाम "स्वामिनारायणमतखण्डन" है ॥ ८९ ॥

प्रकृतिविकृतिशून्यैर्ब्रह्मजीवैक्यवादै-
र्जगति किल यदुक्तं शुद्धमद्वैतमेव ।
तदपि कणश एवामेलयद्ध् धूलिमध्ये
प्रखरतरविचारैर्नाशितध्वान्तवादः ॥९०॥

यहाँ शुद्धाद्वैत-वादियों ने जो अपना मत चला रक्खा है उसके खण्डन में भी आपने एक पुस्तक बनाया कि जिसका नाम "वेदान्ति-ध्वान्त-निवारण" रक्खा ॥ ९० ॥

इतरदिति महात्मा ग्रन्थजातं वितन्वन्
सकलभुवनमध्ये सूर्यवत्सन्दिदीपे ।
निजवचनमयूखध्वस्तलोकान्धकारः
प्रशमितमतवादः श्रीदयानन्ददेवः ॥९१॥

इसी प्रकार आप और भी "सत्य-धर्म-प्रचार" आदि तीन पुस्तकों को बनाकर इस जगत् में सूर्य के समान प्रकाशित हुए। और आपने अपने वचनरूपी किरणों से अज्ञानान्धकार को दूर करके मतवाद को शान्त कर दिया ॥ ९१ ॥

अवसितिमथ नीत्वा पुस्तकानामयत्ना-
द्वसनवितरणाद्यैर्लेखकान्मोदयित्वा ।
गुरुचरणसरोजद्वन्द्वमाधाय चित्ते
मुदमलभत लोकालोकगीतप्रशस्तिः ॥९२॥

इस प्रकार थोड़ेही परिश्रम से समस्त ग्रन्थों को पूर्ण कर तथा लेखकों को वस्त्र धन दे गुरु-चरण-कमलों का ध्यान करके आप बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९२ ॥

निखिलमतविवादध्वान्तविध्वंसकारी
क्व मनुजवपुरेषः श्रीदयानन्ददेवः ।
क्व च निगमपदानां भाष्यनिर्माणमेतत्
सकलमिदमवर्ण्यं सच्चिदानन्दकृत्यम् ॥९३॥

कहाँ सम्पूर्ण मतों के नाश करनेवाले मनुष्य-शरीर-धारी ऋषि और कहाँ वेदों का भाष्य बनाना ! यह सब लीला समस्त जगदाधार ईश्वर की प्रतीत होती है ॥ ९३ ॥

प्रभवति परमात्मा यस्य मन्ये सहायः
सकलमपि स लोके साधयत्येव कार्यम् ।
इति लघु न मनस्यायाति चेत्तर्हि नूनं
निरवसितसहायो दृश्यतां देव एकः ॥९४॥

संसार में जिस पुरुष का ईश्वर सहायक होता है वह समस्त कार्यों को अनायासही समाप्त करता है। इसमें यदि विश्वास न हो तो महर्षि को ही देखिए ॥ ९४ ॥

जगति विदितमेतत्पूर्तिमाप्ते विचारे
विरमति किल लोकः सर्वएव प्रयासात् ।
परमिदमिह नैवालोक्यते योगिवर्यः
पुनरपि समभूद्यद्दिग्जये दत्तचित्तः ॥९५॥

संसार में प्रसिद्ध है कि मनुष्य कार्यों के अन्त में कुछ विश्राम लिया करते हैं, परन्तु महर्षिजी में यह बात देखने में नहीं आती; क्योंकि अभी तो ग्रन्थों को समाप्त किया और अभी दिग्विजय में फिर प्रवृत्त होगये ॥ ९५ ॥

क्षणमपि नहि नेयः शून्यभावेन लोकै-
रनुपमगतिचक्रः कालकल्पोपि यत्नात् ।
इति विदधति ये ये मानसे निश्चयं ते
कथमपि न भजन्ते दुःखदारिद्र्यजातम् ॥९६॥

संसार में आकर क्षण भर भी यह अमूल्य समय व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए । जो लोग ऐसा मानते हैं वे कदापि दुःख नहीं उठाते ॥ ९६ ॥

श्रयति फलमवश्यं मानवो विश्वमध्ये
निजविहितगतीनां कर्मणामप्रयत्नात् ।
इति मनसि विचिन्त्य प्रायशः कार्यजातं
विधिगदितमवश्यं कार्यमेवेति सिद्धम् ॥९७॥

जगत् में अपने किये हुए कर्मों का मनुष्य अवश्य ही फल भोगा करता है, इसलिए मनुष्यों के उचित है कि वेद-विहित कर्मों का ही पूर्ण रूप से आश्रयण करे ॥ ९७ ॥

न भवति किल चित्ते सज्जनानां विचारो-
यदि भवति स हर्षात्पूर्तिमाप्नोति तूर्णम् ।
इति निगदति चित्ते स्वामिना दिग्जये सा
पुनरपि मतिराराात्संप्रदत्तेति बोध्यम् ॥९८॥

पहले तो सज्जनों के मन में कोई विचार ही उत्पन्न नहीं होता; और यदि होता भी है तो शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है । मन में यही सोच कर महर्षि ने अपनी चित्त-वृत्ति फिर भी दिग्विजय में लगाई ॥ ९८ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये ग्रन्थनिर्माणवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ।

नवमः सर्गः

अथेश्वरासादितजीवनोद्यमो-
महीश्वराभः स दयासरित्पतिः ।
विभिन्नदेशेषु वसन्नकल्पयत्
महोदयं वैदिकधर्मशासनम् ॥१॥

अब ग्रन्थनिर्माण के अनन्तर उनके यश का वर्णन नाटकरूप से करने के लिए नवम सर्ग प्रारंभ करते हैं । ईश्वर की प्रार्थना करनेवाले करुणा-सागर महर्षि दयानन्द राजा के समान नाना देशों में निवास करते हुए वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे ॥ १ ॥

जयोत्सवे सर्वदिशां समन्ततः
समुत्थिता दिग्विजयप्रशस्तिका ।
पुरः पुरो लास्यपटीयसी ययौ
गुणानुरागिण्यनुरागवर्धना ॥२॥

सम्पूर्ण दिशाओं के जयोत्सव से उठी हुई समस्त प्रयोगों में कुशल गुणानुरागवाली प्रशस्तिकारूप नटी आपके आगे आगे चलने लगी ॥ २ ॥

दिशं समुद्दिश्य स यां स्वमानसे
विचारमारादकरोत्पुरो गता ।
विहायसा तामनुगम्य तद्गता
यशोविभूतिर्विभराम्बभूव ताम् ॥३॥

महर्षि जी अपने मन में जिस दिशा को जाने के लिए तैयारी करते थे उसी दिशा में वह आकाश-मार्ग से जा पहले ही से उसको अपने वश में कर लेती थी, वहाँ पहुँच जाती थी ॥ ३ ॥

चतुर्दिशामन्तरमेकचत्वरं
प्रकल्प्य तन्नायकनाटकोत्सवम् ।
प्रकर्तुकामा जनरञ्जनक्रमं
तथाकरोदाप यथा कृतार्थताम् ॥४॥

चारों दिशाओं के मध्यभाग को एक चत्वर समझकर श्रीदयानन्द-विजय नाटक करनेवाली वह कीर्तिरूपिणी नटी मनुष्यों के चित्तों को ऐसे अपने वश में करती थी कि वह बहुत ही शीघ्र कृतार्थता को प्राप्त होगई ॥ ४ ॥

समाहृतान्तःकरणा समन्ततः
समानमेवं प्रविधाय साधनम् ।
समानमानेषु मनाङ्मनस्विनी
मनोविनोदाय मनः समादधत् ॥५॥

समस्त मनुष्यों के चित्तों को अपने वश में करके वह कीर्ति-नटी उनके चित्त को बहलाने के लिए अपने मन में कुछ ऐसा उपाय सोचने लगी जिसका वर्णन आगे होगा ॥ ५ ॥

वितानमाकाशमयं सतारकं
भुवस्तलं सत्वरमाप्य मण्डपम् ।
न सम्ममौ हर्षवशेन नर्तकी
यदीयकीर्तिस्त्रिजगज्जयोत्सवे ॥६॥

जिनकी कीर्ति-नर्तकी तीनों लोकों के जयोत्सव में तारागणरूपी पुष्पों से अलंकृत आकाशरूपी वितान तना हुआ देख और नीचे की ओर समस्त भूमण्डल को रंगशाला समझ ख़ुशी के मारे अपने शरीर में नहीं समाती थी ॥ ६ ॥

---

१ अन्तरशब्दो मध्यार्थक अकारान्तः शब्दस्तोममहानिधौ द्रष्टव्यः ।

रवीन्दुदीपप्रभया मनोरमं
दिनक्षपाकाण्डपटोपशोभितम् ।
यदन्तरङ्गोपगृहं विलोक्यते
जगत्रयेऽद्यापि समस्तकोविदैः ॥७॥

जिस नाटक का सूर्यचन्द्ररूपी प्रदीपों द्वारा सुन्दर दिन रात्रि-रूपी दो परदों से ढका हुआ अंतरङ्ग का घर आज भी विद्वानों के मन में विस्मय को उत्पन्न कर रहा है ॥ ७ ॥

लसन्ति यत्राग्निरविप्रभञ्जनाः
करे दधाना निगमत्रयीपटान् ।
गुणत्रयीनाटकसूत्रताङ्गताः
प्रधानभृत्या इव सूचनोद्यताः ॥८॥

जिसमें सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणयुक्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद को हाथों में लिये हुए अग्नि, वायु, रवि सम्पूर्ण कार्यों को बतलाने के लिए प्रधान पात्र से प्रतीत हो रहे हैं ॥ ८ ॥

जगाम यत्राद्भुतसूत्रधारता-
मथर्वणः सर्वपदार्थविस्तरे ।
विनिर्मिता येन समस्तनाटक-
प्रयोगसंदिप्तिरशेषविभ्रमा ॥६॥

जिसने समस्त पदार्थों में अपना सत्त्व जमा रक्खा है ऐसा श्रीमान् अथर्ववेद उस नाटक में सूत्रधार बन गया। भला जिस नाटक में सूत्रधार अथर्ववेद हो, उसका वर्णन कोई कर सकता है ? ॥ ९ ॥

गतापि यस्मिन्नवनाटकोत्सवे
षडङ्गवेशादुपनायिकावली ।

विलोक्य मन्ये जनमालयं गतो
निराकृता सूत्रधरेण[1] चत्वरात् ॥१०॥

जिस नाटक में छः अङ्कों के वेशों से आई हुई उपनायिकाओं की पंक्ति बहुत से मनुष्यों को देख लज्जित हो सूत्रधार के कहने से फिर भी अपनी नाट्यशाला को ही चली गई ॥ १० ॥

विदूषकत्वं प्रगतोपि यद्गतो-
विभूषकत्वं प्रजगाम सत्वरम् ।
महर्षिसंसूचितशास्त्रविस्तरो-
यतः प्रमाणं परतोस्य भाषितम् ॥११॥

जहाँ पर महर्षियों द्वारा बनाया हुआ छः शास्त्रों का समूह नास्तिकों की युक्तियों से विदूषक पदवी को पहुँच कर भी वेदानुकूल होने से विभूषण पदवी को प्राप्त होगया ॥ ११ ॥

पुराणभावं प्रगतोपि कञ्चुकी
बभूव किं ब्राह्मणपुस्तकोच्चयः ।
इति प्रहासो नु ममापि विद्यते
नितान्तवार्धक्यवशाद्गलं मते ॥१२॥

शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों का समूह अत्यन्त प्राचीन होने से पुराण-पदवी को पहुँच कर भी अत्यन्त शिथिलता से न मालूम कंचुकी बना या न बना ! यह हँसी हमें भी आती है ॥ १२ ॥

नियामका यत्र विभान्ति मानव-
प्रदिष्टयोगा नियमा यमा अपि ।
निरीक्षकाणामनिमेषदर्शने
रुचिं दधाना बहुलास्य शोभिताः ॥१३॥

---

१ धरतीति धरः । सूत्रस्य धरः सूत्रधरः । मूलविभुजादित्वात्कः ।

जिसमें देखनेवाले पुरुषों के चित्त में अत्यन्त उत्कंठा बढ़ाने वाले, अत्यन्त सुन्दर, धर्म-शास्त्रों में कहे हुए यम और नियम नाना उपद्रव के दूर करने के लिए नियामक अर्थात् चपरासी रूप से सुशोभित हो रहे हैं ॥ १३ ॥

इति प्रशस्ते नवरङ्गमण्डपे
समागते चापि समस्तमानवे ।
प्रवक्तुकामा पदविक्रमक्रमं
पुरो दिदीपे ननु तद्यशोनटी ॥१४॥

इस प्रकार नवीन रंगशाला के बन जाने पर तथा समस्त मनुष्यों के आने के बाद कुछ कहने के लिए उद्यत हुई कीर्तिनटी रंगशाला में सुशोभित हुई ॥ १४ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्ततेत्यरं-
प्रवर्तिते मन्त्रपदे पटागमम् ।
प्रकल्पयामास समीरणस्ततो-
यजुप्रधानं प्रबभूव नाटकम् ॥१५॥

उस नाटक में पहले ही "हिरण्यगर्भः०" इस नांदी मन्त्र के पढ़ने के बाद सत्त्वगुणप्रधान परदे के बदलने पर वायु ने यजुर्वेदप्रधान नाटक प्रारंभ किया ॥ १५ ॥

क्वचिन्निराकारपरेशवर्णना
जनं समस्तं परमात्मदर्शने ।
तथा नियुक्तं प्रचकार सादरं
यथाप तस्यैव परं निदर्शनम् ॥१६॥

उसमें कहीं पर तो निराकार ईश्वर की वर्णना समस्त जनों को इस प्रकार ध्यान में लगा देती थी जिससे साक्षात् ईश्वर का स्वरूप हृदय में आविर्भाव को प्राप्त हो जाता था ॥ १६ ॥

क्वचित्सुवेदीपरिशोभितस्थले
नितान्तधूमायितसभ्यमण्डला ।
बभूव यज्ञस्य परम्परा परा
यया समस्तं जगदेव शोभितम् ॥१७॥

कहीं पर वेदि के ऊपर चारों ओर से ऐसी यज्ञ-क्रिया प्रारंभ की जिसके धूम से सारा जगत् सुगन्धित हो गया था ॥ १७ ॥

क्वचित्समाधिप्रविधानसाधिका
जनावली नाटितवत्यलं तथा ।
यथा मुनीशानिव नाट्यमण्डले
विलोकयामास महाशयोत्तमान् ॥१८॥

वह नाटक-पात्र-मण्डली कहीं पर उस तपश्चर्या का अनुकरण करने लगी जिसको देखकर समस्त मनुष्यों की मण्डली मुनीश्वरों के समान उन नाटक-पात्रों को देखकर चकित हो गई ॥ १८ ॥

अथान्तरे तत्र विदूषकायितं
प्रकुर्वती शास्त्रपरम्परा परा ।
विशोभयामास विलासचत्वरं
महाशयैरागदितेव सत्वरम् ॥१९॥

कुछ देर के बाद शास्त्रों की वह परम्परा वहाँ आकर ऐसा विदूषक का अनुकरण करके मनुष्यों को हँसाने लगी जिससे कि सब मनुष्य हँसते हँसते प्रसन्न हो आनन्द में मग्न हो गये ॥ १९ ॥

अलं हसन्ती जनता यदा पुन-
र्विलोकनेच्छामगमत्पुरोगता ।
विमुद्रिता काण्डपटी ततःपरं
बभूव ऋग्वेदसमुत्थनाटकम् ॥२०॥

बहुत देर तक हँसती हँसती वह सभ्यमण्डली जब फिर भी देखने की इच्छा प्रकट करने लगी तब पहला परदा बदल गया। कुछ देर के बाद दूसरा परदा बदलने पर ऋग्वेद का नाटक होने लगा ॥ २० ॥

प्रवर्तिते रङ्गपटानुवर्तने
विशेषपात्री परिवर्तनच्छलात् ।
जगाम नेपथ्यगृहं धृतप्रभा
पुनर्दिदीपे नवनाटकोत्थितिः ॥२१॥

दूसरे नाटक से पूर्व अपने वेष के बदलने के लिए प्रधान रूप कुछ नाटक-पात्र नेपथ्य को चले गये। वहाँ से रूप बदल कर आतेही दूसरा नाटक प्रारंभ किया ॥ २१ ॥

क्वचिद्विधानं नियमस्य कुर्वती
समस्तशक्तेः परमेश्वरस्य सा ।
जनानलं चित्रितभित्तिभावतां
निनाय या विस्मयमाप च स्वयम् ॥२२॥

वह नाटक-पात्रों की पंक्ति पहले ही ईश्वर के नियमों का अनुकरण करती हुई न केवल अन्य पुरुषों को ही प्रत्युत अपने आप भी विस्मित होकर चित्र-लिखित सी होगई ॥ २२ ॥

क्वचिदृतूनामभिगम्य वर्णना-
मनल्पसन्दर्शितविभ्रमां पुनः ।
विमुक्तसर्वास्तरणामकल्पय-
ज्जनावलीमादृतनाटकोत्सवाम् ॥२३॥

कहीं पर नाना ऋतुओं का विषय छेड़कर नाना प्रकार के अपने व्यवहारों को दर्शाती हुई वह लोगों को इस प्रकार चमत्कृत करती थी कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं ॥ २३ ॥

क्षणप्रभादर्शितनाटकोद्गमे
क्षणप्रभावा जनवर्यमण्डली ।

क्षणप्रभावां जगतः समुन्नतिं
क्षणप्रभावैरवदत्पुनःपुनः ॥२४॥

वर्षा-ऋतु-प्रधान नाटक के खेलने पर थोड़े प्रभाववाली मनुष्यों की मण्डली संसार की उत्पत्ति को क्षण-भंगुर समझकर उत्सव के नाना प्रकारों से नाटक-पात्रों को धन्यवाद देने लगी ॥ २४ ॥

समागते शान्तिपटे ततः स्वयं
सुबुद्धिसंसर्गभवे जनावली ।
सुबोधभावं प्रजगाम तादृशं
यथाखिलानन्दमवाप सत्वरम् ॥२५॥

वर्षा ऋतु के अनन्तर शरद् ऋतु के प्रस्ताव में सुबुद्धि-जन्य शांति पट के अकस्मात् आने पर वह मनुष्य-मण्डली उसी सुबोधभाव को प्राप्त होगई कि मानो अखिलानन्द को अपने आपही पहुँचने लगी ॥ २५ ॥

विहाय मृत्युं किल विद्यया यदा
समस्तपात्री विभराम्बभूव सा ।
विशोकभावं तमवेक्ष्य तद्गता
महाशयाली मुमुदे हृदन्तरे ॥२६॥

जब मृत्यु को छोड़ विद्या के द्वारा वह नाटक-पात्री अमर पदवी का दृश्य दिखलाने लगी तब समस्त विद्वन्मण्डली अति विस्मित हो उसी आनन्द में आप भी विस्मित हो गई ॥ २६ ॥

पटप्रयोगं प्रविधाय तत्परं
यदा नवीनद्युतिविभ्रमोत्सुका ।
बभूव पात्री न बभूव किं तदा
सुनेत्रपात्री मनुजेषु हर्षिता ॥२७॥

उसके बाद परदा गिरने पर वह नाटकपात्री जब नवीन वेषधारण करके रूपान्तर दिखाने लगी तब क्या मनुष्यों की नयन-पंक्ति प्रसन्न न हुई ? अवश्य हुई ॥ २७ ॥

यदाभवद्वृत्रवधोद्यमे रता
मृषैव पात्री धृतमेघविभ्रमा ।
तदा जनस्तत्र बभूव को ययौ
न वीरभावं किल यः समुद्धतः ॥२८॥

परदा गिरने के बाद मेघ का रूप धारण करनेवाली वह नाटकपात्री जब वृत्र के वध में तत्पर होरही थी तब कौन सा ऐसा पुरुष था जो वीर रस में मग्न न हुआ हो ॥ २८ ॥

विदूषकोपि स्ववचोविभूषितं
यदान्तरे सूक्तमवाचयत्स्वयम् ।
तदा ययौ हास्यमहो रसोद्गता
समस्तविद्वज्जनमण्डिता नटी ॥२९॥

जब बीच में मनुष्यों को हँसाने के लिए अपनी वाणी से विदूषक भी ऋग्वेद का सूक्त तारस्वर से पढ़ने लगा तब तो विद्वानों के बीच में बैठी हुई यशोनटी भी कुछ देर तक हँसती रही ॥ २९ ॥

विमुक्तताम्बूलदला ततः सभा
विलोक्य भावान्तरवेषधारिताम् ।
बभूव मग्ना करुणारसार्णवे
दयामयं प्रार्थितवत्यपि स्फुटम् ॥३०॥

इसी बीच में पान खाने में दत्तचित्त वह समस्त सभा दूसरे रूप में सजे हुए नाटक-पात्रों को जब देखने लगी तब तो सब काम छोड़कर करुणा रस में भरी हुई ईश्वर की प्रार्थना करने लगी ॥ ३० ॥

अथो निदेशादधिपस्य मानिनी
यशोमयी कापि नटी जनान्तरे ।

---

१ प्रेरणायां णिजन्तादददोरूपम् ।

ननर्त[१] मञ्जीरमनोहरस्वना
नवानि वेदस्य पदानि विन्यसन् ॥३१॥

इसके बाद मनोहर-वेषवाली, यशोरूपनटी नायक के अनुरोध से नवीन नवीन वेदों के पदों को गाती हुई विद्वानों के बीच में नृत्य करने लगी। अर्थात् अधिकतर यश फैल गया, यह भाव ॥ ३१ ॥

अनन्तरं सापि मनुष्यमण्डली
मुहुर्मुहुर्दर्शितभक्तिसाधना।
शुभं नटन्तीमधिपस्य नर्तकी-
मवर्धयत्सर्वश एव साहसैः ॥३२॥

कुछ देर के बाद अत्यन्त भक्ति से भरी हुई वह नाना देशगत विद्वानों की सभा, अच्छे प्रकार नटी को देखकर, नाना प्रकार से उसकी प्रशंसा करने को उद्यत हुई ॥ ३२ ॥

प्रवर्तिते रङ्गविधानविस्तरे
पटेपि नीचैः पतिते समन्ततः।
स सामवेदध्वनिरुत्तरोत्तरो-
बभूव नानालयलास्यशोभितः ॥३३॥

फिर भी नेपथ्य में रङ्ग-विधान होने पर कांडपट के खोलने के साथही नाना स्वर तालों समेत उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ सामवेद का अश्रुतपूर्व गान होने लगा ॥ ३३ ॥

अशेषतौर्यत्रिकदक्षिणे मुदा
पुरः स्थिते पात्रगणे यथा यथा।
विपश्चिदाली मुदमाप निर्भरा
तथा तथा वृद्धिमवाप साधना ॥३४॥

---

१ अस गतौ भ्वादिः।

समस्त कार्यों में चतुर नाटक-पात्रों के सामने आने पर उनके प्रयोगों से जैसे जैसे विद्वानों की सभा प्रसन्न होती थी वैसे ही वैसे समस्त नाटक-साधना दूनी वृद्धि को प्राप्त होगई ॥ ३४ ॥

स्वरे लयं पञ्चममागते बला-
द्विमूर्च्छिते चापि गुणेन मानवे ।
मुधैव मन्ये बुधलोकमण्डली
निवर्तयामास तदीयविस्तृतिम् ॥३५॥

कुछ देर के बाद पञ्चम स्वर के आनन्द आने पर वह सभ्य मण्डली जब मूर्च्छा को प्राप्त हो गई तब उस नाटकी विस्तृति को कम करने के लिए नायक ने अपनी कुछ चेष्टा प्रकट की ॥ ३५ ॥

जने कथञ्चिद्गतवाग्विकल्पने
मुदं वितन्वन्नितरां विदूषकः ।
विभूषयामास समस्तमादरा-
त्तदन्तरङ्गं बहिरङ्गमप्यलम् ॥३६॥

नाटक-क्रम के कम होने पर शान्त रस में मग्न हुई सभा को देख जब विदूषक ने हास्य रस का प्रस्ताव किया तब अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग के जितने सभ्य मनुष्य थे सबने उस हास्यरस को बढ़ाया, जिससे समस्त परिश्रम दूर होगया ॥ ३६ ॥

गुणैः प्रशस्ते नवनाटकक्रमे
निरीक्षिते केपि महाशयाऽवराः ।
यदा यथेच्छं जगदुस्तदैव सा
नियामकाली समतर्जयद्बलात् ॥३७॥

अति सुन्दर गुणाढ्य नाटक देखने के बाद जब कोई महाशय यथेच्छ सम्भाषणादि व्यवहार करने लगे तभी वह व्यवस्था के लिए नियत हुए चपरासी उनको फटकार बतलाने के लिए उद्यत होगये ॥ ३७ ॥

मुदं वितन्वन्नलमस्य नर्तकी
बुधेषु पश्चादबुधेष्वपि द्रुतम् ।
मुहुः प्रसन्नाभवदन्तरे मया
समस्तमेतत्स्ववशे नियन्त्रितम् ॥३८॥

कुछ देर के बाद वह महर्षि जी की यशोरूप नटी सामान्यता से विद्वानों तथा अविद्वानों के बीच में प्रसन्नता फैला कर अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥ ३८ ॥

प्रधानभृत्या अपि दानमानना-
तिसांत्वनाभिर्बहुधैव भूषिताः ।
पुरो निषेदुः किल नायकेक्षणे
निबद्धनेत्राः खलु वेत्रपाणयः ॥३९॥

नाटक के अन्त में प्रधान नाटक-पात्र भी दान-मानों से तुष्ट हो महर्षिजी को देखते हुए हाथों में वेद लेकर सामने खड़े हो गये । अर्थात् कुछ विशेष प्रार्थना के लिए उद्यत हुए ॥ ३९ ॥

ससूत्रधारे परमा विदूषके
बभूव या सा किल केन वर्ण्यताम् ।
समन्ततः सादरणीयकल्पना
विकल्पना चापि सरामणीयका ॥४०॥

उस अवसर में सूत्रधार और विदूषक के ऊपर जो शोभा छा रही थी उसका वर्णन अब कौन कर सकता है ॥ ४० ॥

जना अपि ध्वस्तसमस्तकिल्बिषाः
समीक्ष्य वेदोदितनाटकक्रमम् ।
महानुभावैरधिपं प्रतुष्टुवु-
र्दयामयं श्रीपरमेश्वरोपमम् ॥४१॥

उसी समय नष्ट हृदयांधकार जन भी वेदोक्त नाटक-क्रम को देख नाना वाक्यों से महर्षिजी की बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ४१ ॥

जगाद कश्चिद्बहुशो जनान्तरे
श्रुतं न दृष्टं क्वचिदित्थमद्भुतम् ।
मया निराकारयशोविशोभितं
जगत्त्रये नाटकमागमप्रभम् ॥४२॥

उसी अवसर में कोई पुरुष तो मनुष्यों के बीच में वारंवार ऐसा कहने लगा कि मैंने ऐसा ईश्वर की प्रभुता को दिखानेवाला सच्चा वेदोक्त नाटक आज तक न सुना, न कहीं देखा ॥ ४२ ॥

महाशयः कोप्यपरोपि सर्वशो-
विलोक्य रम्यं नवकीर्तिताण्डवम् ।
मुहुर्मुहुर्नायकमेव वर्णय-
न्नवाप काव्यस्य परम्परां पराम् ॥४३॥

कोई महाशय नाटक की अत्युत्तमता को देख कर महर्षिजी का ही पूर्ण-रूप से वर्णन करने के लिए उद्यत हुए ॥ ४३ ॥

भवे समस्ते भविता न कोप्यलं
समो जनस्ते न बभूव कर्हिचित् ।
परापि भाग्येन गतोसि पात्रतां
सुनेत्रयोरद्य विधेरनुग्रहात् ॥४४॥

वर्णन का ही वर्णन करते हैं । हे महर्षिजी, आपके समान इस संसार में न तो कोई मनुष्य आगे उत्पन्न होगा, न कोई पहले हुआ । अब भी जो आपका दर्शन है सो बड़े भाग्योदय से मिला है ॥ ४४ ॥

विलोकनेनैव हरत्यघम्भवा-
न्पुंगाभवं सम्प्रति तद्भवः कथम् ।

भविष्यतीत्यप्यतिमुग्धकल्पना
यतस्त्वमाप्तोसि दृशोः परं पदम् ॥४५॥

आप पहले संचित पाप को तो अपने दर्शनों के साथही नष्ट करते हैं। अब उनका होना सम्भव नहीं है। उनका आगे होना असम्भव है। इसलिए आपका दर्शन तीनों कालों की व्यवस्था में पापों को नष्ट करनेवाला प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥

इति प्रशस्तिर्न समाप्तिमागम-
द्यदा तदैवेतरवागभिष्टुतिः।
पुरो हसन्ती कथयाम्बभूव तां
नवीनवाणीघटनाप्रशस्तिकाम् ॥४६॥

जब तक पूर्वोक्त प्रकार से एक मनुष्य की प्रशंसा पूर्ण न हुई तभी दूसरे पुरुष की वाणी ने भी पूर्वोक्त रचना को हटाकर अपना प्रभाव दिखलाने का उद्योग किया ॥ ४६ ॥

किमत्र चित्रं यदि शङ्करोद्गमे
बभूव जैनादिमतप्रभञ्जनम्।
अवर्णनीयो महिमा तु ते विभो
यते दयानन्द वदामि किं परम् ॥४७॥

यदि शंकराचार्यजी के समय में शाक्त, जैन आदि मतों का खण्डन हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है? परन्तु हे महर्षिजी, आपकी महिमा तो अवर्णनीय होने से उनसे भी अधिक प्रतीत होती है ॥ ४७ ॥

पुरातनैरार्यजनैरलङ्कृतं
किमेषु लोकेष्ववदानसाधनम्।
गृहे गृहे ते महिमा तु वर्ण्यते
जनैरलं वेदमतानुयायिभिः ॥४८॥

प्राचीन आर्य पुरुषों ने इस संसार में ऐसा कोई परोपकार का काम न किया, यदि किया भी तो अपनी प्रतिष्ठा के लिए किया होगा; परन्तु महर्षिजी, आपकी महिमा को तो वेद के अनुकूल चलनेवाले पुरुष घर घर गाया करते हैं ॥ ४८ ॥

कुतस्तवास्मिञ्जगतीतले जनि-
र्बभूव नेदं प्रतिबुध्यते मया ।
अतीतलोकत्रितयो गुणस्तु ते
विभाति भूमण्डलरत्नवत्परः ॥४९॥

हे महर्षिजी, इस लोक में आपका जन्म किन कारणों से हुआ, यह तो हम नहीं कह सकते; परन्तु इतना कह सकते हैं कि आपके गुण तीनों लोकों से भिन्न और अवर्णनीय हैं ॥ ४९ ॥

गता कथं मे तव मूर्तिरुत्तमा
दृशोरलं वेद्मि न तत्पुराभवम् ।
किमस्ति पुण्यं किमहोधुना कृतं
यते कथं स्याः पथि नैव तद्भवेत् ॥५०॥

जो आपका अब दर्शन हुआ है वह न मालूम प्राक्तन पुण्यों का फल है या अब किये हुए पुण्यों का फल है, परन्तु इतना अनुमान कर सकता हूँ कि जो पुण्य न होता तो आपका दर्शन भी न होता ॥ ५० ॥

न कारणानामनुमोदनं विना
भवन्ति कार्याणि कथञ्चिदप्यतः ।
मयानुमानादवगम्यते यते
पुरातनं पुण्यफलं विचारणैः ॥५१॥

कारणों के बिना कार्यों की उत्पत्ति नहीं हुआ करती, यह न्याय तार्किकों का प्रत्यक्ष फलित है । इसलिए अनुमान किया जाता है कि ज़रूर ही पिछले पुण्यों का फल है ॥ ५१ ॥

मते ममेदं प्रतिभाति सर्वथा
भुवस्तले वेदमलंविकाशयन् ।
द्वितीयभानुः परमात्मना मुदा
विनिर्मितोसीति किमत्र कृत्रिमम् ॥५२॥

मेरी समझ में तो यह आता है कि परमात्मा ने इस संसार में वेद का पूर्ण रूप से प्रकाश तथा अविद्या-रात्रि को दूर करने के लिए आपको दूसरा सूर्य बना दिया ॥ ५२ ॥

जनिं न यायाद् यदि लोकमण्डले
भवेत्कथंतर्हि तमिस्रभञ्जनम् ।
इति ब्रुवत्येव जने जनेतरो-
निवार्य तं प्रावददित्थमद्भुतम् ॥५३॥

यदि आप इस लोक में जन्म न लेते तो नाना मतरूपी अन्धकार किस तरह दूर होता ? यहाँ तक उस मनुष्य ने अपनी बात आधी भी न कही थी कि इतने में दूसरा मनुष्य आकर यों कहने लगा—॥ ५३ ॥

अलं समस्तैरपि कल्पनाक्रमैः
कृतं मते मे बहुवादसाधनैः ।
प्रवर्तितामार्यमतप्रशस्तिकां
विलोक्य याता सकलान्धकारता ॥५४॥

मेरी समझ में तो और सब कल्पनायें व्यर्थ हैं। बहुत विवादों से भी कुछ प्रयोजन नहीं है। केवल इतना ही कहना उचित है कि महर्षिजी के चलाये हुए एक आर्य-समाज ही से इस भारतवर्ष का ही क्या सारे संसार का समस्त अंधकार दूर होजायगा ॥ ५४ ॥

न मूर्तिपूजा न पुराणकल्पना
न तीर्थभक्तिर्न मृतक्रियाकृतिः ।

ममान्तरे दर्शनमाप्य ते विभो
विराजते वेदपथादृतेऽधुना ॥५५॥

हे महर्षिजी, आपका दर्शन पाकर मेरे अंतःकरण में सिवा एक वेद-मार्ग के न तो मूर्ति-पूजा, न पुराणों का मानना, न जलों में तीर्थ बुद्धि रखना, न मृतक श्राद्ध को करना, कुछ भी नहीं रहा ॥ ५५ ॥

हृतोन्धकारः प्रभया विभो त्वया
महाशयानां हृदयाद्विशेषतः ।
निवेशितो देवलकेषु दृश्यते
गतोन्यथा कुत्र विलुप्तदर्शनः ॥५६॥

हे महर्षिजी, ऐसा प्रतीत होता है कि आपने अपनी प्रभा से महाशयों के अन्तःकरणों से अविद्यारूपी अन्धकार को हटा कर पुजारियों के अन्तःकरणों में रख दिया; नहीं तो जाता कहाँ ? ॥ ५६ ॥

न यावदित्थं कथनापरो ययौ
विमूकभावं प्रवणो महाशयः ।
महाशयस्तावदनन्यभक्तिमा-
निमं समस्तौदितरेतरेतरः ॥५७॥

इस प्रकार जब तक एक महाशय अपनी वाणी को पूर्ण न कर पाया तभी तक अत्यन्त भक्तिवाला दूसरा महाशय महर्षिजी की प्रशंसा इस प्रकार करने लगा—॥ ५७ ॥

कृतः प्रजाक्षेमकृता विभो त्वया
नियोगमार्गो विधवादयालुना ।
निरस्तनाथादिनिबन्धनस्ततः
परं किमुग्रं तव कीर्तिवर्णनम् ॥५८॥

---

१ नाथः काशीनाथः । नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम् ।

हे महर्षिजी, प्रजाओं के कल्याण में दत्तचित्त होकर, विधवाओं के ऊपर दयादृष्टि करके जो आपने काशीनाथ की मर्यादा को तोड़ दिया, यही आपके लिए धन्यवाद है ॥ ५८ ॥

पुराणविज्ञैरनुमोदिताशया
जगत्यलं थान्धपरम्परा परा ।
त्वयैव सा वाक्यबलैर्निवारिता
हृदन्तराद्भूतलवासिनां बलात् ॥५६॥

इस संसार के बीच में जो मनुष्यों के अन्तःकरण में पौराणिकों ने अविद्यारूपी अन्धकार रख छोड़ा था उसका हटाना एक आपही का काम था ॥ ५९ ॥

इति ब्रुवत्येव सरस्वतीपतौ
यशोनटी तस्य पुरः समुत्थिता ।
ललाट बाल्यप्रभयेव वर्धिता
जनान्वशीकर्तुमयत्नसाधना ॥६०॥

कवीश्वरों के ऐसे कहने पर महर्षिजी के सामने खड़ी हुई यशोरूपिणी नटी मनुष्यों को वश में करने के लिए फिर भी दुबारा अपनी प्रबल शक्तियों से नाटक का प्रारम्भ करने लगी ॥ ६० ॥

पुनः प्रवृत्ते नवनाटकोत्सवे
यशः समुत्था दशदिग्विसृत्वरी ।
जनावली दर्शनलालसावशा-
दवाप तन्मध्यमरं प्रधाविनी ॥६१॥

नाटक के दुबारा प्रारम्भ होने पर पहले के समान देखने की अभिलाषा करके चारों तरफ़ से आई हुई महाशयों की पंक्तियाँ नाट्य-शाला में आकर फिर नाटक का दृश्य देखने लगीं ॥ ६१ ॥

भविष्यति प्रातरियं प्रकल्पना
नवेत्र नेपथ्यविशालमन्दिरे ।

इति श्रुतानन्दकथाः समन्ततो-
न सम्ममुर्हर्षवशेन कोविदाः ॥६२॥

सवेरे यहाँ पर मूर्तिपूजन, श्राद्ध, पुराण, तीर्थों का खण्डनरूप नाटक खेला जायगा। ऐसा भविष्यद्वाक्य कहने पर वह पण्डितों की मण्डली अपने मन में फूली न समाई। अर्थात् सायंकाल होने पर अगले दिन का प्रस्ताव सुना दिया गया॥ ६२॥

यथोचिते यानविशेषविष्टरे
निविश्य गेहोचितमार्गभूषिताम्।
भुवं ययौ कृत्यविशेषहेतवे
करस्थवेला धृतनेत्रनर्तना ॥६३॥

प्रस्ताव सुनने के बाद अपनी अपनी सवारियों पर चढ़ कर वह नाटक देखनेवाली सभ्य मण्डली अपने गृह-कार्यों को करने के लिए सायङ्काल के समय अपने अपने घरों को चलने लगी॥ ६३॥

गतेषु लोकेषु यथायथं गृहा-
नियं समस्तापि विशेषमण्डली।
निवर्तयामास दिनैकनाटकं
चकार च प्रार्थनमस्य सत्पतेः ॥६४॥

महाशयों के अपने घर जाने पर वह समस्त नाटक-पात्र-मण्डली भी पहले दिन का नाटक पूरा करके महामहिम महर्षिजी की नाना प्रकार से स्तुति करने लगी॥ ६४॥

असावपि ध्वस्तसमस्तविस्तरो-
मनस्यनन्तं परमात्मदर्शनम्।
चकार योगानुगकल्पनोद्यमैः
समाधिनिर्धूतमले सुखाश्रितः ॥६५॥

महर्षिजी भी एकान्त स्थल में आनन्द से बैठ कर समस्त कृत्यों को छोड़ते हुए अपने निर्मल अन्तःकरण में योगाभ्यास के वश से सुखपूर्वक अनन्त ईश्वर का दर्शन करने लगे ॥ ६५ ॥

इति विरचितलीलालास्यलेशास्यकीर्ति-
र्ललितललितभावैर्लालयँल्लालनीयान् ।
सकलभुवनमध्ये विभ्रमन्सज्जनानां
कलनमिव विधातुं वायुमार्गं प्रतस्थे ॥६६॥

जब सब लोग घर चले गये तब नाटक-पात्रों के विश्राम लेने पर, महर्षिजी के योगावस्थित होने पर, वह कीर्तिरूपिणी नटी, संसार में खिलाने लायक महाशयों को अपने सुन्दर भावों से खिलाती हुई, समस्त भारतवर्ष के सज्जन पुरुषों के गिनने के बहाने से, वायुरूप हो आकाश-मार्ग में सब पुरुषों के देखते देखते चली गई ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
यशोविलसनं नाम नवमः सर्गः ।

दशमः सर्गः

प्रातः समागतवति प्रचुरे दिगन्ता-
ल्लोके पुनः प्रववृते नवनाटकोत्थः ।
सामाजिकोन्नतिमहः प्रबभूव यस्मि-
न्नानन्दएव सकले जगति प्रशस्तः ॥१॥

अब नाटकरूप से मूर्तिपूजादि विषयों का खण्डन करने के लिए दशम सर्ग प्रारम्भ किया जाता है । प्रातःकाल होते ही मनुष्यों के आने पर वह सामाजिक जनों का उत्सव फिर भी प्रारम्भ होगया था जिसके प्रस्ताव होने पर सम्पूर्ण जगत् में एक अद्वितीय आनन्द छागया ॥ १ ॥

नेदं मयापि गदनीयमयं जगत्या-
माश्चर्यमापयति यन्नितरां दिदृक्षून् ।
नानाविधानकरणोचितचारुवेशो-
यस्मात्स्वयं प्रतिविभाति निदानरूपः ॥२॥

यह उत्सव भारतवर्ष में अद्वितीय है—ऐसा कहने के लिए मुझे कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती; क्योंकि इस विषय में तो सब कामों को छोड़कर एक रूप से देखने में दत्तचित्त मनुष्य-समुदाय ही पूर्णरूप से साक्षि-भूत माना जाता है ॥ २ ॥

---

१ उत्सवः । २ मनुष्यसमुदाय इति शेषः ।

लोके तदेव रुचिरं प्रतिभाति शङ्के
यस्मिन्समस्तमनुजानुमतेर्निदेशात् ।
भिन्नं किमप्यभिनवं समुदेति वृत्तं
वीद्यावतामखिलमानसवृत्तिहारि ॥३॥

संसार में वही चरित्र रमणीय मालूम होता है जिसमें लोक-प्रचलित समस्त चरित्रों से भिन्न अभिनवता के वश से मनुष्यों की चित्त-वृत्ति को हरने वाला कोई नया कृत्य समस्त सभ्य पुरुषों की अनुमति से प्रकट हुआ हो ॥ ३ ॥

एवं विचिन्तयति रङ्गगते मनुष्ये
यावन्न साधनविधिः प्रबभूव तावत् ।
प्रादुर्बभूव करुणाब्धिसमः स कोपि
यस्यागमेन सकलापि सभावतस्थे ॥४॥

रङ्गशाला के अन्तर्गत मनुष्यों ने जब तक ऐसा विचार पूर्ण न किया तभी तक वह करुणावरुणालय महर्षिजी अपने उज्ज्वल रूप से सभा में उपस्थित हुए जिनके आने से पहले ही समस्त सभा उठ कर खड़ी होगई ॥ ४ ॥

हैमं समाविशति वेत्रवतां निदेशैः
सिंहासनं सकलरत्नरुचिप्रदीप्तम् ।
या श्रीः स्वयं समभवत्सकलेपि रङ्गे
सा केन वक्तुमपि शक्यतइत्युदीर्यम् ॥५॥

रत्न-जटित उज्ज्वल सिंहासन पर अधिकारियों के निदेश से महर्षिजी के बैठने पर जो शोभा नाट्यशाला में हुई उसका वर्णन कौन कर सकता है ॥ ५ ॥

एतन्निदेशगतमानववाङ्निदेशै-
रध्याश्रितेषु निखिलेष्वपि मानवेषु ।

नानानिबन्धनपरापि सरस्वती सा
चित्तानि मन्त्रपदएव दधौ बुधानाम् ॥६॥

रङ्गशाला में महर्षि के प्रधान जनों के निर्देशों से महाशयों के बैठने पर नाना विषयों में चलने वाली सरस्वती विद्वानों के चित्तों को मन्त्र विषयों की तरफ़ लगाकर शास्त्रार्थ का प्रस्ताव करने को पूर्णरूप से उद्यत हुई ॥ ६ ॥

मीमांसमानमपि कञ्चिदलं बुधेशं
वैशेषिकाः प्रचुरवादपराः कथञ्चित् ।
किं तत्यजुर्न किल वेति ममापि चित्ते
शङ्कास्ति सत्वरजसां विकृतौ विनोदात् ॥७॥

उस रङ्गशाला में प्रकृति विषय का शास्त्रार्थ छिड़ने पर मीमांसा शास्त्र के जानने वाले एक पण्डित को पदार्थ-विद्या में प्रवीण वैशेषिक शास्त्रों के जानने वालों ने छोड़ा या न छोड़ा इस विषय में मुझे भी कुछ शङ्का प्रतीत होती है ॥ ७ ॥

वेदान्तदर्शनपरैर्विहितं विवादे
जीवेश्वरैक्यकथनं विविधप्रमाणैः ।
नैय्यायिकाः प्रसभमेव विभागभेद-
वैशिष्ट्यतः प्रविलयं गमयाम्बभूवुः ॥८॥

जीव और ईश्वर के विषय में अभेद बतलाने वाले नवीन वेदान्तियों को परस्पर विरोध के जानने वाले नैय्यायिकों ने सूत्रों के प्रमाणों द्वारा पछाड़ा, जैसा कि आज तक उनके दिलों में नैय्यायिकों का डर विद्यमान है ॥ ८ ॥

केचित्प्रयोगविधिवादचणाः प्रकामं
नित्योप्यनित्यइति शब्दकृतप्रतिष्ठाः ।
पातञ्जले हृदयवर्तिनि सर्वमेव
जालात्मकं निजगदुः किल पुस्तकौघम् ॥९॥

शब्दशास्त्र-प्रवीण कोई वैय्याकरण महर्षि पतञ्जलि-प्रणीत व्याकरण महाभाष्य के हृदयंगम होने पर नैय्यायिकों के प्रस्तुत किये हुए शब्दों के अनित्यत्व विषय में शब्दों की नित्यता को पूर्ण रूप से ठहरा कर आधुनिक कौमुद्यादि ग्रन्थों को जालरूप बतलाने लगे ॥ ९ ॥

एवं विवादमनुकुर्वति सज्जनौघे-
यावन्न निर्णयपणः प्रबभूव तावत् ।
विद्वज्जनाकलनकार्यगता समन्ता-
दाविर्बभूव नभसो नवकीर्तिरारात् ॥१०॥

इस प्रकार नाट्यशाला में छेड़ा हुआ शास्त्र-विषय जब तक पूर्ण भी न हुआ था तभी तक विद्वानों के परिगणन के लिए चली हुई यशोरूप नटी आकाश-मार्ग से उतर कर महाशयों के सामने नवीन रूप से उपस्थित हो गई ॥ १० ॥

दृष्ट्वा समस्तभुवनाधिगमैरनन्तां
कीर्तिं नटीमिव समस्तगुणैरुदाराम् ।
तौर्यत्रिकोत्सवविधानपराः प्रचक्रुः
सर्वाणि तत्र करणानि जनाः प्रशस्ताः ॥११॥

उस अवसर में समस्त गुणों से उज्ज्वल और सम्पूर्ण भुवनों में व्याप्त होने से अनन्त यशोरूप नटी को सामने खड़ी हुई देखकर समस्त नाटक-पात्र अपनी अपनी क्रियाओं में दत्तचित्त हो, समस्त साधनों से उद्यत होगये ॥ ११ ॥

सर्वेऽपि मध्यविषयं प्रविहाय तूर्णं
भागेषु रङ्गभवनस्य जनाः कथञ्चित् ।
गत्वापि नालऽमतएव दिशां निषेदुः
कोणेषु नूनमलभन्त यतः स्थलानि ॥१२॥

रङ्गशाला में जैसे तैसे महाशयों ने मध्यभाग को छोड़ उसके आस पास जाकर बैठना प्रारंभ किया, परन्तु जब वहाँ पर भी स्थान न मिला तब दिशाओं के कोनों में बैठने का उद्योग करने लगे ॥ १२ ॥

लोके समस्तविषयानपहाय मूके
वीक्षाप्रतीक्षणपरे विदुषामधीशे ।
प्रादुर्बभूव नवनाटकसूत्रधारः
कोप्यद्भुतो भवनमध्यतलादुदारः ॥१३॥

उस समय में मनुष्यों के मूक दत्तचित्त होने पर महर्षि के अनुरोध वश नेपथ्य से निकल कर अति मनोहर वेष वाला सूत्रधार नान्दी कहने के लिए उद्यत होगया। (सूत्रधार नान्दी को पढ़ता है, यह नियम है) ॥ १३ ॥

विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि लोकान्
नूनं परासुव तथाऽऽसुव सर्वदैव ।
यद्भद्रमस्ति सकलं प्रविधेहि तन्नो-
यूथेष्विति प्रतिवदन्विरराम नान्दीम् ॥१४॥

हे परमात्मन्, आप इस लोक में सर्वदा दुष्ट भूतों को दूर करें और जो जगत् के कल्याणकारक सर्व सुखकारी पदार्थ हों उन्हें आप सर्वदा भेजा करें । ऐसी मंत्रार्थ रूप नान्दी को पढ़कर सूत्रधार प्रस्ताव करने लगा ॥ १४ ॥

नान्दीपदे निगदिते विरतेपि पश्चात्
तत्सूत्रधारकथनान्निखिलं बभूव ।
निःशब्दमस्तमितमागमनादिशून्यं
यत्राजगाम नवकीर्तिनटी तदीया ॥१५॥

पहले नान्दी मन्त्र को पढ़कर पीछे प्रस्तावना करते हुए सूत्रधार के वचन से वह समस्त सभा-मण्डप शब्द-रहित और गमनागमन-शून्य होगया। फिर वहाँ यशोरूपिणी नटी आगई ॥ १५ ॥

नानानियोगकुशलामनुवीक्ष्य चैनां
सर्वेपि मण्डपगृहागतसभ्यलोकाः ।

नैजेन्द्रियानुगमनोमयरङ्गशाला-
मध्यस्थतल्पसुखमन्वगमन्प्रसादैः ॥१६॥

इस यशोरूपिणी नटी को नाना प्रयोगों में चतुर देख मण्डप के अंतर्गत सभ्यगण अपने इन्द्रियों द्वारा अनुगत मनोमय रङ्गशाला में जा जा कर बैठने लगे। अर्थात् एकाग्र चित्त होकर सुनने लगे ॥ १६ ॥

मञ्जीरमञ्जुवलयक्वणितानुरूपं
काञ्चीनिनादविलसद्गुरुमध्यशोभम्।
हारानुहारि तिलकार्चितरम्यवक्त्रं
तौर्यत्रिकं किमपि तत्समभूदनल्पम् ॥१७॥

अब यशोरूपिणी नटी का रूपकालङ्कार से वर्णन करते हैं। मंजीरों द्वारा सुन्दर कंकण ध्वनियों से मनोहर, कांची शब्दों से अलंकृत, हार से अनुहारि, तिलकयुक्त मुख से विभूषित, वह अद्भुत तौर्यत्रिक समस्त भारतवर्ष का विस्मयकारक होगया ॥ १७ ॥

यद्वीक्ष्य भैरवमिता निखिलापि नूनं
सा कापि सभ्यपरिषन्न चकार तत्र।
वार्तां मुखामुखि यथा लवमात्रतोपि
नेत्राणि भिन्नविषयान्तरमभ्युपेयुः ॥१८॥

जिस लीला को देख आश्चर्य्य को प्राप्त हुई महाशयों की सभा प्रत्यक्ष तो क्या, काना फूँसी में भी अपनी सब बातों को बन्द कर एकरूप से दत्त-चित्त हो निश्चल होगई ॥ १८ ॥

अत्रान्तरे करगृहीतनवीनवेत्रो-
यः कञ्चुकी निखिलजर्जरबालनेत्रः।
पात्रं बभूव सुदृशामखिलस्य जन्तो-
स्तं सा नटी समभिगूहत हास्यवेशात् ॥१९॥

इसी अवसर में हाथ में एक नया वेत्र लिए हुए अत्यन्त वृद्धावस्था से सफ़ेद पलकोंवाला कञ्चुकी निकल कर धर्मोपदेश देने के लिए आया, जिसे देख कर सब लोग अचम्भे में रह गये। अभिप्राय यह कि शतपथ, गोपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों में विचार होने लगा ॥ १९ ॥

सोऽपि प्रशस्तपरमात्मनिदेशभावं
तस्यै निवेद्य नवनायकबद्धभावम् ।
लब्धाखिलप्रकरणानुगमः प्रतस्थे
तेनैव मार्गनिवहेन यथागतेन ॥२०॥

वह कञ्चुकी भी नायक के निर्देश से परमात्मा के समस्त भावों को उस नटी से कहकर समस्त विषयों से अपनी बातों को अनुगत देख धीरे धीरे उसी पुराने रास्ते से चला गया ॥ २० ॥

मध्ये विदूषकविभूषितमध्यदेशं
तन्नाटकं किमपि कल्पितमाबभूव ।
यस्मिन्नितान्तपरिहासविकासवासा-
दाविर्बभूव निखिलापि सभा नवेव ॥२१॥

इसी बीच में विदूषक द्वारा विभूषित मध्यदेश वह दयानन्द-विजय नाटक ऐसा अद्भुत हास्यरस को दिखाने लगा कि जिससे समस्त सभ्यगण फिर भी नवीन से होगये ॥ २१ ॥

एवं बहूनि दिवसानि समस्तपात्री
नानामहैरनुगतानि विधाय हर्षात् ।
लोकं समुद्ररशनाऽऽगतपत्तनोत्थं
विस्मापयन्ननु चकार परात्मभावम् ॥२२॥

इस प्रकार वह नाटकपात्री बहुत दिनों तक नाना प्रकार के उत्सवों से भारतवर्ष के समस्त नगरों से आये हुए महाशयों को विस्मित कर आप आनन्द में मग्न होगई ॥ २२ ॥

काले गते बहुतिथे मनुजार्थनाभि-
योंगीश्वरोपि किल थामवदद्गिरं ताम् ।
सर्वे विशुद्धहृदयान्तरदीपनाय
शृण्वन्तु भक्तिभरिताः किमतोन्यदेवम् ॥२३॥

बहुत दिन बीत जाने के बाद समस्त भारतवर्ष के महाशयों की प्रार्थना करने पर महर्षिजी ने भी वेद-मार्ग के अनुकूल जिस अमृत वाणी को कहा वह भी अपने मनों को प्रफुल्लित करने के लिए समस्त सभ्यगण सुनें ॥२३॥

श्राद्धं तदेव निगदन्ति महात्मवर्या
यस्मिन्परोपकरणाय जनोत्तमेषु ।
सच्छ्रद्धया किमपि वस्तु तदर्थितं वा
विश्राणयन्ति मनसा वचसापि विज्ञाः॥२४॥

अब यहाँ से (७२) श्लोक पर्यन्त मृतक-श्राद्ध का खण्डन किया जाता है। इस संसार में महात्मा जन श्राद्ध उसी को कहते हैं जिसमें अपनी श्रद्धा के अनुसार परोपकार की दृष्टि से अच्छे गुण वाले पुरुषों के लिए कुछ पदार्थ मन या वाणी के द्वारा दिया जाय ॥ २४ ॥

श्रद्धाविहीनमथ ये प्रददत्यनिच्छा-
विस्फूर्जितप्रतिमभावगताः कथञ्चित् ।
सर्वं तदर्थगतमर्थफलं न सूते
शान्ताग्निकुण्डहुतवज्जडबुद्धिदत्तम् ॥२५॥

अविद्या के फंदे में पड़े हुए जो पुरुष दूसरों के कहने सुनने से श्रद्धा-रहित जड़-बुद्धियों को दान देते हैं वह सब राख में हवन करने के समान कुछ फल नहीं देता। इस लिए विद्वानों को देना चाहिए। मूर्खों को नहीं ॥ २५ ॥

देशानुकूलमथ कालकलानुकूलं
पात्रे तपोगुणवति प्रतिदानशून्यम् ।

यद्दीयते बुधजनैरुपकारबुद्ध्या
तच्छ्राद्धमित्यनुवदन्ति विपश्चिदग्र्याः ॥२६॥

विद्या और तप से युक्त पात्रों में अच्छे देश तथा काल में जो उपकार की बुद्धि से दान दिया जाता है उसे ही पण्डित जन सच्चा श्राद्ध कहते हैं ॥ २६ ॥

पिण्डादिकं बहुविधाय मनुष्यलोके
ये कुर्वते किमपि वेदमतानभिज्ञाः ।
ते सर्वमेव नरकोद्गमनप्रतीक्षा-
वीक्षापराः फलविहीनतयैव कृत्यम् ॥२७॥

वैदिक धर्म के न जाननेवाले जो पुरुष इस संसार में पिण्डादि बना कर कुकर्म करते हैं वह मानो नरक में जाने के लिए अपने आपही रास्ता ढूँढ़ते हैं ॥ २७ ॥

दत्तं पुरा नु लभते जननेऽत्र दत्तं
जन्मान्तरे नु लभते किल जीवलोकः ।
मन्ये समस्तकथनेष्विदमस्ति सिद्धं
कुत्रापि नो मिलति दानफलं प्रयाते ॥२८॥

पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों का फल जीव इस जन्म में भोगता है और इस जन्म में किये हुए कर्मों का फल आगे भोगेगा । यह सर्व-शास्त्र-संमत है परन्तु यहाँ का दिया हुआ लोकांतर में कोई दूसरा कदापि नहीं पा सकता ॥ २८ ॥

जीवेऽमरे वसनवद्वपुरप्यपास्य
देहान्तरं कृतिवशात्प्रगते न कोपि ।
तत्रास्य बान्धव इति व्यवहार एव
वेविद्यते कथमपि क्वचिदप्यशस्तः ॥२९॥

वस्त्र के समान शरीर को भी इस लोक में छोड़कर अमर जीवात्मा के लोकांतर जाने पर उस जीवात्मा का यहाँ के पुरुषों से कुछ बान्धव-व्यवहार ही नहीं रहता है॥ २९ ॥

कुत्रेदृशं वचनमस्ति बुभुक्षितास्ते
जन्मान्तरेपि गतजन्मगतैः प्रदत्तम् ।
भुक्तान्नपानवसनादिकमादरेण
तृप्यन्ति सर्वमिदमत्र जनैः प्रदिष्टम् ॥३०॥

दूसरे जन्म में भी भूखे प्यासे जीवात्मा पहले जन्म के मनुष्यों के दिये हुए वस्त्र, जल, भोजन पाकर तृप्त हो जाते हैं—ऐसा वचन किस महर्षि के बनाये हुए पुस्तक में पाया जाता है ? किसी में नहीं॥ ३० ॥

नव्यानि कर्मवशतो जननानि लब्ध्वा
नव्येषु बान्धवजनेषु करोति सख्यम् ।
नव्यानि तत्र लभते सकलानि मन्ये
वस्तूनि दुग्धजलभोजनभाजनानि ॥३१॥

वह जीवात्मा यहाँ से चल, अपने कर्मों के वश से नवीन जन्म को पा, दूसरे जन्म में नये बान्धवों में प्रीति करलेता है और उस जन्म में समस्त दुग्ध, जल, अन्न, वस्त्र, पात्र आदि वस्तुओं को नवीन रूपसे ही पाता है॥३१॥

प्रेतेतिशब्दकथनादपि तस्य लोकान्-
मन्ये प्रकर्षगमनं कविभिः प्रदिष्टम् ।
तच्चेत्कथं यदि कथंचिदपीह तस्य
सम्बन्धबन्धनफलं मनुजानुविद्धम् ॥३२॥

इस लोक में बिलकुल सम्बन्ध को हटाकर लोकांतर जाना ही प्रेत शब्द का अर्थ है। यदि उसका यहाँ के लोगों से सम्बन्ध रहा तो प्रेत शब्द का अर्थ कहाँ घटा ? यदि घटा तो उसका यहाँ के बान्धवों से सम्बन्ध नहीं रहता॥ ३२ ॥

प्रेतः कथं यदि जलादिकवस्तुभोजी
नोचेत्क्व तर्हि विहितं जलदानकृत्यम् ।
अन्योन्यदुर्घटनमेतदलङ्करोति
सम्बन्धभञ्जनमनुग्रहनिग्रहाभ्याम् ॥३३॥

यदि वह जीव यहाँ के दिये हुए पदार्थों का अनुभव करता है तो प्रेत नहीं। यदि प्रेत है तो यहाँ के दिये हुए पदार्थ नहीं भोग सकता यह अन्योन्य दुर्घटना अनुग्रह तथा निग्रह से सम्बन्ध के तोड़ने में अपना ज़ोर लगाती है ॥ ३३ ॥

लोकान्तरं यदि गते मनुजे प्रदत्तं
तद्बान्धवैरिह जलादिकमेति जन्तुः ।
देशान्तरं प्रति गते विफलैव तर्हि
पाथेयबन्धनकृतिर्मनुजैः प्रदिष्टा ॥३४॥

जो मनुष्य के मरने पर उसके बान्धवों से दिया हुआ पदार्थ उसके पास पहुँच जाता है तो देशान्तर को गये हुए पुरुष के लिए चवेनी आदि पदार्थों को बाँधने की कुछ आवश्यकता नहीं होनी चाहिए ॥ ३४ ॥

पाथेयबन्धनमिति प्रदिशत्यलं नो
जीवस्य पूर्वपुरुषैः सह सम्प्रयोगः ।
केनापि कारणवशेन भवत्यलं तत्
सर्वं नवीनमनुजैरिदमत्र सृष्टम् ॥३५॥

जो इस लोक में देशान्तर को गये हुए पुरुष के साथ चवेनी आदि का प्रबन्ध किया जाता है यह इस बात को पूर्ण रूप से जतलाता है कि मरे हुए पुरुषों का पूर्व पुरुषों से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता ॥ ३५ ॥

विद्युत्पथेन यदिदं मनुजैः प्रदिष्टं
देशान्तरे धनगतागतमेतदत्र ।

लोकान्तरे न तदपि प्रथितं कथञ्चि-
द्रूपान्तरेण न समस्तफलोपभोग्यम् ॥३६॥

जो इस लोक में तार के द्वारा द्रव्य आदि पदार्थ देशान्तर के लिए भेजे जाते हैं वह इसी मर्त्य लोक के लिए हैं दूसरे लोकों के लिए नहीं। वह भी एक रूप से दूसरे रूप में बदल कर पाये जाते हैं, उसी रूप से नहीं ॥ ३६ ॥

पौराणिकोदरतडिद्यदि भोज्यजातं
लोकान्तरेपि मनुजेषु ददाति तर्हि।
आकस्मिकान्यपि कथं न वसूनि मन्ये
तत्रैव विन्यसति मुग्धगुणा जनाली ॥३७॥

यदि श्राद्धभोजियों की पेटरूप बिजली यहाँ के दिये हुए भोज्य-पदार्थों को तार के समान लोकान्तर को पहुँचा देती है तो उसी बिजली के रास्ते से यहाँ के जन, वस्त्र, पात्र आदि पदार्थों को उसी जगह पर क्यों नहीं पहुँचवाते ॥ ३७ ॥

नैवेश्वरानुमतिभिन्नतया कदापि
तोयाग्निवायुषु हुतं तनुते फलानि।
चेदस्ति तर्हि निगमेषु कथं न मृग्या
सा तस्य सम्मतिरलं बहुभिः प्रमाणैः ॥३८॥

ईश्वरोक्त वेद की विरुद्धता से जो कोई पदार्थ, अग्नि, वायु और जल में फेंका जाता है वह कदापि फलदायक नहीं होता। यदि होता हो तो वेद-विरुद्ध काम करने के लिए भी वेद का प्रमाण मिल जाना चाहिए ॥ ३८ ॥

अग्निप्रदत्तघृतमिष्टपदार्थजातं
वेदोदितेन विधिना परमेश्वरेण।
भूवायुशुद्धिवशतो यदनुप्रदिष्टं
तद्भौतिकाग्निवचनं निगमे विलोक्यम् ॥३९॥

परमेश्वर ने वेद के द्वारा जो हवन वायु की शुद्धि के लिए बतलाया है वह भी भौतिक अग्नि के द्वारा बन सकता है; वैद्युत अग्नि से नहीं। इसलिए अग्नि भी परमात्मा के नियुक्त कामों में ही सहायक बन सकता है, औरों में नहीं ॥ ३९ ॥

यागादिकोपि परमेश्वरशासनेन
वेदेन चेदहरहः क्रियते मनुष्यैः ।
सोपि प्रशस्तपरलोकफलोपधायी
नो लभ्यते निगमवर्त्मनि मार्गितेपि ॥४०॥

यह जो यज्ञ करने का विधि ईश्वरोक्त वेद के द्वारा प्रति दिन किया जाता है वह भी दूसरे जन्म में जाकर फल देने वाला नहीं माना जाता; प्रत्युत पुत्र-पौत्रादि रूप में उसका भी फल यहीं भोगना पड़ता है ॥ ४० ॥

वेदेतरेषु यदि तद्वचनानि नूनं
ग्रन्थेषु तानि परतो न निसर्गभावात् ।
प्रामाण्यवादपरकाणि मतानि सर्वै-
रस्मान्न तत्कथनमस्ति मतं मतं मे ॥४१॥

जो वेद से भिन्न ग्रन्थ ब्राह्मणादिकों में परलोक-विषयक यज्ञ करने का विधान पाया जाता है वह उन ग्रन्थों के परतः प्रमाण से स्वयं प्रमाण के योग्य नहीं माना जाता; प्रत्युत वेद के अनुकूल होने से ही उन ग्रन्थों का प्रमाण मानने योग्य है इसलिए मैं उन ग्रन्थों के प्रमाण को कदापि नहीं मान सकता ॥ ४१ ॥

सर्वे धनञ्जयमुखाः परमेश्वरेण
स्वे स्वे नियोगकरणे नितरां नियुक्ताः ।
भाग्योपलब्धनिजकार्यविधानएव
कालं नयन्ति कथमप्यपराधभीताः ॥४२॥

जितने अग्नि, वायु, रवि, चन्द्रादि पदार्थ हैं वे सब ईश्वर के आज्ञानुसार अपनी अपनी क्रियाओं में लगे हुए भाग्यवश से पाये हुए अपने अपने कामों को करते हैं। ईश्वर की आज्ञा के बिना कोई भी स्वतन्त्रता से काम नहीं कर सकता ॥ ४२ ॥

भानुः स्वकालपरिमाणवशाज्जडोपि
भूगोलमण्डलपरिभ्रमणे नियुक्तः ।
नैजैर्मयूखनिचयैः सलिलानि लोका-
ल्लोकान्तरं नयति सर्वशएव साक्षात् ॥४३॥

जड़ सूर्य्य भी प्रत्यक्ष ही सब प्रकार से ईश्वर की आज्ञा का पालन करता हुआ प्रति दिन पृथिवी का जो गोल मण्डल है उसके आस पास भ्रमण में लगा हुआ अपने नियत समय में किरणों के द्वारा भूलोक से जल के किरणों को भुवर्लोक में पहुँचवाता रहता है ॥ ४३ ॥

नैसर्गिकी यदि रवेर्जलजातमात्रे-
ष्वादानशक्तिरवधानपरास्तिशङ्के ।
दत्तं कराञ्जलिजलं कथमाप्य तुष्टो-
नूनं भविष्यति स दीप्तमयूखभूमिः ॥४४॥

जो सूर्य में स्वभाव से ही जल के खींचने की शक्ति है तो वह चुल्लू में भरकर दिये हुए पानी से किस तरह तृप्त हो सकता है ? कदापि नहीं ॥४४॥

नैवेदृशं मिलति वाक्यमपीह वेदे
देयं कराञ्जलिजलं मनुजैः प्रभाते ।
रात्रेर्मुखे च तदहो विफलन्नु तस्मै
तत्तोयदानकरणं जगति प्रदिष्टम् ॥४५॥

प्रातःकाल और सायङ्काल सूर्य के उद्देश्य से जल को देना किसी भी वेद-मन्त्र से सिद्ध नहीं होता । इस लिए यह ढंग विफल ही समझना चाहिए ॥ ४५ ॥

कुत्रापि पाकमुपलम्भयता परत्र
तापं नितान्तमुपयोजयता स्फुटैव ।
सन्दर्श्यते नियमसङ्गतिरात्मदत्ता
सूर्येण सर्वभुवनोदरदीपकेन ॥४६॥

इस लोक में प्रकाश करनेवाला सूर्य फलादि वस्तुओं में परिपाक को दिखलाता हुआ प्रत्यक्ष बतला रहा है कि मैं ईश्वर की प्रेरणा से समस्त पदार्थों को घटाता बढ़ाता हुआ अपना काम कर रहा हूँ ॥ ४६ ॥

तस्यैव रश्मिषु जलोद्धरणादिशक्ति-
र्नाग्नौ न विद्युति न मानसवह्निभेदे ।
सृष्टा चकास्ति तदहो मनुजैर्मुधैव
सामान्यलोकजठराग्निषु हूयतेऽन्नम् ॥४७॥

ईश्वर ने जल आदि पदार्थों के खींचने की शक्ति केवल सूर्य के ही किरणों में दी है। अग्नि, बिजली आदि में नहीं कि जो इस लोक से दूसरे लोक में चीज़ पहुँचा दें। इसलिए सामान्य जनों की पेटरूपी अग्नि में पदार्थ डालना व्यर्थ ही है ॥ ४७ ॥

सामान्यदानपरकं यदि भोजनादि
सन्दीयते निजफलागमवाञ्छयात्र ।
तस्मिन्न कोपि विधिरस्ति निषेधको वा
सर्वत्र विस्तृतिमियं कथना गतैव ॥४८॥

जो भद्र पुरुष अपने लिए सामान्यतया दान की इच्छा से ब्राह्मण-भोजन कराते हैं तो इसमें न विधि है, न निषेध है, क्योंकि अपना दिया हुआ आपही पाना माना जाता है। वह दान सामान्यतया सबही दीन जनों को देना उचित है ॥ ४८ ॥

पञ्चत्वमाप्तवति पञ्चकसंप्रसूते
पञ्चाग्निसेविनि दशेन्द्रियभावभूते ।

देहे समस्तपरमाणुविशीर्णरूपे
कस्मै प्रदेयमिह सम्प्रति तोयदानम् ॥४६॥

पाँच तत्त्वों से बने हुए पाँच अग्नियों के सेवन करने वाले पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेंद्रियों से युक्त मनुष्य-देह के पञ्चत्व होने पर कहिए किसके लिए जलदान दिया जाय ? ॥ ४९ ॥

तोयेषु तोयपतनं न फलानुबन्धि
किं वा करिष्यति फलं विफलोऽग्निरेकः ।
कोर्थो भविष्यति गवां गवि योजनेन
भिन्नेषु पञ्चसु नियोजकसूचनाभिः ॥५०॥

यदि जल में जल गिरा दिया जाय तो क्या फल होगा ? यदि अग्नि को जल दिया तो सिवा बुझने के और क्या होगा ? यदि पृथिवी के परमाणुओं को उनसे जोड़ दिया जाय तो जड़ पदार्थ क्या कर सकता है ? इसलिए मरने के बाद जल आदि पदार्थों का देना सर्वथा व्यर्थ है ॥ ५० ॥

जीवोऽमरः प्रकृतिबन्धनमाप्य मन्ये
यावन्नु तिष्ठति जडं बहुयोनिभेदैः ।
भूमेस्तले तदवधि प्रतिभाति देही
भिन्नस्ततो निजफलानि समीहते नु ॥५१॥

अमर जीवात्मा जब जब जड़ रूप प्रकृतियों के बन्धनों को प्राप्त हो जाता है तभी देही कहाता है । उससे भिन्न होकर अपने कर्मों का फल अनुभव करता है ॥ ५१ ॥

अन्धन्तमः प्रतिविशन्ति भवन्ति ये ये
सम्भूतिसंश्रयपरा इति वेदमन्त्रः ।
किं संवदत्यविरतं न समीक्ष्यते किं
विद्वद्वरैरहरहः क्रियते यदेतत् ॥५२॥

---

१ पार्थिवपरमाणूनां पार्थिवपरमाणुसमूहे ।

जो जो पुरुष जड़ पदार्थ का सेवन करते हैं वह अन्धतम को प्राप्त होते हैं। यह वेद मन्त्र का अर्थ क्या आप लोगों ने नहीं सुना ? यदि सुना होता तो फिर जड़ देह के उद्देश्य से क्यों जलदान देते हो ? ॥ ५२ ॥

कर्मानुबन्धिनि फले गतचेतनानां
केषां न सिध्यति गतागततारतम्यम् ।
तच्चेन्न तर्हि विफलं नु मनुप्रदिष्टं
लोकान्तरानुगमनं मनुजस्य शङ्के ॥५३॥

फल के कर्मानुरूप होने पर मरे हुए किन पुरुषों का आवागमन सिद्ध नहीं होता ? यदि होता है तो मनुस्मृति में कहे हुए लोकांतर की प्राप्ति सिद्ध है ॥ ५३ ॥

सूक्ष्माणि कर्मपरिपाकफलानि सूक्ष्मे
जीवात्मनि प्रतिभवन्तु न मे विषादः ।
दृश्यानि भोज्यकवलानि कथं प्रयान्ति
रूपान्तरं प्रतिगतेऽणुनि जीवरूपे ॥५४॥

सूक्ष्मरूप कर्मों के फल सूक्ष्मरूप जीवात्मा के साथ जायँ इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि सूक्ष्म पदार्थ सूक्ष्म पदार्थ के साथ मिलाही करता है। परन्तु मोटे मोटे ग्रास सूक्ष्म जीवरूप के साथ किस प्रकार जाते हैं ? यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥ ५४ ॥

विद्यातपोनिधिनिभेषु हुतं नितान्तं
विप्राननाग्निषु सुदुर्गपथान्मनुष्यान् ।
निस्तारयेदिति वचो मनुना प्रणीतं
रूपान्तरेण विनियोज्यमितीह भेदः ॥५५॥

जो कि मनुस्मृति में "विद्वानों को देना पापों से छुड़ाता है" ऐसा वचन लिखा है वह यों लगाना चाहिए कि उनको धन, वस्त्र, अन्नादि देकर विद्या का ग्रहण करना, विद्या होने से ज्ञान, ज्ञान होने से पापों से बचना स्वतः सिद्ध है ॥ ५५ ॥

विद्वद्व्रजादधिगता बहुभिः प्रयासै-
र्विद्येति या जनवरैरनुमोदिताऽऽस्ते ।
सैवामरत्वमजरत्वमलं तनोति
निस्तारयत्यपि च दुर्गपथान्मनुष्यान् ॥५६॥

नाना परिश्रमों के द्वारा विद्वानों से ग्रहण की हुई एक विद्या ही मनुष्यों को अजर, अमर बनाकर दुःखों से छुड़ाती है और कोई नहीं ॥ ५६ ॥

दिष्टं न वेदविषये ऋषिभिर्न सृष्टं
दृष्टं न धर्मसदनेष्वपि यत्कथं स्यात् ।
प्रामाण्यमस्य मनुजैः परिकल्पितस्य
श्राद्धस्य मन्दमतिमद्भिरलं कृतस्य ॥५७॥

वेद में जिसका नाम नहीं, ऋषियों ने जिसको कहा नहीं, धर्मशास्त्र में जिसको लिखा नहीं, ऐसे अज्ञ जनों के द्वारा चलाये हुए मृतक श्राद्ध को किस प्रकार सिद्ध माना जाय ? ॥ ५७ ॥

युक्तिर्न यत्र विषये बुधकल्पितास्ते
मुक्तिश्च दूरतरमेव यतः परास्ते ।
तस्मिन्गतं यदि मनो विषये ततः किं
वेदादिशीलनफलं विफलं समस्तम् ॥५८॥

जिस विषय में विद्वानों की सम्मति नहीं, मुक्ति का पता नहीं, ऐसे मृतक-श्राद्ध में यदि मन लगता हो तो विद्याभ्यास का होना व्यर्थ ही है ॥ ५८ ॥

विद्याविहीनमतिमन्दमदान्धलोकै-
रात्मम्भरित्वमुपचर्य मनुष्यलोके ।
विस्तारितं मिषमिदं प्रभवेत्सुखेन
यस्मादनल्पजठरानलहोम इत्थम् ॥५९॥

यह जो मृतक श्राद्ध है सो केवल विद्याहीन मूर्खों ने दुनिया में पेट भरने का बहाना बनाया है जिससे उदर-पोषण होता रहे ॥ ५९ ॥

नूनं विचारविषयोयमिहास्ति लोके
कर्मानुबन्धनपरः पुनरस्य पिण्डैः ।
सन्तर्पणापरिकरः कथनानिबन्धो-
नो यौगपद्यमिदमत्र चकास्ति रम्यम् ॥६०॥

यह ज़रा विचार करने की बात है कि कहाँ तो यह कहना कि जीवात्मा कर्मों के बन्धनों में फँसा हुआ जन्म लेता है और कहाँ फिर चावलों के पिंडों से उसका श्राद्ध तर्पण करना ये दोनों बातें एक साथ नहीं बन सकतीं ॥६०॥

संस्कारविध्यनुमतं नरमेधयज्ञं
कृत्वा न क्वापि कृतिरेव दिवङ्गतस्य ।
जीवस्य नैगमगतास्ति कुतोत्र लोके
कर्माणि तस्य कलयन्ति जनाः सुमन्दाः ॥६१॥

संस्कारविधि के अनुकूल नरमेधयज्ञ करके मरे हुए शरीर के उद्देश्य से कोई कर्म करना वेद में लिखा ही नहीं है । फिर अज्ञ जन क्यों पिण्डादि दिया करते हैं ॥ ६१ ॥

नो जाङ्गलो नरपथो न नदी न तप्ता
सा वालुका न किल वत्सरगम्यमार्गः ।
जीवेऽमरे भवति तत्त्वणलब्धदेहे
सर्वं पुराणमनुजैरिदमत्र सृष्टम् ॥६२॥

अमर जीवात्मा के कर्मानुसार उसी समय में गर्भ के अन्दर या अंतरिक्षस्थ वायु-मण्डल में जाने पर न कहीं जङ्गल का रास्ता, न कहीं वैतरणी नदी, न कहीं गरम रेत, न कहीं साल भर का रास्ता पड़ता है । ये सब बातें लोगों ने बनाली हैं ॥ ६२ ॥

जीवः शुभाशुभवशेन निजोद्गतेन
नानाफलानुगतजन्मफलानि भुक्त्वा ।

स्वैरेव कर्मपरिपाकफलैरनन्तै-
रात्मानमाविशति कर्मफलानुरूपम् ॥६३॥

जीव अपने किये हुए कर्मों के वश, नाना प्रकार के कर्मों के फलों को भोगकर, अपने अनन्त कर्मों के परिपाक फल से कर्मफल के अनुरूप देह में प्रविष्ट हो जाता है ॥ ६३ ॥

चिच्छक्तिमानपि जडप्रकृतिप्रसक्तो-
जीवोवकाशवति दुःखमये प्रकोष्ठे ।
मृत्योरनन्तरमवश्यमनुप्रयाति
कर्मानुबन्धपरिपाकवशेन मातुः ॥६४॥

चेतन शक्तिवाला भी जीव जड़रूप प्रकृति के बन्धनों में फँसकर एक शरीर छोड़ने के बाद, अपने कर्मों के वश, आकाश के समान, माता के गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

तत्रापि वेदमितमासदिनान्तएव
मातुश्चलत्ययमलं जठरे प्रविष्टः ।
निर्गत्य मासि दशमे पुनराप्य लोकं
तेष्वेव रज्यति सुहृज्जनबान्धवेषु ॥६५॥

उस गर्भाशय में भी चार महीने के मांस पिंड में प्रविष्ट हो माता के उदर में ख़ूब फड़फड़ाता है और कर्मों को याद करता है। वहाँ से दश महीने में जन्म लेकर फिर अपने उन्हीं बाँधवों में (जिनमें कि जन्म लिया है) प्रीतिपूर्वक बर्ताव करता है ॥ ६५ ॥

मानुष्यमेति यदि तर्हि गृहे तदीये
ये बान्धवाः सपदि ते सुत इत्यवेक्ष्य ।
सर्वामपि प्रतिपदं जनयन्ति तस्य
सेवामहो जगति रीतिरियं प्रसिद्धा ॥६६॥

यदि वह जीव मनुष्य के यहाँ जन्म लेता है तो जिसके जन्म लेता है उसके जितने बान्धव हैं वे पुत्र जान कर उसकी सेवा करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। यह संसार में स्पष्ट है॥ ६६॥

गोत्वं यदाशु लभते निजकर्मवेगा-
त्तत्रापि दुग्धजलबालतृणानि भुङ्क्ते।
शेते वसत्यनुवदत्यनुमोदते वा
तेष्वेव बान्धवजनेषु कृतानुबन्धात् ॥६७॥

यदि निज कर्मों के अनुसार पशुता को प्राप्त होता है तो वहाँ भी दूध, पानी, घास पाया करता है और वहीं सोता है, बैठता है, बोलता है और प्रसन्न होता है॥६७॥

एवं पतङ्गकृमिकीटभवेषु नाना-
मार्गेषु तत्तदुपसाधनभूषितेषु।
जीवो जगत्यनुदिनं जनने मृतौ वा
तिष्ठन्प्रयाति भुवनेषु कृतैः स्वकृत्यैः ॥६८॥

इस प्रकार उन उन सामग्रियों से सुन्दर पतंग, कृमि आदि-जन्य नाना मार्गों में रहता हुआ जीव प्रति दिन संसार में जन्म या मरण-रूप से आवागमन में फँसा हुआ अपने किये हुए कर्मों से नाना लोकों में घूमता रहता है॥ ६८॥

अत्यन्तनीचतरकर्मवशेन लोके
वृक्षाभिधामपि गतिं समवाप्य शङ्के।
रूपान्तराणि परिवर्तयते समन्ता-
ज्जीवोयमीश्वरफलानुगमैरुपेतः ॥६९॥

अत्यन्त नीच कर्मों के वश से वृक्षरूपता को प्राप्त होकर ईश्वर के दिये हुए अपने कर्मों का फल भोगता हुआ जीव नाना रूपों में आया जाया करता है॥ ६९॥

लोके रथाङ्गपरिवर्तिनि लक्षशोऽत्र
जीवो गतागतफलानि समापयन्सन् ।
मुक्तिं न याति यदि याति तदान्तरिक्षे
सूक्ष्माणुभिः सह स तिष्ठति वातबद्धः ॥७०॥

रथ-चक्र के समान चलते फिरते इस संसार में जीव लाखों योनियों में आवागमनों के द्वारा आता जाता हुआ पहले तो मुक्ति को प्राप्त ही नहीं होता और जो होता भी है तो वायु-रूप में संबद्ध होकर अंतरिक्ष के बीच परमाणुओं के साथ रहा करता है ॥ ७० ॥

एवं वदत्यखिलयोगपतौ समस्ता
विद्वद्गणैरुपचितापि सभावतस्थे ।
विश्रान्तवीचिरधरीकृतसर्वतोया
वेलेव सागरवरस्य विमूकभावात् ॥७१॥

महर्षिजी के ऐसे कहने पर नाना विद्वानों से भरी हुई वह सार्वभौम सभा गम्भीर समुद्र-वेला के समान शान्ति को प्राप्त होगई ॥ ७१ ॥

वेदान्तरे जवनिकापतनाय संस्थे
विश्रम्य नागदलचर्वणदत्तचेताः ।
नानादिदृक्षुजनसंशयनिर्णयाय
योगी जगाद पुनरप्यपरां गिरं ताम्[1] ॥७२॥

कुछ देर के बाद दूसरे वेद का पर्दा बदलने पर वह महर्षि पान खाने से अपना परिश्रम दूर कर नाना विद्वानों का संशय दूर करने के लिए फिर भी अमृतरूप व्याख्यान देने लगे ॥ ७२ ॥

तीर्थं तदेव निगदन्ति बुधाः प्रशस्तं
वेदानवाप्य सकलाङ्गपरान्नु यस्मिन् ।

---

१ तां प्रसिद्धाम् ।

मृत्योर्मुखाच्च्युतिमवाप्य विमुक्तदुःखो-
जीवोऽमरत्वमुपयाति निरस्तदोषः ॥७३॥

पण्डित जन तीर्थ उसी को कहते हैं जहाँ पर जाकर छः अंगों सहित चारों वेदों को पढ़कर, निरस्तदोष जीव मृत्यु के डर से छुटकारा पा, अमर पदवी को प्राप्त हो जाता है। ऐसा स्थान केवल गुरुकुल ही हो सकता है ॥ ७३ ॥

गङ्गादिसङ्गमपयोधिजलेषु यर्हि
तीर्थत्वबुद्धिमाधिगम्य जनोऽमरः स्यात्।
मन्ये न कोपि भुवनेषु तदानुतिष्ठे-
त्तिष्ठेच्च तर्हि न फलोपगमः समेयात् ॥७४॥

गङ्गा आदि नदियों के संगमों में तथा समुद्रों में जो तीर्थ-बुद्धि से स्नान करके मनुष्य अमर हो जाय तो सारा ही भारतवर्ष अमर पदवी को प्राप्त होना चाहिए। यदि नहीं होता तो उन तीर्थों का माहात्म्य विफल मानना चाहिए ॥ ७४ ॥

गङ्गेति नाम कथनेन जनो यदि स्या-
न्मुक्तः शतैकमितयोजनतोपि मन्ये।
नाना नदीनदपयोनिधिकीर्तनेन
सर्वेपि मुक्तदुरिताः प्रभवेयुरारात् ॥७५॥

जो मनुष्य एक गङ्गा के नाम लेने से ४०० चार सौ कोस पर बैठे हुए भी मुक्ति को प्राप्त हो जाय तो सारे भारतवर्ष में फैली हुई नर्मदा आदि और नदी तथा शोणभद्र आदि नद और समुद्रों के नाम से तो फिर पृथिवी मनुष्यों से सर्वथा ख़ाली होजानी चाहिए ॥ ७५ ॥

तीर्थोपकण्ठगतपत्तनमानवाना-
मेकान्ततः प्रतिगतेऽविफलेऽमरत्वे।
कुत्राकृतं क्व विकृतं क्व कृतं क्व सत्यं
पापं क्व पुण्यमपि कुत्र शुभाशुभं क ॥७६॥

जो तीर्थों का माहात्म्य सच्चा है तो उनके आस पास बसे हुए ग्रामों में रहने वाले मनुष्यों को एक तरफ़ से मुक्ति हो जाने पर सब बस्तियाँ उजाड़ हो जानी चाहिए और फिर अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, करा-धरा, कुछ भी नहीं होना चाहिए ॥ ७६ ॥

कालं यमाप्य किल तीर्थमतिर्जलेषु
लोकैः कृता तदवधेरहहप्रकामम् ।
दारिद्र्यदुःखभयशोकविमोहयोगाः
प्रादुर्बभूवुरतिमन्दमतिप्रयोगाः ॥७७॥

जब से भारतवर्ष में मनुष्यों ने जल में तीर्थ-बुद्धि की है तभी से नाना मतों का समावेश, दरिद्रता, भय, रोग, शोक, मोह अधिक बढ़ने लगे हैं ॥ ७७ ॥

सत्यानि तातगुरुमातृपदोदकानि
तीर्थानि मूढमतिभिः प्रविहाय लोके ।
कुण्डोदकेषु बहुकोलविलोडितेषु
तीर्थत्वबुद्धिरधुना विहिता ततोदः ॥७८॥

जबसे अज्ञानी मनुष्यों ने सच्चे माता, पिता, गुरु की सेवा छोड़ कर तालावों के पानी में तीर्थ-बुद्धि की है तभी से नाना पापों का प्रादुर्भाव हो गया है ॥ ७८ ॥

मिथ्याप्रशस्तियुततीर्थजलोपकण्ठे
वासानवाप्य सुलभोदरपूरणार्थान् ।
विद्या समस्तसुखदा मनुजैर्विसृष्टा
लब्धा च दीनतरहीनगतिः समन्तात् ॥७९॥

झूंठी प्रशंसाओं से युक्त तीर्थों के ऊपर अपना निवास बनाकर लोगों ने अपनी वेद-विद्या को छोड़ और मागने खाने पर कमर बाँधली इसीसे वे प्रति दिन विद्या-हीन, दरिद्र और दुःखी होते जाते हैं ॥ ७९ ॥

मिथ्यैव कल्पितमिदं प्रतिभाति लोके
तोयेषु तीर्थमननं न बुधैः कदापि ।
विश्वासबुद्धिमधिगम्य विवेचनीयं
बोध्यञ्च सर्वनरकोदयगोपुराभम् ॥८०॥

जलों में तीर्थ-बुद्धि की कल्पना मिथ्या ही है। विद्वान ऐसा नहीं मानते। इसीलिए आर्य जन इसमें विश्वास न करें और सम्पूर्ण नरकों का दरवाज़ा इसे जान इससे सर्वदा बचे रहें ॥ ८० ॥

अद्भिर्वपूंषि विमलानि भवन्ति सत्यै-
श्चेतांसि भूतपदवाच्यमिदं शरीरम् ।
विद्यातपोबलवशाद्धिषणाविशिष्ट-
ज्ञानेन शुद्धिमुपयाति न तीर्थतोयैः ॥८१॥

शुद्ध जल से शरीर, सत्य से चित्त, विद्या और तप से भूतात्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है, तीर्थ जल से नहीं ॥ ८१ ॥

यस्मिन्कृताप्लवन एष मनुष्यलोको-
देवे नियोजितमनाः प्रभवत्यलन्तत् ।
तीर्थं न तीर्थमिदमस्ति जलैः प्रपूर्णं
यन्मध्यगाः सुमतयो मरणं लभन्ते ॥८२॥

जिसके बीच में स्नान करके मनुष्य ईश्वर में दत्त-चित्त होता है बुद्धिमान् जन उसी को तीर्थ कहते हैं। जहाँ पर स्नान करते करते आपही डूब जाय ऐसे कुण्डों के पानी को तीर्थ नहीं कहते ॥ ८२ ॥

लब्ध्वापि मानवशरीरमिदं प्रशस्तं
ये मानवा निगममार्गमपास्य लोके ।
यादृच्छिकान्यभिसरन्ति मतानि तेऽरं
नाशम्प्रयान्ति किमतःपरमत्र वाच्यम् ॥८३॥

इस संसार में जो हज़ारों वर्षों के कमाये हुए पुण्यों के बदले में पाये हुए इस मनुष्य-देह को जैसे तैसे पाकर वेदोक्त कर्मों को नहीं करते और यथेच्छ नाना मतों का अवलम्बन करते हैं वे सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८३ ॥

एवं निरस्तबहुतीर्थपथः स योगी
लोके पुराणकथनामपि नाशमूलाम् ।
मत्वा तदुन्मुखमपि स्वमनः प्रचक्रे
चक्रे च खण्डनमलं निजवाग्विनोदैः ॥८४॥

इस प्रकार पूर्णरूप से तीर्थों की लीला का खण्डन कर महर्षि ने इस संसार में पुराणों की कथाओं को भी नाश का मूल समझ कर व्याख्यान देते समय उनका खण्डन किया ॥ ८४ ॥

येयं पुराणरचना मनुजैर्नवीना
विख्यापितास्ति भुवने नरकप्रधाना ।
सापीदृशं विषयभावफलं प्रसूते
यत्प्राप्य मानवशरीरमिदं न यायात्[1] ॥८५॥

नरकों में ले जाने वाली यह जो पुराणों की नवीन रचना मनुष्यों ने इस संसार में फैलाई है वह भी ऐसा बुरा फल देती है जिसको प्राप्त हो मनुष्य कदापि मनुष्य-जन्म नहीं पा सकता ॥ ८५ ॥

ऋष्यादिसज्जनमिषेण नवानि तेषु
वाक्यानि वेदविधिभेदपराणि यत्नात् ।
विन्यस्य पूर्वऋषयोपि कलङ्कलिप्ताः
किं नो कृताः कपिलदेवमुखा विमूढैः ॥८६॥

उन पुराणों में यत्नों से वेदों के विरुद्ध वचनों को नवीन रूप से रख कर नाना ऋषियों के नामों को कलंकित करने के लिए क्या मूर्खों ने बीड़ा नहीं उठाया है ? ॥ ८६ ॥

---

१ जीव इति शेषः ।

वेदान्तदर्शनकरः क्व मुनीश्वरोसौ
व्यासः क्व भागवतलेखकबोपदेवः ।
मन्दैरमन्दचरितोपि समं प्रयुक्तो-
मन्येऽसमानरचनापटुभिः पुराणैः ॥८७॥

वेदांतदर्शन के बनाने वाले कहाँ महर्षि व्यास और कहाँ भागवत का बनाने वाला बोपदेव ! तथापि अज्ञों ने उन दोनों की रचनाओं में भेद न जानकर बोपदेव की रचना को व्यासजी के नाम से प्रसिद्ध कर दिया ॥ ८७ ॥

कृष्णां शिवं हरिमुखानपि राजवर्यान्
मिथ्यावचोभिरभितः परिवेष्टयन्ती ।
शङ्के परस्परविरोधवशान्नितान्तं
विश्वं निपातयितुमेव पुराणदीक्षा ॥८८॥

शक्ति, शिव, हरि इनको भी पौराणिकों ने झूंठा दोष लगा लगा कर दुनिया में विद्वेष बढ़ाने की गरज़ से कहीं शिवपुराण, कहीं विष्णुपुराण बना कर तैयार कर दिया ॥ ८८ ॥

वेदोदितं विलयमेव जगाम सर्वं
पापोदयः प्रतिपदं प्रजगाम वेगम् ।
नाशं गता ऋषिमुनीशपरम्परा सा
कालाद्यतः किल नवीनकृतिर्बभूव ॥८९॥

जब से इस भारतवर्ष में नवीन पुराणों का प्रादुर्भाव होने लगा तभी से वेद का प्रचार उठ गया; प्रति दिन पापों का उदय होने लगा; ऋषि-मुनियों की चलाई हुई प्रथा नष्ट हो गई ॥ ८९ ॥

वक्तव्यमस्ति किमतः परमत्र लोके
वर्णाश्रमादिरचनैव मनुप्रदिष्टा ।

नीता लयं पुनरिदं जगदप्यनन्तम्
सम्प्रापितं नवमतानुगतैः पुराणैः ॥९०॥

इससे अधिक क्या कहना है कि इस संसार में मनुस्मृति में बतलाई हुई वर्णाश्रमों की व्यवस्थाही इन नये पुराणों ने नाश कर दी। भारतवर्ष को भी उच्च पदवी से पाताल में गिरादिया ॥ ९० ॥

कुत्रापि कंसचरितं क्वचिदप्युपात्तं
रामादिमानवकृतेरनुवर्तनं तत्।
गोपीविलासकरणं दधिचौर्यलीला
कुत्रापि चीरहरणादिकमप्रशस्तम् ॥९१॥

इन पुराणों में कहीं रामलीला, कहीं कृष्णलीला, वर्णन कर सारे विश्व को बहका दिया। कंस का युद्ध, दही का चुराना, चीरों को लेकर वृक्षों पर चढ़ जाना, यह कृष्ण का माहात्म्य वर्णन कर अच्छा काम नहीं किया ॥ ९१ ॥

एवं समस्तमनुजैर्निजकर्मदीक्षा-
मुक्ता पुराणकथनानुगतिः प्रदिष्टा।
लोके यतः समभवत्ततएव मन्ये
नाशो मुनीश्वरगिरामतिबुद्धिगम्यः ॥९२॥

जबसे भारतवर्ष में पौराणिक-लीलायें फैलने लगीं तबसे मनुष्य अपने अपने कर्मों को छोड़कर कुकर्मों में लगने लगे और तभी से ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों का पठन-पाठन का क्रम कम होगया ॥ ९२ ॥

वैधव्यवर्धनपरामपि काश्चिदत्र
लोके नवीनरचनामपरेण पुंसा।
निर्माय सर्वजगतीतलतो नियोगो-
निर्वासितः प्रतिगतोस्ति दिशाम्मुखेषु ॥९३॥

१ पातालम्। २ काशीनाथेन।

एक काशीनाथ ने वैधव्य की वृद्धि के लिए एक 'शीघ्रबोध' पुस्तक को बनाकर इस देश से नियोग को दूर कर दिया। इसीलिए आज कल विधवाओं की अधिकता होने लगी ॥ ९३ ॥

किं किं ब्रवीमि चरितं नववाक्यभाजां
मिथ्याभिचारवचनैरभिपूरितानाम्।
वाक्येषु विश्वसनमेव पुराणनाम्नां
नो कार्यमार्यपदवीं प्रगतैर्मनुष्यैः ॥९४॥

पुराणों का चरित्र मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। यही कहना उचित है कि इनके बनाये हुए पुराणों में आर्य-पुरुषों को कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए ॥ ९४ ॥

यद्दर्शनादपि मतिर्विमतित्वमेति
चित्तं विकारमुपयाति वचोपि भेदम्।
सा दूरतः कविजनैरलमाशु हेया
सर्वा पुराणचरितानुगता कथापि ॥९५॥

जिनके दर्शनों से मति भ्रष्ट हो जाती है, मन विकार को प्राप्त होजाता है, वाणी मिथ्या दोषग्रस्त हो जाती है, ऐसे पुराणों को बुद्धिमान् जन कदापि न देखें ॥ ९५ ॥

एवं न यावदयमात्मपरः स्ववाचं
पूर्तिं निनाय कथमप्यपरार्थनाभिः।
तावत्तदीयनवकीर्तिनटी सभाया-
मागत्य लास्यमकरोन्महनीयवेशा ॥९६॥

इस प्रकार जब तक महर्षिजी ने अपना वक्तव्य भी पूर्णरूप से समाप्त न किया तभी तक मनुष्यों को विश्राम देने के लिए कीर्ति विलसित प्रारम्भ होने लगा ॥ ९६ ॥

दृष्ट्वा समस्तमनुजानयमेकदेवो-
रङ्गान्तरङ्गपरिहासविलासवद्वान्।

योगक्रियामनुचकार परात्मनिष्ठा-
मन्ते च वाचमुचितां गदितुं समस्थात् ॥९७॥

महर्षिजी भी समस्त सभ्यों को रङ्गशाला में मग्न देखकर अपनी योग-क्रिया में तत्पर होगये। तदनन्तर बहुत मनुष्यों की प्रार्थना से कुछ विषय कहने के लिए फिर उपस्थित होगये॥ ९७॥

दृष्ट्वा मुनिं किमपि वक्तुमुदारभावं
मन्दा बभूव नवनाटकपात्रशोभा।
भासाम्पतौ समुदयं प्रगते क्व भाति
दीपावली करणकारणभावबद्धा ॥९८॥

महर्षिजी को कुछ कहने के लिए तैयार देख कर समस्त नाटक-पात्रों की मण्डली मन्द होगई। ठीक है, सूर्य के उदय हो जाने पर कारण-कार्य-भाव वाली दीपकों की शोभा मन्द होही जाती है॥ ९८॥

अत्रान्तरे विबुधवृन्दमनोविनोदं
कर्तुं पुनर्बुधगुरुः प्रकटीचकार।
वाचं महाश्मपरिपूजनखण्डनोत्थां
भावाभिरामवचनो यमिनां वरिष्ठः ॥९९॥

उसी समय महर्षि विद्वानों का चित्त फिर भी प्रसन्न करने के लिए मूर्ति-पूजा का भारी विषय लेकर नाना युक्ति और प्रमाणों के द्वारा खण्डन करने लगे॥ ९९॥

लब्धं न वेदविषये मुनिभिर्न यत्र
दत्तास्ति सम्मतिरलं विहितं न शास्त्रे।
पाषाणपूजनमिदं कथमत्र लोके
सम्भूतिमाससमिति मे नितरां विषादः ॥१००॥

जो ढूँढ़ने पर भी वेदों में नहीं पाया जाता, मुनियों ने जिसमें सम्मति नहीं दी, शास्त्रों में जिसका नाम तक नहीं मिलता ऐसा यह पाषाण-पूजन कब से चला ? यह बड़े दुःख का अवसर है ॥ १०० ॥

कुत्रेश्वरः सकलविश्वगतः क्व चेयं
तद्भावना लघुदृषच्छकले प्रवृत्ता ।
मन्येऽनुजैनमतमेव समाश्रितेयं
मन्दैर्महान्धनिरयाभिगमप्रवृत्तिः ॥१०१॥

कहाँ सर्वशक्तिमान् ईश्वर, कहाँ छोटे से पत्थर के टुकड़े में उसकी भावना ! मालूम होता है, कि जैन और बौद्ध मत के बादही यह लीला फैलाई गई है । क्योंकि उनसे पहले इतिहासों में इन बातों का वर्णन नहीं मिलता ॥ १०१ ॥

वेदोपि यं करणवर्जितमेव धत्ते
शास्त्रेपि यस्य जठरागमनं न दिष्टम् ।
तस्येश्वरस्य कथमेकतनौ विकारो-
मृग्यः कपोलपरिकल्पितवाग्विलासैः ॥१०२॥

वेद भी जिसको अरूप बतला रहा है, शास्त्रों में भी जिसका पेट के भीतर आना नहीं लिखा, उस ईश्वर का मनुष्यों की बनाई हुई कपोल-कल्पनाओं से एक शरीर में आना किस प्रकार माना जाय ? ॥ १०२ ॥

यः कारणं सकलसंसृतिसम्भवस्य
वेदेष्वलं विलिखितोस्ति कथं नु तस्य ।
आवाहनं किमुपले परतो विसर्गः
प्राणागमश्च रचितो निगमानभिज्ञैः ॥१०३॥

---

१ करणं शरीरम् । २ कुत्सितोपले ।

जो ईश्वर समस्त संसार का वेद में कारण माना गया है, उस ईश्वर का पाषाण की बनाई हुई मूर्ति में आवाहन और विसर्जन तथा प्राण-प्रतिष्ठापन वेद के न जाननेवाले अज्ञानी लोग न मालूम किस तरह करते हैं ? ॥१०६॥

कुत्राश्मनिर्मितमुखादिमयी जडा सा
मूर्तिः क्व शक्तिमहितो जगदेकनाथः ।
मन्दैर्मुधैव रचितेयमहो नवीना
लीला निजोदरमहोदधिपूरणाय ॥१०४॥

कहाँ शास्त्रों के द्वारा बनी हुई जड़-पाषाणों की मूर्तियाँ और कहाँ संसार भर का प्रबन्ध करने वाला परमेश्वर ! मेरी सम्मति में तो उद्यम-शून्य अज्ञ लोगों ने अपने पेट भरने का यह खेल बना रक्खा है ॥ १०४ ॥

येन स्वसृष्टिसमये सकलेष्टदानि
भूतोयवह्निरविचन्द्रनिभानि तानि ।
वस्तूनि विस्तृतिमलं बहु यापितानि
तस्येश्वरस्य मनुजैः क्रियते प्रहासः ॥१०५॥

जिस ईश्वर ने अपनी बनाई हुई सृष्टि भर में समस्त प्राणियों के लिए सुख देनेवाली हज़ारों चीज़ें बनाकर पहले ही से तैयार कर दीं, उस ईश्वर की इन लोगों ने कैसी हँसी उड़ाई है ॥ १०५ ॥

शून्यां विधाय विकृतिं परमेश्वरस्य
नैवेद्यदीपकजलादिपदार्थजातम् ।
संस्थाप्यते तदपि दर्शनमात्रमेव
नो वस्तुतो गतधियां धिगिमां प्रवृत्तिम् ॥१०६॥

आज कल के लोगों ने उस सर्वव्यापी परमेश्वर की शून्य कोठरी में एक छोटी सी मूर्ति रखकर उसके सामने दो बताशे, थोड़ा सा पानी रखकर क्या दिल्लगी उड़ाई है ! ॥ १०६ ॥

जैनैः पुरा सुगतमूर्तिरलं प्रदिष्टा
लोपङ्गते सुगतनाम्नि जने कथञ्चित् ।

पौराणिकैरपि ततो रचिता नराणां
रामादिनामखचिता प्रतिमा जगत्याम् ॥१०७॥

सबसे पहले जैनों ने सुगताचार्य के मरने पर उसकी प्रतिमा बना कर मन्दिरों में रक्खी थी। उनकी देखादेखी पौराणिकों ने भी रामचन्द्र आदि महात्मा की मूर्तियाँ बना बना कर अपने मन्दिरों में रखलीं ॥ १०७ ॥

तेषाम्मते वसनभूषणवर्जिताऽऽस्ते
मूर्तिः परत्रवसनाभरणादिरम्या ।
वेविद्यते जगति या सकलेपि वेगात्
सर्वापि शङ्करपदैरिह नाशितैव ॥१०८॥

जैनों के मत में वस्त्राभूषणों रहित नग्न मूर्ति का स्थापन हुआ करता था। पौराणिकों ने भी उनसे विरुद्ध वस्त्रालंकार सहित युगल मूर्ति को मान लिया। परन्तु जगद्गुरु शंकर स्वामी ने दोनों प्रकार की मूर्तियों का पूर्णरूप से खण्डन किया और शाक्त, पाशुपत, कापालिक आदि मतों का भी अच्छे प्रकार खण्डन किया ॥ १०८ ॥

कुत्रापि कश्चिदवशेषमितो जगत्यां
जैनो बभूव समये किल शङ्करस्य ।
तेनेदृशी पुनरियं जडता जगत्यां
तेने ततः प्रचलितेयमहोत्रपूजा ॥१०९॥

जब शंकर स्वामी ने राजा सुधन्वा को अपने मत में कर एक ओर से सब जैन-बौद्धों को नामावशेष कर दिया उसी समय कोई दबा-छिपा जैनी बच गया था। उसने फिर भारतवर्ष में अपना ढंग फैलाया जिसकी देखा-देखी पौराणिक भी वैसे ही करने लगे ॥ १०९ ॥

सन्त्यज्यतामतइयं विबुधैः प्रकामं
पूजा दृषच्छकलकल्पितमूर्तिभावा ।

भावावलोकनपरा परमेश्वरस्य
चित्ते सदैव भवताद्भवतां सुबुद्धिः ॥११०॥

इसलिए हे विद्वानो, पाषाण के टुकड़ों में तुम ईश्वर-बुद्धि को छोड़ो। ईश्वर तुम्हारे लिए वेद-विषयों के देखने वाली सुबुद्धि को सर्वदा दें। यह महर्षिजी का आशीर्वाद पूर्वार्ध के अंत में जानना ॥ १० ॥

एवं यतौ वदति पुण्यगिरं समस्ता
विद्वत्सभा फलितभाववती बभूव।
मेघे यथाऽविरतवर्षिणि सा धरित्री
सस्यानुरूपफलिनी भवति प्रसन्ना ॥१११॥

पूर्णरूप से वर्षा करने वाले मेघों के समागम में जैसे पृथिवी प्रफुल्लित होकर नाना प्रकार के आनन्दों को दिखाती है वैसेही महर्षिजी की अमृत-रूपी वाणी सुनने पर समस्त विद्वानों की सभा निःसन्देह होकर परमानन्द को प्राप्त होगई ॥ १११ ॥

दृष्ट्वा नटीविलसितं समवाप्य चाज्ञां
योगीश्वरस्य निजयानवरैर्जगाम।
नानाभुवस्तलगतानि पुराणि हर्षा-
देषा सभान्तरजनावलिरादरेण ॥११२॥

महर्षिजी के व्याख्यान के अनन्तर रङ्ग-मण्डप के अन्तर्गत समस्त विद्वानों की मण्डली थोड़ी सी देर तक यशोरूपिणी नटी का विलास देख योगीश्वर से आज्ञा पाकर, आदरपूर्वक भारतवर्ष के अन्तर्गत अनेक नगरों को यथोचित यानों में बैठ बैठ कर चलने लगी ॥ ११२ ॥

लोके गते नवनटीयमलं प्रयाता
चन्द्रोपकण्ठमितरापि ययौ यथेच्छम्।
पात्री दिगङ्गनगतानि शुभस्थलानि
गायन्यशोस्य परमं परितः प्रसादात् ॥११३॥

---

१ पात्राणां समूहः पात्री। समूहार्थेऽयान्तत्वान्ङीप्।

विद्वानों के जाने पर यशोरूपिणी नटी भी चन्द्रलोक को चली गई। कीर्ति के शुक्लत्व होने से चन्द्रलोक में समावेश होना उचित है। वेदरूप नाटक-पात्री भी दिशाओं के अन्तर्गत नाना शुभ स्थलों को अपनी अपनी इच्छा के अनुकूल आनन्दपूर्वक चली गई। समस्त भारतवर्ष में वेदों का प्रकाश हो गया, यह अभिप्राय है॥ ११३॥

योगीश्वरोपि जयबद्धमनाः प्रकामं
मत्वा जगत्त्रयमिदं भवनं जयस्य।
हर्षेण वर्षितुमशेषजनावलोक्यं
मेघत्वमाप निगमोदितधर्ममध्यम् ॥११४॥

विजय में दत्त-चित्त योगीश्वर भी तीनों लोकों को जय का स्थान समझ कर समस्त सुखों के देने वाले धर्मरूप जल के वर्षाने की इच्छा से मेघ के समान माननीय बन गये॥ ११४॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये-ऽवैदिक-मत-निराकरणो नाम दशमः सर्गः।
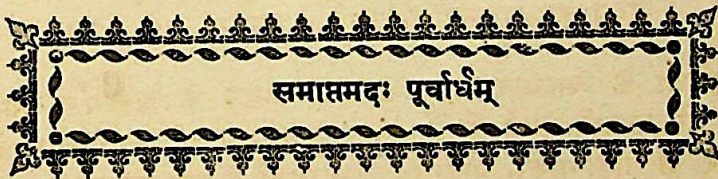
समाप्तमदः पूर्वार्धम्

एकादशः सर्गः

अथ स्वविद्याविषयोत्सुको यति-
दिंगन्तरेषु प्रविसारयन्प्रभाम् ।
मुहुर्दिदीपे तिमिरं विदारयन्
दिनोदये भानुरिवातिदुःसहः ॥१॥

इसके अनन्तर वेद-विद्या के प्रचार में मन लगानेवाले समस्त दिशाओं में प्रकाश फैलानेवाले, अंधकार के मिटानेवाले, उदयकाल के सूर्यरूप स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रकाश करने लगे ॥ १ ॥

यथायथं फल्गुपुरे विनिर्मितं
समस्तवेदोदितपुस्तकोच्चयम् ।
विमुद्रयिष्यन्प्रययौ स काशिकां
निजप्रतापैरधरीकृतामपि ॥२॥

फ़र्रुख़ाबाद में बनाये हुए अपने ग्रन्थों को छपाने के लिए अपने बल से अनेक बार परास्त की हुई काशी को आप फिर भी पधारे ॥२ ॥

स कंम्पिनीशाय समर्प्य पुस्तका-
न्यगादरं जौनपुरं दिनत्रयम् ।

१ कम्पयति चालयति जनानिति कम्पिनी ।

विरम्य तत्राप्युपदिश्य निर्ययौ
पुरीमयोध्यामति हर्षनिर्भरः ॥३॥

वहाँ—लाजरस कंपनी के मैनेजर को—अपनी पुस्तकें देकर आप जौनपुर पहुँचे और तीन दिन वहाँ ठहर कर उपदेशों द्वारा समाज स्थापित करके वहाँ से आनन्दपूर्वक अयोध्या को चले गये ॥ ३ ॥

निरुध्य तीरे सरयूनदीगते
गतिं निजामेष विशेषदीप्तिमान् ।
तथा प्रचक्रे रघुनाथखण्डनं
यथा न कोप्यत्र चकार निर्भयः ॥४॥

अयोध्या पहुँच कर सरयू नदी के तट पर आपने अपने ठहरने का प्रबन्ध किया और निर्भय होकर अवतारवाद का ऐसा खण्डन किया जैसा कि आज तक यहाँ पर किसी ने नहीं किया था ॥ ४ ॥

किमस्ति रामे परमात्मलक्षणं
विलक्षणं किं प्रतिभाति लक्ष्मणे ।
अजस्य सूनावपि किं मुनीश्वरो-
विवासितो येन मतङ्गबुद्धिना ॥५॥

अब उसी को दर्शाते हैं—रामचन्द्रजी में परमात्मा का कौनसा लक्षण घटता है ? कोई नहीं । लक्ष्मण में औरों से क्या विलक्षणता है ? कुछ भी नहीं । हाथी समझकर जिसने रात्रि में श्रवण ऋषि के इकलौते पुत्र को मारडाला ऐसे अज के पुत्र दशरथ में भी क्या विशेषता थी ? कुछ नहीं ॥५॥

न कर्मभोगो विलयं प्रयात्यलं
सहस्त्ररामैरपि कैकवर्णना ।
विनिर्मितं यत्परमात्मना स्वके
ललाटदेशे तदहो विलोक्यताम् ॥६॥

---

१ मतङ्गस्य बुद्धिरिव बुद्धिर्यस्य स मतङ्गबुद्धिस्तेन ।

जो परमात्मा ने हमको कर्मों का भोग दिया है वह एक रामचन्द्र के नाम से क्या, हज़ारों रामचन्द्रों के नाम लेने से भी नहीं मिट सकता। इसलिए कर्मों के अनुकूल फल भोगते हुए अच्छे मार्ग में प्रवृत्त हो ॥ ६ ॥

शरीरमेतन्न पुनर्भवादृशां
भविष्यतीति प्रविचार्य मे मनः ।
भवादृशेष्वेव जनेषु सर्वदा
निजोपदेशैः प्रकरोति सम्मदम् ॥७॥

यह मनुष्य शरीर आप लोगों को फिर दुबारा सहज नहीं मिलेगा। ऐसा विचार कर मैं आप लोगों में उपदेश देने को उद्यत हुआ हूँ; और मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ७ ॥

इतिप्रकारैः कतिचिद्दिनान्ययं
विरम्य योगी सरयूनदीतटे ।
जगाम लोकैरनुमोदितस्ततो-
विलक्षणं लक्ष्मणपत्तनं क्रमात् ॥८॥

इस प्रकार कुछ दिन सरयू नदी के तट पर आप उपदेश देते रहे। फिर बहुत से मनुष्यों के बुलाने पर आप यहाँ से लखनौ चले गये ॥ ८ ॥

विधाय तत्रोत्तममन्दिरे स्थितिं
महोपदेशानपि चोत्तमोत्तमान् ।
मुदैव मेने विजयं जनोद्धतं
स योगिवर्यो नुतपादपङ्कजः ॥६॥

वहाँ पर आप रायबहादुर विक्रमसिंह की कोठी में ठहरे और बराबर उपदेशों द्वारा अनेक पुरुषों को वैदिक धर्म में प्रवृत्त देख कर अत्यन्त संतुष्ट हुए ॥ ९ ॥

समागतैरात्मसमीपमादरान्
महाशयैः साकमयं यतीश्वरः ।

समाधिवाग्भिर्विनयन्विशङ्कितां
निनाय कालं कमपीह नीतिगः ॥१०॥

लाला ब्रजलाल आदि कई महाशय आप से धार्मिक विषय पर बात-चीत करते थे और अपने सन्देह निवारण किया करते थे ॥ १० ॥

विदेशवर्णागमवाञ्छया मुनि-
र्विदेशवासोत्सुकचित्तकल्पनैः ।
विनीय कालं विनयैर्नयैरलं
जगाम तस्मादपि पत्तनादरम् ॥११॥

लोगों के कहने सुनने से यहाँ पर आपने कई भाषाओं में लिखना आरम्भ कर दिया था । वह इसलिए कि यदि इस देश से बाहर जाने का काम पड़े तो ये भाषायें काम आवें ॥ ११ ॥

पुरान्तरे विश्रममाप्य योगिना
कृता तथा सा महती जनस्थितिः[1] ।
महोपदेशैरधुनापि सा यथा
विवर्धते चन्द्रकलेव नित्यशः ॥१२॥

कुछ दिनों के बाद स्वामीजी लखनौ से शाहजहाँपुर चले गये और वहाँ जाकर उपदेशों के प्रभाव से बड़ा भारी समाज स्थापन किया ॥ १२ ॥

निशम्य तज्जैत्रयशोविजृम्भितं
बुधाः समेता इह दर्शनोत्सुकाः ।
न सम्ममुर्हर्षवशेन योगिनां-
निदर्शनं किं न करोति मङ्गलम् ॥१३॥

आपके यश को सुनकर वहाँ पर इधर उधर के बहुत से पण्डित आकर आपका दर्शन किया करते थे; क्योंकि योगियों का दर्शन क्या क्या मङ्गल नहीं करता ? ॥ १३ ॥

---

१ सामाजिकजनस्थितिः ।

पुनर्बरेलीत्यभिधे पुरान्तरे
धनप्रगोप्तुर्नववाटिकामितः ।
कृतार्थयन्दर्शनभाषणोत्सुका-
नयं प्रतस्थे नगरान्तरं जनान् ॥१४॥

यहाँ से फिर आप बरेली चले गये और वहाँ पर ख़ज़ांची लक्ष्मीनारायण की कोठी में, जो कि बग़ीचे के भीतर थी, निवास किया। साथही उपदेशों द्वारा दर्शन एवं भाषण के लिए आये हुए मनुष्यों को कृतार्थ करते रहे ॥ १४ ॥

स कर्णवासे निजपूर्वमानवै-
रलं वृतोनल्पदिनानि संवसन् ।
समं समन्तादभिवर्द्धितोत्सवं
ययौ हरिप्रस्थमनन्तकीर्तिदम् ॥१५॥

यहाँ से चलकर आप कुछ दिन कर्णवास ठहरे और पहले मिले हुए ठाकुर लोगों से मिलकर दिल्ली-दरबार में, जो कि सन् १८७७ ई० को हुआ था, उपदेश देने के लिए पहुँचे ॥ १५ ॥

समागते पूर्वत एव निर्मिते
यथायथं दाडिमवाटिकोदरे ।
विरम्य रम्ये पटमण्डपे याति-
स्ततान सर्वात्मतयैव सद्यशः ॥१६॥

आपके आने से पहले ही दिल्ली में शेरमल के अनारबाग़ में कई सज्जनों ने आपके ठहरने के लिए शामियाने और डेरे लगा दिये थे। उन्हीं में आपने जाकर विश्राम किया और अपना काम आरम्भ किया ॥ १६ ॥

निजं समुद्देश्यमिदं समभ्यधा-
दयं महात्मा नितरां भुवस्तले ।

महाशयान्वैदिकधर्मवृद्धये
समागतोहं पुरमेतदादरात् ॥१७॥

आपको न जानते हुए कई पुरुषों ने आपके पास आकर दरबार में आने का कारण पूँछा। आपने उसके उत्तर में यही कहा कि मैं यहाँ पर वैदिक धर्म के प्रचार के लिए आया हूँ ॥ १७ ॥

यथा समस्ते भुवने विजृम्भतां
स वैदिको धर्मपथः सदातनः ।
तथा भवद्भिः क्रियतामसंशयं
जयो भविष्यत्यखिलेपि भूतले ॥१८॥

समस्त भारतवर्ष में जिस प्रकार शीघ्र ही सनातन वैदिक धर्म की प्रवृत्ति होसके ऐसा आप भी प्रयत्न करें। अवश्य ही आप लोगों का जय होगा ॥ १८ ॥

इति ब्रुवत्येव यतौ महाशयाः
परस्पराभाषणजातलालसाः ।
प्रचक्रुरेतत्कथनं फलोदयो-
यथाऽऽशु नूनं प्रबभूव सर्वशः ॥१९॥

आपके ऐसे वचन सुनकर वहाँ पर आये हुए समस्त महाशयों ने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ ऐसा उद्योग किया, जिसका परिणाम शीघ्र ही निकल आया ॥ १९ ॥

अयं च योगी बहुसज्जनावृतं
निजं महं वीक्ष्य महोपदेशनैः ।
सपारिडतं वेदमतप्रचारणं
चकार कारुण्यरसोर्मिहर्षितः ॥२०॥

आपने भी अपने उत्सव को अनेक सज्जन एवं पण्डितों से भरा हुआ देखकर आनन्दपूर्वक वैदिक-धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया ॥२०॥

समागतः कोपि दिगन्तरादरं
विभिन्नभाषाकथनो जनेतरः ।
परं समाभाष्य जनेतरव्यपा-
दयं ययौ हर्षमनन्तभावदम् ॥२१॥

एक दिन एक ईरान के मौलवी, जो केवल फ़ारसी बोल सकते थे, आप के पास आये। आपने भी एक कायस्थ के द्वारा उनसे बात चीत की। अनन्तर वह प्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गये ॥ २१ ॥

प्रसङ्गतो जाम्बवतीपुरेश्वर-
स्तथा च काश्मीरभुवो महेश्वरः ।
महोदयस्यास्य विलोकनेच्छया
निजानुजं दूतकृतावयोजयत् ॥२२॥

कुछ दिनों के बाद महाराजा जंबू और महाराजा कश्मीर ने आपके दर्शन के लिए आपके पास अति शीघ्र बाबू नीलांबरजी को भेज दिया ॥२२॥

स चापि धीमच्चरणाब्जयोरलं
प्रणम्य नीचैःकृतमौलिमण्डलः ।
बभाण वाचं निजवृत्तभूषितां
यथाकथञ्चिद्बहुहर्षगद्गदः ॥२३॥

वे भी तुरन्तही आपके समीप जाकर, शिर झुकाकर प्रणाम करके अत्यन्त हर्ष से गद्गद हो, पूँछने पर यों कहने लगे ॥ २३ ॥

दिदृक्षवस्ते मम पूर्वजाः प्रभो
नितान्तमाहूतिकृते समादिशन् ।

इमं जनं तद्वदनीयमुत्तरं
किमत्र कर्तव्यमिहास्ति माहशाम् ॥२४॥

महाराज ! मेरे पूर्वजों ने आपके दर्शनों की लालसा से आपके समीप मुझको सूचना के लिए भेजा है। इसलिए कहिए, अब उनसे जाकर मैं क्या कहूँ ? ॥ २४ ॥

इति प्रसन्नादरमौक्तिकाङ्कितां
निशम्य वाचं सदयो यतीश्वरः ।
तदुत्तरे स्वीकृतिबोधिकां गिरं
जगाद तस्मै स जगाम तत्परम् ॥२५॥

इस प्रकार विनय से भरी हुई उसकी वाणी को सुनकर दया के सागर स्वामीजी उनसे कहने लगे कि अच्छा मैं उनसे अवश्य मिलूँगा। इतना कहने पर वे अति शीघ्र ही लौट गये ॥ २५ ॥

अथान्तरे तत्र गणेशशास्त्रिणा
विरोधभावं गदता महीश्वरे ।
निवेशितो मन्दिरभञ्जनोदयो-
यतो न सङ्गः प्रबभूव योगिनाम् ॥२६॥

इसी बीच में गणेशशास्त्री ने महाराज से मिलकर आपसे न मिलने के लिए इतना आग्रह किया कि जिससे महाराज रणधीरसिंहजी न मिल सके ॥ २६ ॥

परन्तु पश्चान्नितरां विधेर्वशा-
द्बभूव सामाजिकधार्मिकोदये ।
विधर्म्मिणां तत्र गणेशसूरिणां
पराजयः कोपि समस्तहर्षदः ॥२७॥

परन्तु जब सन् १८९२ ई० में वर्तमान महाराजा प्रतापसिंहजी के सामने आर्य्यसमाज के साथ पौराणिकों का शास्त्रार्थ हुआ तब गणेश शास्त्री हार गये ॥ २७ ॥

अनन्तरं तत्र यतीश्वराज्ञया
सह्हुल्कराधीशवरो महाशयान् ।
निमन्त्रयामास विचारहेतवे
समाजकृत्यस्य यथोचितव्ययैः ॥२८॥

इसके अनन्तर स्वामीजी की आज्ञा से महाराजा हुलकर ने अपने ख़र्च से समस्त राजाओं को एकत्र कर विचार के लिए प्रस्ताव किया ॥ २८ ॥

निजापराधं समयानुपस्थितौ
निवेद्य सर्वाननुयोज्य साधने ।
जगाम पश्चात्प्रबभूव पत्तनं
महाशयानां परमं विचारणम् ॥२९॥

परन्तु किसी आवश्यक कार्य के वश महाराजा स्वयं न ठहर सके। सभा का यथोचित प्रबन्ध करके, स्वामीजी से क्षमा माँग कर, चले गये। उनके चले जाने पर समस्त महाशय सभा में उपस्थित हुए ॥२९ ॥

उपस्थिते सर्वमहाशयव्रजे
यतिर्नियोगादुपगम्य तां सभाम् ।
जगाद सर्वानपि दन्तकान्तिभि-
र्विवर्धयञ्चन्द्रिकयेव सादरम् ॥३०॥

सब महाशयों के एकत्र होने पर स्वामीजी भी उपस्थित हुए और अपने मुख की प्रभा से समस्त सभा को प्रकाशित कर अति मधुर वाणी से बोले ॥ ३० ॥

उपस्थितोयं समयोस्ति धार्मिकाः
परस्परं मैत्र्यमलं विभाव्यताम् ।

विसृज्यतां भिन्नमतानुवर्तनं
प्रवर्धतां वेदमतानुवर्धनम् ॥३१॥

हे धार्मिक जनो ! बहुत दिनों के बाद यह समय उपस्थित हुआ है। इसलिए परस्पर मित्रता से बर्ताव कीजिए। अनेक मतों को छोड़कर एक वैदिक मार्ग लीजिए। एक भाषा, एक लिपि, एक भोजन और एक ही इष्टदेव मानिए ॥ ३१ ॥

न यावदस्मिञ्जगतीतलेऽखिले
नवीननानामतवादकल्पनाः ।
विनाशमेष्यन्ति नु तावदागता
भविष्यति श्रीः कथमेकदेशगा ॥३२॥

जब तक इस भारतवर्ष में अनेक प्रकार के मत-मतांतरों का अच्छे प्रकार नाश न होगा तब तक आई हुई लक्ष्मी कदापि निश्चल न हो सकेगी ॥ ३२ ॥

विलोक्यतां वेदचतुष्टयी परा
निवार्य्यतामन्धपरम्पराऽपरा ।
निवेश्यतां धर्मपथे मतिः स्थिरा
न काप्यतो मे कथनाप्यलं परा ॥३३॥

इसलिए चारों वेदों का पठन-पाठन आरम्भ कीजिए, बहुत दिनों से चली हुई अंधपरम्परा को हटाइए, धर्म में अपनी रुचि लगाइए; बस यही मेरा कथन है ॥ ३३ ॥

इति ब्रुवत्येव यतीश्वरे सभा
विसर्जिताभूत्परमात्मवर्णनैः ।
निवारिता यत्र नितान्तमुद्धता
मदादिपानाशनवृत्तिरादरात् ॥३४॥

स्वामीजी के इस कथन को सुनकर सभा में आये हुए समस्त जनों ने मद्य-मांस का परित्याग किया और उनके कथन का अनुमोदन किया। अंत में मङ्गल-पाठ होकर सभा विसर्जित हुई॥ ३४॥

समाप्तिमाप्ते जनतामहोत्सवे
दयामयो निर्मितभाष्यसूचनाम्।
वितीर्य विज्ञेषु निजम्परिश्रमं
मुदैव मेने फलितं कृपावशात्॥३५॥

सभा के विसर्जन होने पर स्वामीजी ने वेद-भाष्य के विज्ञापन और आर्यसमाज के छपे हुए नियम वितरित किये और मुख्य मुख्य महाशयों को स्वरचित पुस्तकें भी दीं॥ ३५॥

अनन्तरं पश्चिमदिग्भवैर्जनै-
र्निमन्त्रितोयं यमिनामधीश्वरः।
सदुत्तरैरापरितोष्य सत्वरं
मतिं प्रचक्रे गमनाय कुत्रचित्॥३६॥

दरबार के समाप्त होने पर पंजाब के कई महाशयों ने आपको पंजाब में भ्रमण करने के लिए निमन्त्रित किया। आपने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार की॥ ३६॥

स सूर्यकुण्डोपगते महाऽऽलये
कृताधिवासो महतामधीश्वरः।
समस्तपौराणिकमेघमण्डलीं
विदारयन्वैदिकसूर्यवद्बभौ॥३७॥

१६ जनवरी सन् १८७७ ई० को स्वामीजी दिल्ली से प्रस्थित होकर मेरठ पहुँचे और सूर्यकुण्ड पर डिप्टी महताबसिंह की कोठी में ठहरे॥ ३७॥

पुरान्तरं प्राप्य ततः स पण्डिता-
नरं विवादेऽधरतां नयज्जनान्।

निबोधयामास विधिं विधेरलं-
निमन्त्रितोभूत्तत एव केनचित् ॥३८॥

कुछ दिन वहाँ विश्राम करके फ़रवरी के आरम्भ में आप सहारनपुर पहुँचे और पहुँचते ही कुछ ग्रन्थ लिखते रहे और साथही धर्मोपदेश भी करते रहे ॥ ३८ ॥

निमन्त्रितस्थानगतो समुत्सुकै-
र्महाशयैरुच्चपदे निवेशितः ।
स योगिराजो जनतामहोत्सवं
जगाम जैत्रं यशएव वर्धयन् ॥३९॥

इन्हीं दिनों में प्रसिद्ध चाँदापुर के मेले के मैनेजर ने आपको निमन्त्रित किया और सहारनपुर के कई प्रतिष्ठित पुरुषों के कहने से आपने जाना स्वीकार किया ॥ ३९ ॥

समन्ततस्तत्र पुराणपण्डिता-
नयं विचारे निजवाग्विपत्रिभिः ।
निरुत्तरानेव चकार सत्वरं
यदुत्तरं तद्यशएव विस्तृतम् ॥४०॥

वहाँ जाने पर अंबहटा-निवासी चंडीप्रसाद आदि अनेक पण्डितों ने आपसे धर्म-सम्बन्धी प्रश्न किये, जिनका उत्तर आपने बड़ी उत्तमता के साथ दिया ॥ ४० ॥

नवीननानामतविज्ञमण्डिते
नितान्तरम्ये जनतामहोत्सवे ।
निवेशितात्मा स दयामयो बभौ
दिनोदये पङ्कजबोधको यथा ॥४१॥

अनेक मतों के पण्डितों से सुशोभित उस चाँदापुर के मेले में आप इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुए जिस प्रकार दिन निकलने पर सूर्य शोभा को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

कृते विचारस्य कृते महोत्सवे
जनेन केनापि तथाकृतं कृतम् ।
यथा समस्ते भुवनेपि तद्गता
विजृम्भते कीर्तिसुधांशुचन्द्रिका ॥४२॥

१५ मार्च सन् १८७७ ई० को मुंशी प्यारेलालजी रईस शाहजहाँपुर ने अनेक मतों की छानबीन के लिए एक ऐसा प्रबन्ध किया जैसा आज तक किसी ने न किया हो ॥ ४२ ॥

प्रजानियन्तुः सविधे निजार्थनां
निवेद्य तत्सूचितराजपूरुषैः ।
समं प्रबन्धं प्रविधाय सर्वशो-
निमन्त्रिताः सर्वमतानुवर्तिनः ॥४३॥

ज़िले के अधीश कलेक्टर साहब को इत्तिला देकर, उनके दिये हुए कर्मचारियों के द्वारा प्रबन्ध कर अनेक मतानुयायियों को आपने निमन्त्रण दे दिया ॥ ४३ ॥

द्रुतं समागत्य समन्ततो जनाः
प्रचक्रुरत्यन्तविचारकल्पनाम् ।
परं यतीशस्तिलशो यथायथं
विभञ्जयामास नवीनतर्कणैः ॥४४॥

निमन्त्रण देने के साथ समस्त पण्डित एकत्र होकर अनेक प्रकार के विचारों को प्रस्तुत करते थे जिनको स्वामीजी अपने तर्क से छिन्न भिन्न करते रहे ॥ ४४ ॥

इहाभवद्यः सकलोपि विस्तरः
स पुस्तकाकारतया विमुद्रितः ।

प्रलभ्यतेऽजन्मपुरे विलोक्यतां
विलोकनीयोस्ति यतोस्य सम्भवः ॥४५॥

इस मेले में जो संवाद हुआ वह अक्षरशः अजमेर में छपकर पुस्तकाकार होगया है। उसको वहीं से मँगाकर समस्त सज्जन पढ़ें; पुस्तक देखने योग्य है ॥ ४५॥

निरीक्ष्य यं दुर्धरयुक्तिगर्वितं
सहस्रशोऽवैदिकमार्गगामिनः ।
समाजमेवाययुराशु के बुधा
न सत्यमार्गाश्रयणं प्रकुर्वते ॥४६॥

अनेक युक्तियों से मण्डित संवाद को पढ़ कर हज़ारों पौराणिक जन आर्यसमाज में आकर प्रविष्ट हुए क्योंकि सत्य का ही अवलम्बन जगत् में बलवान् होता है ॥ ४६ ॥

यथा समक्षे यमिनोस्य सत्वरं
निरुत्तराः सर्वमतानुवर्तिनः ।
समं बभूवुः सहसैव सर्वश-
स्तदस्ति लोके सकले प्रतिष्ठितम् ॥४७॥

जिस प्रकार अनेक मतों के मानने वाले जन स्वामीजी के सामने आकर शीघ्र ही निरुत्तर होते थे वह सब जगत् में विदित ही है ॥ ४७ ॥

न दत्तमासीद्विबुधैः सदुत्तरं
न दास्यते कोपि जनो यथा मुनिः ।
स्फुटं ददौ सर्वमतप्रभञ्जनं
समुत्तरं सत्वरमेव वेगवान् ॥४८॥

अनेक अवैदिक मतों को छिन्नभिन्न करने वाला जैसा उत्तर अति शीघ्र स्वामीजी ने दिया ऐसा न किसी ने पहले दिया और न कोई आगे देगा ॥ ४८ ॥

न यावनाः केपि जना यतीश्वरं
न सर्वथा तेपि मसीहमानिनः ।
विभञ्जनायै कृतवाक्परिश्रमं
सभोदरे रोद्‌धुमुदारतां ययुः ॥४९॥

जिस समय स्वामीजी अपनी युक्तियें से खण्डन करना प्रारम्भ करते थे उस समय उनको न कोई मौलवी रोक सकता था, न कोई पादरी रोक सकता था ॥ ४९ ॥

अनन्तरं पूर्तिमिते महोत्सवे
यतित्वधर्म्मेपि जयश्रियावृतः ।
प्रयाणमाकल्पयदुत्तरोत्तरं
पुरान्तरं प्रत्यनुवर्तिभिः समम् ॥५०॥

मेला चाँदापुर के समाप्त होने पर विजय-लक्ष्मी से सुशोभित स्वामीजी महाराज ३१ मार्च सन् १८७७ ई० को कई भद्र जनों के साथ लुधियाना पहुँचे ॥ ५० ॥

महोपदेशैस्तिमिराणि नाशयन्
पुराणभाजां हृदयादयं यतिः ।
महोन्नते विश्रममाप्य[1] मन्दिरे
निवारयामास मतान्तराज्जनान् ॥५१॥

वहाँ पर सबसे उत्तम एक कोठी में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। उसीमें स्वामीजी ठहरे और प्रति दिन व्याख्यानों द्वारा प्रचार करने लगे ॥ ५१ ॥

निशम्य यन्नाम समस्तकोविदाः
प्रतिक्षणं वैदिकमार्गसेवकाः ।

---

१ आङ्पूर्वादत्रापेः क्त्वो ल्यप् ।

विवर्धयामासुरिवार्य्यमण्डलं
न कस्य वेदानुमता भवेन्मतिः ॥५२॥

थोड़े ही दिनों में आप के आने की ख़बर दूर दूर तक फैल गई जिससे अनेक पुरुष वहाँ आ आ कर व्याख्यान सुनते हुए समाज में प्रविष्ट होने लगे ॥ ५२ ॥

अथैकदा ख्रिस्तमतप्रचारकः
स कोपि वेरीत्यभिधो महाशयः ।
महामतेराश्रममाप्य सादरं
प्रसङ्गतः प्रावददित्थमुद्धुरम् ॥५३॥

एक दिन पादरी वेरी साहब आपसे मिलने के लिए आपके आश्रम पर आये और बात चीत के प्रसङ्ग में आपसे यों पूँछने लगे—॥ ५३ ॥

यदस्ति कृष्णस्य चरित्रमुद्धृतं
पुराणपद्येषु यतीन्द्र तन्मते ।
न सर्वथाऽऽयाति वदस्व सूत्तरं
क्व योगिराजः क्व च जारनायकः ॥५४॥

श्रीकृष्णजी के विषय में जो कुछ भागवत में लिखा हुआ है उसे पढ़कर बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती कि वे महात्मा थे ॥ ५४ ॥

इति ब्रुवत्येव मसीहमार्गगे
मुनिर्बभाषे व्यभिचारकल्पनम् ।
न योगिवर्ये परिदृश्यते मया
यदस्ति तन्मूर्खजनैः प्रकल्पितम् ॥५५॥

इस तरह पूँछने पर आपने उत्तर दिया कि श्रीकृष्णजी में किसी प्रकार का दोष मेरे चित्त में नहीं जँचता । जो कुछ कलङ्क लगाया है वह मूर्खों की कल्पना है ॥ ५५ ॥

परं भवद्ग्रन्थविलोकनान्मया
विचार्यते यत्तदतीव विस्मितम् ।
विभाति लोकेपि समस्तमानवै-
रदृष्टमेतत्प्रतिभाति वर्णनम् ॥५६॥

परन्तु आपकी बाइबिल के देखने से जो कुछ मुझे अनुभव हुआ है वह सर्वथा ही असङ्गत एवं लोक-विरुद्ध सा प्रतीत होता है ॥ ५६ ॥

कपोतरूपः परमेश्वरः कथं
कुमारिकाया अजनिष्ट खात्पतन् ।
प्रविश्य गर्भाशयमाशु ते मते
नितान्तमेतत्परिकल्पितं जनैः ॥५७॥

परमेश्वर का आत्मा कबूतर के रूप में आकाश से उतरा और मरियम के गर्भाशय में प्रविष्ट होगया। फिर कुमारी (अविवाहिता) होने पर भी मरियम के पेट से ईसा हुए। यह सर्वथा ही कपोल-कल्पित बात है ॥ ५७ ॥

इति ब्रुवत्येव यतीश्वरे स्फुटं
निरुत्तरत्वादधरीकृताननः ।
स वेरिनामा समवाप्य चाशिषं
जगाम भृत्यैरनुमोदितो गृहम् ॥५८॥

इतना कहने पर ही पादरी साहब चुप हो गये। कुछ जवाब न दे सके। अंत में आपसे आज्ञा माँगकर नौकरों के अनुरोध से बँगले को चले गये ॥ ५८ ॥

अनन्तरं वेदमतप्रवर्धनं
विधास्यमाने यमिनांवरेऽपरे ।
निरुत्तरास्तेपि पुराणपण्डिता
निजानि वेश्मान्यवलोकयज्जवात् ॥५९॥

स्वामीजी भी प्रति दिन व्याख्यानों द्वारा वैदिक धर्म का इस तरह प्रचार करते थे जिस प्रकार आज तक किसी ने न किया हो। साथ ही पौराणिकों से शास्त्रार्थ भी करते थे जिसमें निरुत्तर हो पौराणिक लोग परास्त हो जाते थे ॥ ५९ ॥

प्रभातएवाप्य मुनेरलङ्कृतं
निवासमेको निजगाद कोविदः ।
मुखावलोकात्तव पापकल्पना
विवर्धते मे हृदये यथायथम् ॥६०॥

एक दिन प्रातःकाल ही अयोध्याप्रसाद नामक एक पण्डित आपके स्थान पर आकर कहने लगा कि आपका मुख देखने से हमको पाप होता है ॥ ६० ॥

इति ब्रुवाणं तमयं समब्रवी-
न्नितम्बदेशो मम दृश्यतां त्वया ।
समीक्षणाभ्यां परिपीयतां वचो-
मनोरमं कर्णयुगेन सादरम् ॥६१॥

स्वामीजी ने इसके उत्तर में कहा कि यदि आपको मेरे मुख के दर्शन से पाप लगता है तो आप व्याख्यान के समय मेरे पीछे की तरफ़ बैठकर देखा कीजिए; पर साथ ही कानों से व्याख्यान सुनते रहिए ॥ ६१ ॥

विलज्जितस्तद्वचनश्रुतेः परं
पुराणविज्ञो निजमालयं ययौ ।
यतीश्वरोपि प्रतिवर्धयन्निजं
मतं समस्थापयदत्र निर्भयः ॥६२॥

आपका ऐसा उत्तर सुनकर वह लज्जित होकर अपने घर को चला गया। स्वामीजी भी वैदिक-धर्म का महत्त्व प्रति दिन सज्जनों को सुनाते रहे ॥ ६२ ॥

मुहुर्मुहुस्तानभिसूचयन्बुधान्
न वीक्षयामास कमप्यलं यदा ।
मतानुवादार्थमुपास्थितं तदा
विराममागादतिशङ्करो यतिः ॥६३॥

व्याख्यान के अन्त में स्वामीजी प्रति दिन मनुष्यों को सूचित करते थे कि यदि किसी को कुछ प्रष्टव्य हो, या किसी को मेरे कथन में संदेह हो, तो वह निःशंक होकर प्रकट करे; तुरन्त उत्तर दिया जायगा। परन्तु कोई सामने नहीं आता था ॥ ६३ ॥

वितीर्णमस्य प्रसमीक्ष्य सद्दलं
न कोपि चूंकारमपि व्यकल्पयत् ।
क्व सम्मुखाभाषणकल्पनादिकं
विकल्पनं चापि महामुनेर्गिराम् ॥६४॥

जब आपका विज्ञापन शास्त्रार्थ के लिए निकलता था तब कोई चूं तक नहीं करता था। सामने आकर उत्तर देना तो जहाँ तहाँ रहा ॥ ६४ ॥

निशम्य गौडं कमपि द्विजं यति-
र्विभिन्नधर्म्मे गमनार्थमुद्यतम् ।
निवारयामास निजेन तेजसा
जगाम चास्मात्परतो लवस्थितिम् ॥६५॥

इसी लुधियाने में एक पण्डित देवीदत्तजी, जो कि गौड़ ब्राह्मण थे, ईसाई होने को तैयार थे, परन्तु उनके भाग्य से स्वामीजी मिल गये। उनके उपदेशों से वे ईसाई होने से बच गये। अन्त में १९ एप्रिल सन् १८७७ ई० को आप यहाँ से लाहौर पधारे ॥ ६५ ॥

अवाप्य बाष्पीयपथेन तत्पुरं
वृतो जनैः स्वागतकर्मचारिभिः ।

स रत्नचन्द्रोदयवाटिकोदरे
निवासमाकल्पयदुन्नतेः करम् ॥६६॥

आपके स्वागत के लिए रेलवे स्टेशन पर हरसुखराय आदि कई प्रतिष्ठित जन उपस्थित थे। उतरने के साथ ही बड़े सम्मान से आपको रत्नचन्द्र के बाग़ में ठहराया ॥ ६६ ॥

बुधास्तु तत्रैव सहस्रशो मुदा
निवारयन्तो हृदयोत्थितास्तदा ।
समस्तशङ्काः परमां मुदं ययु-
र्न को निजार्थानुपलभ्य मोदते ॥६७॥

हज़ारों मनुष्य यहीं पर आपके मनोहर उपदेश सुनने और अपने संशय निवृत्त करने के लिए आते थे और अत्यन्त प्रसन्न होते थे ॥ ६७ ॥

अथैकदा तत्र सुखेन वक्तृता-
मलं ददाने यमिनामधीश्वरे ।
बभूव लक्षैकमिता जनावली
वचःप्रभावादरमार्य्यपक्षगा ॥६८॥

एक दिन आपने "वैदिक धर्म हमको क्या क्या सिखलाता है" इस विषय पर एक बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया जिसमें अनुमान एक लक्ष से अधिक दर्शकों की भीड़ एकत्रित हुई ॥ ६८ ॥

किमस्ति रूपं निगमस्य तत्र किं
विवर्णितश्चेति निबोधनोद्यता ।
विवर्धिता तेन तथा गिरान्तति-
र्यथा न केनापि पुरा विवर्धिता ॥६९॥

कुछ दिनों के बाद आपने "वेद का क्या स्वरूप है ? उसमें किस बात का वर्णन है ?" इस विषय को प्रस्तुत कर बड़ा अनुपम व्याख्यान दिया ॥ ६९ ॥

परन्तु पौराणिकपक्षखण्डनं
प्रकुर्वता तेन न केवला सभा ।
निजस्थितिश्चापि विपर्य्ययोन्मुखी
प्रकल्पिता पापजनानुकोपनैः ॥७०॥

वहाँ के पौराणिक आपके व्याख्यानों से असंतुष्ट होकर और तो कुछ न कर सके परन्तु उन्होंने दीवान रत्नचन्द्र को बहुत कुछ भड़काया; जिसका परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी इस स्थान का परिवर्तन कर डाकृर रहीमख़ाँ की कोठी में चले गये ॥ ७० ॥

स्थलान्तरे संवसता दयालुना
विहाय भीतिं निजवक्तृताबलात् ।
सहस्रशो वेदमतप्रचारणे
नियोजिताः पण्डितमण्डिता जनाः ॥७१॥

यहाँ आकर आपने निर्भय होकर और भी ज़ोर के साथ कार्य करना आरम्भ किया जिसमें सहस्रों पुरुष आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए ॥ ७१ ॥

न कोपि तस्मिन्विषये बुधोऽभव-
न्मुहूर्तमात्रं किल यो महर्षिभिः ।
समं सभाभाषणमप्यहोमदा-
द्गिरामराणां प्रथयेदशङ्कितः ॥७२॥

उस समय समस्त पंजाब में एक भी पौराणिक पण्डित इस योग्यता का न था जो स्वामीजी के साथ दो घंटे भी संस्कृत में बात कर सके ॥ ७२ ॥

तथापि पौराणिकलोकमण्डली
कुशब्दवादानवदद्यतः स्वयम् ।
पराजिताभूदिति निश्चयः पुरे
ततान वृद्धेष्वपि हर्षसूचनाम् ॥७३॥

तो भी पौराणिक लोगों ने अपने कुवाच्य शब्द कहने बन्द न किये जिससे समस्त शहर में उनकी हार मानी गई ॥ ७३ ॥

दिनेषु तेष्वेव जगाद कोपि तं
यतीश्वरं मन्दमतिर्भवेदरम् ।
स मित्रभावः सकलेपि ते यते
यदि प्रकुर्या न हि मूर्तिखण्डनम् ॥७४॥

इन्हीं दिनों शहर में धार्मिक हलचल देखकर एक दिन पण्डित मनफूल ने आपसे कहा कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़दें तो सब आपसे मित्रता करने लगें और विरोध शांत हो जाय ॥ ७४ ॥

इति प्रगल्भं मनुजैरुदीरितं
निशम्य योगी तमुवाच सत्वरम् ।
न वेदनिर्देशमपास्य मे मति-
र्निदेशमिच्छत्यधुना भवादृशाम् ॥७५॥

इसके उत्तर में आपने कहा कि मैं मनुष्यों के प्रसन्न रखने के लिए उस ईश्वर की आज्ञा का, जो कि वेदों में लिखी हुई है, कदापि उल्लंघन न करूँगा। मनुष्य प्रसन्न रहें या अप्रसन्न रहें ॥ ७५ ॥

विभिन्नधर्म्माथ तदैव योगिनं
समेत्य वाङ्गः प्रगदन्स्वशङ्कनाः ।
यथोचितं प्राप्य सदुत्तरं मुदा
जगाम पश्चात्प्रणमन्यथागतम् ॥७६॥

एक दिन एक बंगाली पादरी ने आपके सामने आकर वेद और यज्ञ विषय में कुछ प्रश्न किये जिनका यथोचित उत्तर आपने दिया और वह प्रसन्न होकर चला गया ॥ ७६ ॥

बुधेतरः कोपि तदार्य्यतां गतः
पुनर्निजैरप्यववासितो ययौ ।

निजामलं पाप-पुराणमण्डलीं
क्व दुर्जनैर्वञ्चित एति सत्यताम् ॥७७॥

एक भानुदत्तजी पण्डित थे जो कि स्वामीजी के पास आकर मूर्तिपूजा का कभी कभी खण्डन भी करते थे परन्तु एक दिन कई पौराणिक पण्डितों ने मिलकर उन्हें धमकाया, जिससे वे ज्यों के त्यों रह गये ॥ ७७ ॥

अथाग्निहोत्री निगमोदिते विधौ
विकत्थमानः किल कोपि योगिना ।
वितर्जितः प्राप गृहं विलज्जितो-
न पक्षपातो हृदयेषु योगिनाम् ॥७८॥

एक शिवनारायण अग्निहोत्री आपके पास प्रायः आया करते थे । एक दिन बिना सोचे-समझे वे आपकी बातों में दखल दे बैठे जिस पर आपने उनको खूब ही फटकार बतलाई ॥ ७८ ॥

विभिन्नतायामपि देशवासिनां
न वैमनस्यन्तिरयाम्बभूव किमु ।
महोपदेशो मुनिराजदर्शितः
क्व दीपदीप्तौ तिमिरव्यवस्थितिः ॥७९॥

आपके पास अनेक प्रकार के मत-मतांतरों के मानने वाले बड़े बड़े महाशय आया करते थे, परन्तु आपके उपदेशों को सुन वे सबके सब प्रीतिपूर्वक एकसा बर्ताव करने को तैयार हुए । दीपक के प्रकाश होने पर अन्धकार का क्या काम ? ॥ ७९ ॥

अनन्तरं तत्र महानलङ्कृतः
स कोपि सामाजिकमन्दिरोदयः ।
ततान मोदं यमिनां हृदन्तरे
नितान्तमार्यङ्करणः प्रभाववान् ॥८०॥

एक दिन बहुत से आर्य महाशयों ने मिलकर यह प्रस्ताव उठाया कि जैसे मुम्बई और पूना आदि शहरों में आर्यसमाज स्थापित हो गये हैं वैसे ही यहाँ लाहौर में भी स्थापित होने चाहिएँ। विचार होने पर प्रस्ताव पास हुआ ॥ ८० ॥

विनिर्मिते वैदिकधर्म्ममन्दिरे
प्रवर्तिते चार्य्यमतप्रचारणे ।
बभूव यो यो नियमोदयो बुधैः
स दृश्यतां पद्यविशेषसुन्दरः ॥८१॥

कुछ दिनों के बाद, जब कि समाज का मन्दिर स्थापित हो गया और अच्छे प्रकार प्रचार भी होगया तब आपने समाज के दस नियम बनाये जो कि निम्नलिखित पद्यों द्वारा वर्णन किये जाते हैं—॥ ८१ ॥

(१) यदत्र लोके निगमादि तत्कृपा-
वशात्पदार्थान्तरमप्यशेषतः ।
प्रमीयते तस्य निदानमुत्तमं
महाशयैरीश्वरएव बुध्यताम् ॥८२॥

"सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है" [१] सत्य विद्या से यहाँ पर वेद-विद्या से अभिप्राय है जो कि ईश्वरोक्त होने से सर्वांश में सत्य है। पदार्थ शब्द का अर्थ कार्य जगत् है और आदि मूल के अर्थ मुख्य निमित्त कारण के हैं। सांख्य-दर्शन में मूल शब्द कारण के अर्थों में ही आया है; जैसे कि मूल का मूल नहीं होता ॥ ८२ ॥

(२) स सच्चिदानन्दमयो निराकृतिः
समेधितश्चाथ समस्तशक्तिभिः ।
प्रगीयते वेदचतुष्टयैरपि
प्रकामतो न्यायमयीति यत्कथा ॥८३॥

वह ईश्वर, जो कि पहले नियम के द्वारा बतलाया गया है सद्रूप, चिद्रूप तथा आनन्दरूप है, निराकार—आकार-रहित—है, * सर्वशक्तिमान्—समस्त शक्तियों का भंडार है, चारों वेद जिसको न्यायकारी—न्याय के अनुकूल काम करनेवाला बतला रहे हैं ॥ ८३ ॥

दयालुता यस्य गुणैः प्रतीयते
विजन्मतानन्तपदेपि यं गते ।
यएव यातः किल निर्विकारता-
मनादिताञ्चापि वदन्ति यद्गताम् ॥८४॥

जिसके गुणों से दयालुता स्वयं प्रतीत होती है तथा जिसको अजन्मा—जन्म-रहित एवं अनन्त—अपार कहते हैं; जो निर्विकार—विकार-शून्य और अनादि है। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में आपने न्यायकारी और दयालु इन दोनों शब्दों को पर्याय-वाचक बतलाया है और यह भी बतलाया है कि ईश्वर किसी के भी अपराध को क्षमा नहीं करता ॥ ८४ ॥

न विद्यते येन समो जगत्त्रये
समस्तमेतत्किल येन धार्यते ।
यथायथं व्यापकतामुपागतो-
य एव सर्वान्तरधिष्ठितो महान् ॥८५॥

जिस ईश्वर के समान तीनों लोकों में और कोई नहीं है, तथा जो ईश्वर समस्त विश्व के धारण करने से सर्वाधार कहाता है और परमाणु से लेकर पदार्थ मात्र में व्यापक होने से सर्वव्यापक एवं अन्तर्यामी होने से सर्वान्तर्यामी कहाता है ॥ ८५ ॥

वदन्ति यं विश्वतलेऽजरं तथा-
ऽमरं पुनश्चाप्यभयं विपश्चितः ।

---

* सत्यार्थप्रकाश के ७ वें समुल्लास में सर्वशक्तिमान् का अर्थ यह दर्शाया है कि जो अपने काम करने में किसी के अधीन न हो।

निसर्गतो नित्यपवित्रनामनी
यमादराद्बोधयतः परस्परम् ॥८६॥

जिस ईश्वर को विद्वान् लोग जरामरण-रहित होने से अजर, अमर, निर्भय होने से अभय, नित्य और पवित्र इन नामों से प्रति दिन कहा करते हैं ॥ ८६ ॥

समुच्यते[1] यः परतः कवीश्वरैः
समस्तसृष्टेरपि कर्तृताङ्गतः ।
उपासनीयः परमो महाशयैः
स एव सर्वैरपि वेदमार्गगैः ॥८७॥

जिस ईश्वर को समस्त सृष्टि के कर्ता होने से विद्वज्जन सृष्टिकर्ता कहते हैं उसी परमात्मा की सब महाशयों को उपासना करनी योग्य है ॥ ८७ ॥ [२]

(युग्मम्)

(३) समस्तसत्याश्रितविद्यया युतः
स वेदएवास्ति निरस्तदूषणः ।
भवन्ति यस्याध्ययनेन भूतले
विशारदाः शारदयापि सेविताः ॥८८॥

स एव नित्यं पठनीय आदरा-
त्स पाठनीयश्च समस्तमानवैः ।
विहाय सर्वं श्रवणीय उत्तमो-
यथायथं श्रावणमस्य तन्यताम् ॥८९॥

दोषों से रहित, गुणों से पूरित इस जगत् में एक 'वेद ही सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' जिसके अध्ययन से मूर्ख भी चतुर हो जाते हैं । इस-लिए और सब पुस्तकों को छोड़कर आदर से 'उसीका पढ़ना, पढ़ाना और सुनना और सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है, ॥ ८८ ॥ ॥ ८९ ॥ [३]

---

१ उदीर्यते इति पाठान्तरम् ।

(४) समुद्यतैर्भाव्यमलं परिग्रहे
सदैव सत्यस्य तथा विसर्जने ।
महोदयैर्वेदपथप्रवर्तकै-
रसत्यवाचां किमतोधिकं वचः ॥६०॥

वैदिक मार्ग में चलने वाले पुरुषों को 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए,॥९०॥ [४]

(५) समस्तकृत्यानि विचार्य्य सत्यता-
मसत्यताञ्चाप्यनुसारतो जनैः ।
सदैव धर्मस्य यथायथं पथि
क्रमेण कार्य्याणि महेश्वरोदिते[1] ॥६१॥

आर्य पुरुषों को हर समय 'सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ' ॥ ९१ ॥ [५]

(६) प्रधानमुद्देश्यमिदं विमृश्यतां
समस्तभावैरुपकारकल्पनम् ।
भवस्य[2] शारीरिकदैविकोदया-
त्पराऽथ सामाजिकधार्मिकोन्नतिः ॥६२॥

हर प्रकार से 'संसार का उपकार करना आर्य समाज का प्रधान उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना' ॥ ९२ ॥ [६]

(७) समं समस्तैरपि मानवैः सदा
परस्परं प्रेम परम्पराश्रितम् ।

---

१ महेश्वरोदिते-वैदिके पथि समर्पितपदैरार्य्यैरिति भावः । २ भवन्ति जना अस्मिन्निति भवः संसारस्तस्य ।

विधाय धर्मानुसृतेश्च चिन्तनं
प्रवर्तनीयं जगतीह सर्वशः ॥९३॥

प्रत्येक पुरुष को हर समय हर प्रकार 'सबके साथ प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए' ॥ ९३ ॥ [७]

(८) विनाशनीया सकलैरविद्यता
विवर्धनीयाऽथ सुविद्यता परा ।
सदार्यपत्रे निजनामलेखनं
विधाय वेदोदितकार्यकर्तृभिः ॥९४॥

आर्यधर्म के स्वीकार-पत्र में अपना नाम लिख कर प्रत्येक पुरुष को 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए' ॥ ९४ ॥ [८]

(९) अवाप्य नैजीं महतीं समुन्नतिं
न तुष्टिमिच्छेत्सकलस्य चोन्नतौ ।
निजामपीच्छेत्परितुष्टिमादरा-
त्समाजधर्मानुगतो जनव्रजः ॥९५॥

समाज में प्रविष्ट होकर जन-समूह 'अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहे किन्तु सब की उन्नति में ही अपनी भी उन्नति समझे' ॥ ९५ ॥ [९]

(युग्मम्)

(१०) जनैः समस्तैः परिहाय सर्वथा
विरोधभावं नियमेषु सर्वदा ।
हितेषु सामाजिकसार्वदैशिके-
ष्वलं पराधीनतयैव वर्तताम् ॥९६॥
तथा विभिन्नेषु परस्परं सदा
हितप्रदेषु प्रविचार्य्य गौरवम् ।

स्वतन्त्रभावैर्नियमेषु वर्त्तता-
मयं प्रधानो नियमो विलोक्यताम् ॥६७॥

सब मनुष्यों को सर्वथा विरोध छोड़कर 'सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ [१०]

इति प्रशस्ते नियमव्रजे तदा
दयामयेनैव निदर्शिते सभा ।
मुदः कलामाप परां जगत्त्रये
न को जनो मार्गमवाप्य मोदते ॥६८॥

इस प्रकार स्वामीजी के द्वारा नियमों के निश्चित होने पर समस्त सभा अति प्रसन्न हुई और तदनुकूल कार्य करने के लिए उद्यत हुई ॥ ९८ ॥

विभिन्नदेशेष्वधिवेशनोदयै-
स्तथा च सामाजिकमन्दिरोद्गमैः ।
नितान्तमन्तःकरणे प्रहर्षितो-
बभूव योगी श्रुतिमार्गविस्तरात् ॥६६॥

भिन्न भिन्न स्थानों में साप्ताहिक अधिवेशनों के होने से तथा नगर नगर में समाज-मन्दिरों के बन जाने से स्वामीजी अति प्रसन्न हुए ॥ ९९ ॥

अथैकदा तत्रभवैर्महाशयैः
प्रधानतायै विनिवेदितो मुनिः ।
गुरुत्वमूलोत्खननोचिताम्बला-
दुदीर्य मूकीकृतवान्गिरं जनान् ॥१००॥

एक दिन वहाँ के कई पुरुषों ने आपके पास आकर कहा कि आप समाज के गुरु या आचार्य बनें । उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा करने से यह

भी एक पन्थ बन जायगा। मुझे यह पन्थ नहीं बनाना है। मैं तो गुरुपन की जड़ काटता हूँ न कि गुरु बनता हूँ। इसलिए समाज का गुरु केवल वही ईश्वर हो सकता है और कोई नहीं ॥ १०० ॥

पुनर्जनैर्भक्तिरयेण कल्पितां
सहायतामीश्वरपादयोर्न्यसन्।
दधार योगी हठतो यथायथं
स सेवकत्वं सकलार्य्यधर्मिणाम् ॥१०१॥

फिर कई महाशयों ने आपसे प्रार्थना की कि यदि आप इसके आचार्य नहीं बनते तो परम सहायक तो बनिए। ऐसा सुनकर आप कहने लगे कि यदि आप मुझे परम सहायक मानेंगे तो परमेश्वर को क्या मानेंगे? अंत में कई पुरुषों के आग्रह करने पर आपने सेवक होना स्वीकार कर लिया ॥१०१॥

अतः परं तन्नगरोपकण्ठतां
पुरीषु यातासु दिनानि कानिचित्।
निनाय योगी पुनराप सत्वरं
पुरं लवेनारचितं यथायथम् ॥१०२॥

इसके पश्चात् स्वामीजी कुछ दिन के लिए लाहौर के आस पास के नगरों में प्रचार के लिए गये। फिर लौटकर लाहौर ही आ गये ॥ १०२ ॥

दिनेषु गच्छत्सु स वार्षिकोत्सवो-
महोदयैर्ब्राह्ममतानुगैः कृतः।
बभूव तत्रापि यतिर्ययौ मुदा
जनैः समस्तैरभिवेष्टितो निजैः ॥१०३॥

कुछ दिनों के बाद २१ अक्तूबर सन् १८७७ ई० को बड़े समारोह के साथ लाहौर में ब्रह्म-समाज का उत्सव हुआ जिसमें सहस्रों समाजी महाशयों के साथ आपभी पधारे ॥ १०३ ॥

---

१ अस गतौ स्वादिः धातूनामनेकार्थत्वात्स्थापनमर्थः।

निवृत्य तस्मान्निजमार्गगामिभि-
निमन्त्रितो न प्रजगाम तैः कृते ।
तदन्तरङ्गे पुनरेत्य वाटिकां
चकार तद्यावनवाक्यखण्डनम् ॥१०४॥

यहाँ से लौटते समय आर्यसमाज की अंतरंग सभा में आने के लिए आपको निमन्त्रित किया गया। आपने कहा कि मैं उसका सभासद् नहीं हूँ इस लिए मुझे उसमें सम्मति देने का अधिकार नहीं है इतना कहकर नवाब नवाज़िश अलीख़ाँ के बाग़ में जाकर आपने मुहम्मदी मत का खण्डन करना प्रारम्भ किया ॥ १०४ ॥

ततः परं कैश्चिदयं बहुस्थितौ
निमन्त्रितस्तानवदद्यथात्र मे ।
विभाति सावश्यकता तथा न किं
पुरेषु सर्वेषु विचार्यतामिदम् ॥१०५॥

तदनन्तर एक महाशय ने लाहौर में अधिक समय तक रहने की आपसे प्रार्थना की जिसके उत्तर में आपने कहा कि जैसी मेरी यहाँ पर आवश्यकता है इसी प्रकार समस्त भारतवर्ष में है इसलिए यहाँ अधिक नहीं रहूँगा ॥ १०५ ॥

इति ब्रुवत्येव यतीश्वरे मुदा
तदा सभा सा शिथिलीचकार ताम् ।
विचारणामाप वियोगशोकतां
न के जनाः सज्जनदर्शनोत्सुकाः ॥१०६॥

आपके इतना कहने पर सब मनुष्यों के मन में वियोग का शोक उत्पन्न हुआ और उन्होंने जो बहुत दिन तक आपके रहने की आशा कर रक्खी थी वह भी शिथिल हो गई ॥ १०६ ॥

---

१ सर्वदा भवन्तीति शेषः ।

प्रमुदितजनलोकं तत्प्रतापप्रभावै-
रभवदहह दैवादेकतस्तत्पुरन्तु ।
शिथिलितनिजकृत्यं शून्यमेकत्र देशे
समभवदतिवेगाद्देवदेवस्य शोकैः ॥१०७॥

जिस नगर में स्वामीजी जाने को उद्यत होते थे उस नगर के सहस्रों मनुष्यों का एक भाग आपके आने से पूर्व ही हर्ष को प्राप्त होता था और जिस नगर से स्वामीजी जाते थे उस नगर का एक भाग पहुँचाने के लिए आये हुए सहस्रों मनुष्यों के शोक से शून्य सा प्रतीत होता था ॥ १०७ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ सतिलके दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये
लवपुरगमनं नामैकादशः सर्गः ।

द्वादशः सर्गः

अथ तस्मादवसरतो-
ऽमृतसरसि पुरे समेत्य योगी सः ।
रामारामसमीपे
कृतवान् विश्रामहेतवे वासम् ॥१॥

लाहौर से प्रस्थित होकर स्वामीजी ५ जूलाई सन् १८७७ ई० को अमृतसर पहुँचे और रामबाग़ के पास एक कोठी में ठहरे ॥ १ ॥

नानकगुरुमतदीक्षा
यत्र समीक्षावशेन तेनापि ।
अभिवीक्षितेति मन्ये
यस्मात्सा तेन खण्डिता नितराम् ॥२॥

यहाँ पर आते ही आपने गुरुनानक के पुस्तकों का पर्यालोचन करना प्रारम्भ कर दिया जिससे कि उनके मत का अच्छे प्रकार खण्डन कर सकें ॥ २ ॥

एतस्यागमनात्प्रा-
गेतद्वासाय सज्जनैः क्रीतम् ।
यदभूदभिनवभवनं
तस्य कथं केन तुल्यता क्रियताम् ॥३॥

आपके आने से पहले ही आपके निवास के लिए जो कोठी सज्जनों ने यहाँ पर ख़रीदी थी उसकी समता किसके साथ करें ॥ ३ ॥

गमनानन्तरमेव-
प्रथिता नगरेऽस्य सा यशोविततिः ।
यामभिवीक्ष्य समस्ता
ध्वस्तेवाभूत्पुराणजनतात्र ॥४॥

आपके पहुँचते ही सारे शहर में आपके आने की चर्चा फैल गई जिस को सुनकर पौराणिक लोग मन में घबराने लगे ॥ ४ ॥

वीक्ष्योत्साहं तस्मिन्
नगरे व्याख्यानवर्धनामेषः ।
चक्रे बहुशङ्कानां-
मुत्तरदानेपि सत्वरं भावम् ॥५॥

आपने लोगों का उत्साह देखकर कोठी में ही उपदेश देना आरम्भ कर दिया और साथही आप प्रत्येक जिज्ञासु के संदेह भी मिटाते रहे ॥ ५ ॥

मुख्यास्तन्नगरस्था
-बहिर्भवाश्चापि वक्तृतां तस्य ।
आकर्णयितुमुदारा-
मायवुरानन्ददायिनीं हर्षात् ॥६॥

आपके अमृतमय व्याख्यानों को श्रवण करने के लिए प्रति दिन शहर के प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लोग तथा अन्यान्य बाहर के पुरुष भी आया करते थे ॥ ६ ॥

पौराणिकविबुधाली
मुहूर्तमात्रं न तस्य शक्ताभूत् ।

पुरतः संस्कृतगदने
शास्त्रार्थः केन तन्यतां तत्र ॥७॥

यद्यपि पौराणिक लोग शहर में कोलाहल मचाने के लिए पूरा पूरा प्रयत्न करते थे तथापि आपके समक्ष आकर दो घण्टे संस्कृत में भाषण करने के लिए कोई भी न निकला ॥ ७ ॥

बह्वः पण्डितवर्य्याः
पक्षं नैजं विहाय तत्पक्षम् ।
सत्वरमादरभावा-
दादृतवन्तो निरस्तदोषत्वात् ॥८॥

बहुत से सत्यवादी पण्डित अपने पथ को झूँठा समझ कर वैदिक सिद्धान्तों को मानने और आपको देववत् समझने लगे ॥ ८ ॥

यद्यपि बह्वो धूर्ताः
समयं तस्य व्यनाशयन्वादैः ।
परमादरमतिरेष-
स्तानपि सम्बोध्य सद्गुणानकरोत् ॥९॥

यहाँ के कुछ लोग कभी कभी किसी कोरे पण्डित को कुछ सिखाकर आपका समय नष्ट करने को भेजा करते थे, परन्तु आप उसको भी संतुष्ट करते थे ॥ ९ ॥

बह्वस्तत्र मनुष्याः
स्थापितवन्तः समाजमार्य्याणाम् ।
यस्य विशेषाख्यानं
पत्रेष्वासीद्विमुद्रितं बहुषु ॥१०॥

मनुष्यों के अधिक उत्साह से १२ अगस्त सन् १८७७ ई० को यहाँ पर भी आर्यसमाज स्थापित हो गया जिसका विज्ञापन बहुत से पत्रों में दिया गया ॥ १० ॥

विज्ञापनदलदानैः
सूचितवृत्तापि पापमनुजाली ।
चूंकृतिमपि न हि चक्रे
का वार्ता तत्र भिन्नवादानाम् ॥११॥

आपने यहाँ पर सबको विज्ञापन दिया कि यदि किसी को मुझसे शास्त्रार्थ करना हो, या मेरे कथन पर आक्षेप करना हो, तो मैं सर्वदा उद्यत हूँ। परन्तु किसीने चूं तक नहीं की, शास्त्रार्थ तो जहाँ तहाँ रहा ॥ ११ ॥

आर्य्यमहाशयमनुजै-
र्य्यदा नितान्तं विलज्जिता मन्दाः ।
शरणं ययुरतिवेगा-
त्तदा मनागेव रामदत्ताख्यम् ॥१२॥

जब सामाजिक लोगों ने पौराणिक पण्डितों को लज्जित करना आरम्भ कर दिया तब लाचार होकर उन्होंने पण्डित रामदत्त की शरण ली ॥ १२ ॥

सत्यपरः स बुधेशो-
निषिध्य सर्वानवञ्चितस्तैस्तैः ।
प्राप कृते भजनानां
पुरं हरेराशु तीरगं नद्याः ॥१३॥

पण्डित रामदत्तजी सत्यवक्ता थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मुझमें स्वामीजी के समक्ष जाने की शक्ति नहीं है। उस पर भी जब वे न माने तब आप हरद्वार चले गये ॥ १३ ॥

अवददथैको देवं
विहाय मूर्तेः प्रभञ्जनां जगति ।
विचरेद्यदि किल तर्हि
प्रशंसना ते परा भवेत्सकले ॥१४॥

एक दिन पण्डित विहारीलाल ने, जो कि एसिस्टेंट कमिश्नर थे, आप से आकर कहा कि यदि आप मूर्ति-पूजा का खण्डन छोड़ दें तो आपकी बड़ी प्रशंसा हो ॥ १४ ॥

इत्थं निगदितवन्तं
कञ्चिन्मनुजं जगाद योगीन्द्रः ।
मास्त्वथवास्तु यशो मे
न वेदबाह्यं मतेऽस्ति मे रक्ष्यम् ॥१५॥

आपने उनको उत्तर दिया कि चाहे मेरी प्रशंसा हो अथवा न हो, परन्तु मैं वेद-विरुद्ध बातों का खण्डन कदापि न छोड़ूँगा ॥ १५ ॥

वेदोदितशुभमार्गे
नितरां गमनं ममास्ति कर्तव्यम् ।
मनुजानामपि तस्मिन्
नियन्त्रणं नाम तत्परं कृत्यम् ॥१६॥

वेदों की आज्ञा पर स्वयं चलना मेरा पहला काम है तथा दूसरे पुरुषों को उस पर चलाना मेरा दूसरा काम है। इसके अतिरिक्त मेरा कोई कामही नहीं है ॥ १६ ॥

एवं कथयति देवे
विवर्णतामाप पूर्वपक्षस्थः ।
आपदनन्तं मोदं
सार्य्यसमाजप्रतिष्ठिता जनता ॥१७॥

आपके ऐसा कहने पर लज्जित होकर वे तो अपने घर को चले गये और आर्यसमाज के पुरुष अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए ॥ १७ ॥

एकस्मिन्नथ दिवसे
स्थूलतरः कोपि मानवो देवम् ।

द्रष्टुं सविधमुपागा-
द्वेष्टितमभितो यथायथं विबुधैः ॥१८॥

एक दिन आप बगीचे में कई सज्जनों के साथ बैठे बात कर रहे थे कि अचानक सरदार हरचरणदास आपसे मिलने को आ गये ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा तमथ स योगी
विचारयामास मानसे लोके ।
कामुपकृतिमिह चक्रे
योयं शक्तो न गन्तुमप्याशु ॥१९॥

आपने उनकी मुटाई देखकर कहा कि जो पुरुष दस क़दम अपने बल से नहीं चल सकता उसने संसार का क्या उपकार किया ? ॥ १९ ॥

मीमांसयति तदेत्थं
कश्चिद्राजप्रधानभावस्थः ।
धार्मिकविषयविचारं
कृत्वा तेन प्रसन्नतामागात् ॥२०॥

इतने ही में मिस्टर परकन्सन साहब कमिश्नर, अमृतसर, आपसे मिलने के लिए आये और धार्मिक विषय पर कुछ बात चीत कर प्रसन्न हो लौट गये ॥ २० ॥

तत्पुरतटगतनगरे
नगरे गत्वा स योगिनामीशः ।
वैदिकमतबहुदीक्षां
दत्वा दत्वा पुनस्तदेवापत् ॥२१॥

---

१ विविधा विशिष्टा वा बुधा विबुधास्तैः । २ महर्षिणा सहेति शेषः ।

स्वामीजी भी अमृतसर के आस पास के शहरों में वैदिक धर्म का उपदेश देने चले जाया करते थे, फिर लौटकर अमृतसर ही में आकर ठहरते थे ॥ २१ ॥

आगत्य द्विः स्वामी
भगवत्सिंहस्य वाटिकामध्ये ।
निवसन्नैजोद्देश्यै-
रापूरयदाशु सर्वतो नगरम् ॥२२॥

एक बार स्वामीजी उपदेश देने के लिए बहुत दूर चले गये थे। दुबारा १५ मई सन् १८७७ ई० को अमृतसर में पधारे और सरदार भगवानसिंह के बग़ीचे में आकर अपना कार्य करने लगे ॥ २२ ॥

व्याख्यानानि महर्षेः
श्रोतुं सर्वेऽपि तद्गता मनुजाः ।
रात्रिंदिवमनुवक्त्रं
नेत्राण्यस्मिन्निवेशयामासुः ॥२३॥

आपके व्याख्यानों को सुनने के लिए अमृतसर के सब लोग आपके मुख की ओर दृष्टि लगाये थे ॥ २३ ॥

एकस्मिन्नथ दिवसे
भगवत्सिंहानुजो यथेच्छं यत् ।
कथयामास तदर्थं
नितान्तमेवान्वभञ्जयद्देवः ॥२४॥

एक दिन सरदार भगवान्सिंह के छोटे भाई गागरमलजी आपके पास आकर कुछ असंगतसी बातें कहने लगे जिनका आपने ख़ूब खण्डन किया ॥ २४ ॥

अन्ये तत्कथनानुग-
कथना यद्यन्निवेदयामासुः ।
सर्वं तत्किल तिलशो-
निवारयामास नैगमैर्मन्त्रैः ॥२५॥

गागरमलजी की हाँ में हाँ मिलाने वाले और भी जो कुछ कहते थे स्वामीजी ने उनका भी बीच बीच में वेद-मन्त्रों का प्रमाण दे दे कर ख़ूब खण्डन किया ॥ २५ ॥

प्रथिते निजपरगदने
घटिकायन्त्रं पुरो निवेश्यारम् ।
नियतैर्विपलविशेषैः
सर्वानेवाकरोदलं मूकान् ॥२६॥

सरदार दयालुसिंहजी आपसे कुछ बात करना चाहते थे । आपने अपने और उनके बीच में घड़ी रख कर नियत समय में उनको भी निरुत्तर कर दिया ॥ २६ ॥

दिवसान्तरगतकाले
वेदप्रामाण्यमाननेऽनिच्छान् ।
मूढानाग्रहबद्धा-
न्नानावाक्यैरतर्जयद्देवः ॥२७॥

एक दिन कुछ पुरुषों ने आपके पास आकर आग्रह से कहा कि हम वेदों का प्रमाण नहीं मानते । उनको आपने अच्छे प्रकार फटकारा ॥ २७ ॥

आकर्णितगमनेच्छाः
केचिद्धूर्ता नवीनमायाभिः ।
लोकानावञ्चयितुं
विज्ञापनदानमादराच्चक्रुः ॥२८॥

कुछ दिनों के बाद, जब स्वामीजी जाने को थे तब पौराणिकों ने चाल चलकर प्रसिद्ध कर दिया कि हम स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं ॥ २८ ॥

तानप्यार्य्यसमाजे
नियताः सभ्या यथोत्तरादानैः ।
नितरां वाचंयमता-
मनयन्सत्यस्य किं जयो न स्यात् ॥२९॥

आर्यसमाज के प्रधान ने इस पर विज्ञापन दिया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिए सर्वदा तैयार हैं। आइए। परन्तु किसीने उत्तर तक नहीं दिया ॥ २९ ॥

सामाजिकजनवर्य्यैः
प्रार्थ्यमानो यथायथं योगी ।
अल्पाह्नानि निवसितुं
स्वीकृतिमाराच्चकार वादाय ॥३०॥

शास्त्रार्थ की सम्भावना देख कर समाज के कुछ पुरुषों ने और भी थोड़े से दिन यहीं पर रहने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के नाम से स्वीकार करली ॥ ३० ॥

नियते पुनरपि दिवसे
नियतेर्योगात्समस्तनगरस्थाः ।
सर्वे सज्जनसिंहाः
सादरमाजग्मुरुत्तमैर्यानैः ॥३१॥

कुछ समय के बाद यह नियत हुआ कि सरदार भगवानसिंह के मकान में शास्त्रार्थ होगा। नियत समय पर दश सहस्र पुरुष दर्शनार्थ एकत्र हो गये ॥ ३१ ॥

परमेतस्य समक्षे
वक्तुं शक्तो बभूव नो कश्चित् ।
पौराणिकमतवादी
वादावादौ तु जग्मतुर्दूरम् ॥३२॥

जब शास्त्रार्थ का नियत समय आगया उस समय आपके समक्ष एक भी पण्डित न आया; शास्त्रार्थ करना न करना तो जहाँ तहाँ रहा ॥ ३२ ॥

अस्मिन्नेवावसरे
धूर्तैः पाषाणवर्षणा यैर्यैः ।
प्रकृता सर्वे ते ते
राज्ञो दूतैर्नियन्त्रिताः पाशैः ॥३३॥

कुछ धूर्त पुरुषों ने आपके ऊपर ईंट और पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये थे परन्तु उन सब को पुलिस के सिपाहियों ने अपने दण्ड-पाश से बाँध लिया ॥ ३३ ॥

एकः स्वामिहितैषी
कश्चिन्मनुजो जगाद तं देवम् ।
भगवन्नद्य भवन्तं
रात्रौ दुष्टाः प्रपीडयिष्यन्ति ॥३४॥

एक दिन आपके एक मित्र ने आपको सूचना दी कि आप सिक्खों का खण्डन करते हैं, इसलिए आज रात को सब सिक्ख लोग आपको मारने के लिए आवेंगे ॥ ३४ ॥

तस्मादेतद्भवनं
विसृज्य नव्ये नियम्यतां वासः ।
नो चेद्राजनियोग-
स्थिता जनाः सर्वतो योज्याः ॥३५॥

इसलिए याती इस मकान को छोड़कर किसी दूसरे मकान में जाकर रहिए या आज सब रात के लिए चारों ओर पुलिस का पहरा बिठला दीजिए ॥ ३५ ॥

एवं गदनपरं तं
नानायोगैर्निबोधयन्रात्रौ ।
शिष्टानपि निजमनुजान्
दूरे कृत्वाऽद्वितीय एवास्थात् ॥३६॥

यह सुन स्वामीजी उससे बोले कि जो कुछ होगा देखा जायगा । तुम चिन्ता मत करो । इतना कह कर उन्होंने और मनुष्यों को भी जो आपके पास रहते थे, रात को बाहर भेज दिया ॥ ३६ ॥

यो जगतामनुयन्ता
यस्याज्ञायां मया मनो दत्तम् ।
ईश्वरएव स देहं
रक्षितुमीष्टे ममेत्यलं यत्नः ॥३७॥

और कहने लगे कि जो ईश्वर सब जगत् का रक्षक है और जिसकी आज्ञा-पालन करने के लिए मैंने नियम किया है वही मेरे शरीर की रक्षा करेगा और कोई नहीं ॥ ३७ ॥

निश्चित्यैवं शयितं
योगिनमेनं न कोपि तद्रात्रौ ।
तिमिरौघेपि बबाधे
सर्वत्रैवास्ति रक्षिता देवः ॥३८॥

इतना कहकर आप और भी खुले मैदान में सोये और अंधकार भी रात्रि भर रहा परन्तु कुछ भी न हुआ । क्यों हो, जब कि ईश्वर सर्वत्र रक्षक और विद्यमान है ॥ ३८ ॥

योगाभ्यासपरायण-
मेनं प्रातर्निरीक्ष्य मित्राणि ।
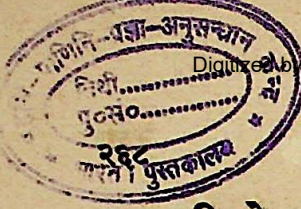
मित्रोदय इव चित्ते
मोदस्यान्तं न सर्वथालम्भन् ॥३९॥

प्रातःकाल उठते ही आपको योगाभ्यास में बैठा देख कर समस्त आर्यगण इतने प्रसन्न हुए जिसका वर्णन करना मेरी शक्ति से सर्वथा बाहर है ॥ ३९ ॥

ये मनुजा इह पूर्वं
समागमादस्य पत्तने मार्गे ।
मन्त्रोच्चारणमपि न हि
चक्रुस्तेऽलं पठन्ति गायत्रीम् ॥४०॥

जो पुरुष आपके पधारने से पहले सर्व साधारण के समक्ष वेद मन्त्र भी नहीं पढ़ा करते थे वे आपके प्रताप से आज सर्वत्र गायत्री मन्त्र सुनाने लगे ॥ ४० ॥

एवं निगदति मनुज-
व्राते योगी जगाद तान्सर्वान् ।
जीविष्ये यदि लोके
सर्वान्वेदं निबोधयिष्यामि ॥४१॥

यह सुनकर स्वामीजी उनसे कहने लगे कि यदि मेरा शरीर कुछ दिन तक जीवित रहा तो मैं मनुष्यमात्र के लिए वेद पढ़ने का प्रबन्ध करूँगा ॥४१॥

धूर्तैरिह बहुलोकै-
र्यस्मादेषः प्रगोपितो वेदः ।
तस्मादेव जगत्यां
मनुजा मूढाः समाभवन्सर्वे ॥४२॥

जबसे पौराणिक लोगों ने सर्व साधारण तक वेद पहुँचाना बन्द कर दिया तभी से भारतवर्ष में समस्त पुरुष मूर्ख होने लगे और वेद भी लुप्तप्राय होने लगे ॥४२॥

निगदत्येवं देवे
साय्र्यसमाजोपसङ्गता जनता ।
वर्षसहस्रमितावधि-
कालं जीवेति सर्वथावोचत् ॥४३॥

आपके इस प्रकार कहने पर समस्त आर्यजन ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि हे परमात्मन् ! आपका यश विस्तृत कीजिए और आपको दीर्घजीवी बनाइए ॥ ४३ ॥

प्रथमागमनावसरे
चत्वारिंशन्नवीनछात्रास्ते ।
अज्ञानोपहतज्ञा
नष्टं धर्म्मं ग्रहीतुमातिष्ठन् ॥४४॥

जब आप पहले पहल आये थे उस समय चालीस हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्म से विमुख होकर ईसाई होने के लिए सर्वथा तैयार थे और उद्यम कर रहे थे ॥ ४४ ॥

दैववशेन तदैव
स्वामी तानाप्य बोधयन्धर्मम् ।
वारितदस्युपथाँस्ता-
नार्य्ये मार्गे निवेशयामास ॥४५॥

परन्तु दैववश आप यहाँ पर विद्यमान थे। आपने उनको वैदिक धर्म का उपदेश देकर ईसाई होने से बचा कर वैदिक धर्म का अनुगामी बना लिया ॥ ४५ ॥

गतवति बहुतिथकाले
विभिन्नधर्मा जगाद योगीन्द्रम् ।

यद्येकत्र सपीति-
भवेदवश्यं तदाशु नौ प्रीतिः ॥४६॥

कुछ दिनों के बाद एक पादरी साहब ने आपसे कहा कि यदि आप हमारे साथ बैठकर एक साथ मेज़ पर खाना खावें तो हम में और आप में बड़ा प्रेम बढ़े ॥ ४६ ॥

कथयति कथमपि तस्मिन्
द्विरुद्धधर्मप्रवर्तके देवः ।
एकासनाऽशनेष्वपि-
तेषु विरोधं निवेद्य तुष्टोभूत् ॥४७॥

पादरी के इतना कहने पर आपने कहा कि यदि एक साथ भोजन करने से ही प्रेम बढ़े तो ईसाइयों में जो द्वेष सह भोजन होने पर भी पाया जाता है वह क्यों मिले ? ॥ ४७ ॥

कलिकातानगरात्तै-
राहूतः कोपि पादरीत्याख्यः ।
नामश्रवणभयादिव
दयानिधेरत्र नागतो मन्ये ॥४८॥

यह सुन पादरी चुप होगये और घबराकर आपसे शास्त्रार्थ के लिए उन्होंने एक बंगाली पादरी को कलकत्ते से बुलाया परन्तु वह आना स्वीकार करके भी आपके सामने नहीं आया ॥ ४८ ॥

एवं निखिलमतस्थैः
सत्रा वादे समेत्य जयपत्त्रम् ।
सानन्दो यतिवर्य्यो-
जगाम तस्मान्नवीननगराणि ॥४९॥

इस प्रकार अनेक मतों के विद्वानों से शास्त्रार्थ में विजय पाकर आप अति प्रसन्न हुए और यहाँ से किसी दूसरे शहर को जाने के लिए तैयार हुए ॥४९॥

आकर्यागमनोत्थं

महोत्सवं भिन्नपत्तनान्तरजाः ।

मनुजाः स्वागतकरणे

नगरादर्वाकूसमुद्यतास्तस्थुः ॥५०॥

अमृतसर से चलकर १२ अगस्त सन् १८७७ ई० को आप गुरुदासपुर पहुँचे। आपके स्वागत के लिए शहर के बारह ज़िले के प्रतिष्ठित रईस तथा राजकर्मचारी पहुँच गये थे ॥ ५० ॥

आयुर्वेदविदांवर-

एको मनुजः प्रबन्धकर्तृत्वम् ।

अध्यारोप्य स्वस्मिन्

नानायोगैश्चकार तत्सेवाः ॥५१॥

डाकृर विहारीलालजी ने आपके आतिथ्य का जितना कुछ भार था सब अपने ऊपर ले लिया और अनेक प्रकार से आपकी सेवा की ॥ ५१ ॥

गत्वैवैष महात्मा

वैदिकधर्मप्रचारमातेने ।

निगमोदितशुभवाक्यै-

र्मूर्तेः पूजामभञ्जयत्पापाम् ॥५२॥

आपने भी पहुँचते ही धर्मोपदेश करना प्रारम्भ कर दिया और साथ ही वैदिक-मन्त्रों द्वारा मूर्ति-पूजा का बड़े ज़ोर शोर से खण्डन किया ॥ ५२ ॥

आकर्णितशुभवादाः

केचिन्मनुजा विरोधभावेन ।

नाम्ना गणेशदासं

विद्वद्देशीयमाययुः शरणम् ॥५३॥

आपके व्याख्यानों को सुन कर कुछ मनुष्यों ने विरोध-भाव से गणेशगिरि नामक एक थोड़े पढ़े हुए साधु को आपसे शास्त्रार्थ के लिए बहुत उकसाया ॥ ५३ ॥

सूचितशास्त्रविवादो-
गणेशदासो निवार्य्य तान्सर्वान् ।
स्वामिनमेवाश्रन्ते
शरणं लोकैरनुद्रुतः प्रापत् ॥५४॥

परन्तु उन्होंने आपका विद्याबल देखकर पौराणिकों को फटकारा । जब वे बहुत कुछ सिर होगये तब गणेशगिरि ने भी अन्त में स्वामीजी की ही शरण ली ॥ ५४ ॥

दृष्ट्वा तन्मतमध्ये
समाविशन्तं गणेशदासमपि ।
पौराणिकजनमध्ये
महान्विषादः समूर्छनः समभूत् ॥५५॥

जब कि गणेशगिरि भी स्वामीजी के मत में होगये तब तो पौराणिकों में बड़ी हलचल मची और शोक के मारे बहुत से पौराणिक मूर्छित भी होगये ॥ ५५ ॥

दिवसानन्तरमेतै-
र्दौलतरामस्तथापरोप्येकः ।
शास्त्रार्थाय नियुक्तो-
जगाम मार्गे सकम्पनामापत् ॥५६॥

दूसरे दिन पौराणिकों ने पण्डित लक्ष्मीधर और पण्डित दौलतराम को दीनानगर से बुलवाया; परन्तु ये दोनों पण्डित भी शास्त्रार्थ के नाम से काँपने लगे ॥ ५६ ॥

नष्टा वागप्यनयो-
र्दृष्ट्वा देवस्य भारतीवेगम् ।

अतएवाशु ततस्तौ
विनिर्गतावेव भाषणस्थानात् ॥५७॥

जब कि स्वामीजी की वक्तृता सुनकर दोनों के दोनों मूक रह गये तब वे अंत में कुछ मन में बड़बड़ाते हुए सभा से चले गये ॥ ५७ ॥

अतिरमणीयैः कथनै-
र्दयानिधेरस्य पत्तने तस्मिन् ।
सत्वरमेव मनुष्यै-
रार्य्यसमाजो निवेशितः सम्यक् ॥५८॥

स्वामीजी के लगातार व्याख्यानों से यहाँ पर भी २४ अगस्त सन् १८७७ ई० को आर्यसमाज स्थापित होगया और भद्रजन उसके अधिकारी चुने गये ॥ ५८ ॥

विहिते सज्जनवर्य्यै-
रार्य्यसमाजे महामुनिर्मुदितः ।
नगरान्तरजनशुद्ध्यै
मनसापूर्वं पुनर्ययौ वपुषा ॥५९॥

अपने समक्ष आर्यसमाज को स्थापित देखकर स्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए और यहाँ से १३ दिसम्बर सन् १८७७ ई० को जलन्धर शहर पधारे ॥ ५९ ॥

भवने तत्र विशाले
सुचेतसिंहस्य संवसन्योगी ।
वैदिकधर्म्मसमीक्षा-
विषये व्याख्यानमादरादादात् ॥६०॥

यहाँ पर कुवँर सुचेतसिंह की कोठी पर आपके ठहरने का प्रबंध किया गया और आपकी हवेली में ही व्याख्यानों का प्रबंध होने लगा ॥ ६० ॥

भवनस्यातिलघुत्वा-
ज्जनताधिक्याच्च योगिनामीशः ।
विक्रमसिंहविनिर्मित-
भवने गत्वा स्ववक्तृतां तेने ॥६१॥

जब मनुष्यों की भीड़ अधिक होने लगी और स्थान का संकोच होने लगा तब दूसरे दिन कुवँर विक्रमसिंह के मकान पर व्याख्यान का प्रबंध किया गया ॥ ६१ ॥

मासादधिकैर्दशभि-
र्दिवसैर्योगी पुरेऽत्र निवसन्सन् ।
वैदिकधर्म्मविचारं
क्रमशः सर्वत्र पूरयामास ॥६२॥

यहाँ पर स्वामीजी ने लगातार चालीस दिन तक चालीस व्याख्यान देकर गली गली में वैदिक धर्म का प्रचार अच्छी तरह कर दिया ॥ ६२ ॥

अभ्यर्णस्थपुरस्थाः
श्रोतुं व्याख्यानमस्य देवर्षेः ।
सत्वरमु त्वरमाणा-
धावं धावं समभ्ययुर्मनुजाः ॥६३॥

जलंधर के आस पास के नगरों के पुरुष आपके व्याख्यानों को सुनने के लिए बड़े प्रेम से दौड़कर आया करते थे ॥ ६३ ॥

बहुविधविद्वत्पूर्णे
समाजमध्ये दयामयो योगी ।
वैदिकमन्त्रविशेषैः
सम्यक् श्राद्धं विमर्दयामास ॥६४॥

एक दिन आपने अनेक विद्वानों से भरे हुए व्याख्यान-भवन में वेद मंत्रों के प्रमाण दे दे कर इस प्रकार श्राद्ध का खण्डन किया कि सब देखते के देखते ही रह गये ॥ ६४ ॥

अस्मिन्नेवावसरे
बहवो मूर्तेः प्रपूजका मनुजाः ।
अखिलं त्यक्त्वा जालं
शरणं प्रापुर्दयानिधेश्वरणम् ॥६५॥

इसी अवसर में बहुत से मूर्तिपूजक पौराणिक लोग अपनी अपनी पूजा छोड़ कर आपके समीप आये और वैदिक धर्म के सच्चे अनुगामी बन गये ॥ ६५ ॥

सकलैरपि किल विज्ञैः
सत्यं देवस्य भाषणं मत्वा ।
निजनिजसम्मतिदानै-
र्वैदिकमार्गो विभूषितः परमः ॥६६॥

बहुत से पण्डितों ने भी आपके व्याख्यानों को सुन कर पौराणिक धर्म को तिलाञ्जलि दे दी और वे अपनी अपनी संमतियों से वैदिक धर्म को ही पुष्ट करने लगे ॥ ६६ ॥

धर्मसमाजबुधा अपि
गलितां वृत्तिं विलोक्य मन्दानाम् ।
शरणं वैदिकधर्म्मं
मत्वा नूनं समाजमेवापुः ॥६७॥

धर्मसभा से छोटे मोटे पण्डितों ने भी मूर्खों की जीविका छूटती देख कर अन्त में वैदिक धर्म का ही आसरा लिया और वे समाज में प्रविष्ट हुए ॥ ६७ ॥

गतवति दिवससमूहे
राज्याधीशेन रामदत्तेन ।

पौराणिकजनपक्षं
धृत्वाप्यस्यैव पक्ष आदरितः ॥६८॥

कुछ दिनों के बाद आनरेरी मजिस्ट्रेट पण्डित रामदत्त ने श्राद्ध का पक्ष लिया था परन्तु सिद्ध न करने पर अन्त में स्वामीजी का ही पक्ष स्वीकार किया ॥ ६८ ॥

यवनैरपि किल योगी
सत्रावादं विधाय बहुवारम् ।
मन्दं तन्मतवादं
निर्बलतायां निरुध्य जयमापत् ॥६९॥

मौलवी अहमदहुसेन के साथ एक दिन क़ुरान के विषय में स्वामीजी का विचार हुआ परन्तु निष्पक्ष होकर मौलवी साहब स्वामीजी से हार मान गये और उन्होंने शास्त्रार्थ छपा दिया ॥ ६९ ॥

एवं प्रशमितवादः
सर्वमतज्ञो दयामयोऽवादः ।
विन्यस्यार्य्यसमाजं
तस्मिन्नगरे पुरान्तरं प्राप ॥७०॥

इस प्रकार समस्त मतों के पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त कर आपने समाज स्थापित कराया और अन्त में यहाँ से चलने की प्रबल इच्छा प्रकट की ॥ ७० ॥

तत्र विहारीलाला-
भिधजनभवने विरम्य योगीन्द्रः ।
वैदिकधर्म्मप्रधनं
क्रमशः सर्वत्र पूरयामास ॥७१॥

२६ अक्तूबर सन् १८७७ ई० को आप यहाँ से फ़ीरोज़पुर की छावनी में पधारे। वहाँ लाला विहारीलाल की कोठी में ठहर कर वैदिक-धर्म का प्रचार करने लगे ॥ ७१ ॥

पौराणिकजनशङ्काः
क्रमशो बभञ्ज्य सूक्तैरेषः ।
सकलानपि पुरमनुजा-
न्निदर्शयामास वेदसिद्धान्तम् ॥७२॥

यहाँ पर समस्त पौराणिकों ने मिलकर कुछ प्रश्न बनाये जिन का उत्तर स्वामीजी ने नंबर वार दे दिया। फिर कोई शंका करने को नहीं आया ॥७२॥

वाचंयमपदवीस्थे
पुराणलोकेतिदुर्दशामाप्ते ।
आर्येतरमनुजाना-
मनार्यशब्देन साभवद्धूतिः[1] ॥७३॥

जब यहाँ के समस्त पौराणिक मूक हो गये और इनकी दुर्दशा हु[ई]
हुई तब सब नगर के पुरुष इनको अनार्य (पोप) शब्द से पुकारने लगे ॥[७३]

मन्दिरपूजक एकः
पप्रच्छारं दयानिधिं दैवात् ।
शब्दस्यास्य निरुक्तिं
पूजारीति प्रसिद्धिमाप्तस्य ॥७४॥

एक दिन यहाँ के बड़े मन्दिर के पुजारी आपके पास आकर पूँछने लगे कि यह जो संसार में पुजारी शब्द प्रचलित हो रहा है इसका क्या अर्थ है ? ॥ ७४ ॥

पूजाया अरिरित्थं
समासमस्मिन्विधाय षष्ठीस्[...]

---

१ हूतिराकारणाऽऽह्वानमिति कोषः ।

पूजनशत्रुभवार्थं
प्रबोधयामास सूक्तैर्देवः ॥७५॥

आपने उत्तर दिया कि यह शब्द वास्तव में पुजारी न
"पूजारि" है जिसका अर्थ (पूजाया अरिः पूजारिः) इस षष्ठी
पूजा का शत्रु होता है ॥ ७५ ॥

श्रुत्वा गतवति पूजन-
शत्रौ रोषाद्यथागतं तस्मिन् ।
पुनरपि वैदिकधर्म्मं
प्रधानभावेन भूषयामास ॥७६॥

इतना सुन कर पुजारी रघुनाथजी क्रोध में भर गये और
कर चल दिये। आपने भी उनके जाने के बाद व्याख्यान देना
दिया ॥ ७६ ॥

व्याख्यानावसितौ किल
शङ्काऽनुज्ञामलं ददानेऽस्मिन् ।
द्वदनुत्थितिभावा-
देको धूर्तः पपाठ दोहडिकाम् ॥

एक दिन नियमानुसार व्याख्यान देने के बाद आपने का
किसी को कुछ शंका करनी हो तो करे। जब कोई न उठा
कर दोहा पढ़ने लगा जो कि इस प्रकार है "कर खेल चै
" ॥ ७७ ॥

तामयमात्मपराणां-
पुरतः शीघ्रं विभज्य वैयर्थ्यम् ।
यावत्तं बोधितवाँ-
स्तावन्मूकत्वमागमद्वादी ॥७८॥

विशेषः ।